PHANISHWARNATH RENU KE UPANYASON KA SAMAJ BHASHA VAIGYANIK ADHYAYAN

A Thesis submitted during 2014 to the University of Hyderabad in partial fulfillment of the award of a **Ph.D. degree** in Department of Hindi, School of Humanities.

By

KRISHNA KUMAR PASWAN
09HHPH14

Department of Hindi
School of Humanities

University of Hyderabad
(P.O.) Central University
Prof. C. R. Rao Road
Gachibowli
Hyderabad - 500 046
Telangana
INDIA

C E R T I F I C A T E

This is to certify that the thesis entitled **"PHANISHWARNATH RENU KE UPANYASON KA SAMAJ BHASHA VAIGYANIK ADHYAYAN" (**"फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों का समाजभाषावैज्ञानिक अध्ययन"**)** submitted by Krishna Kumar Paswan bearing Reg. No. 09HHPH14 in partial fulfillment of the requirements for the award of Doctor of Philosophy in Hindi is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance which is a plagiarism free thesis.

The thesis has not been submitted previously in part or full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Signature of the Supervisor

Head of the Department

Dean of the School

D E C L A R A T I O N

I, **KRISHNA KUMAR PASWAN**, hereby declare that this thesis entitled "**PHANISHWARNATH RENU KE UPANYASON KA SAMAJ BHASHA VAIGYANIK ADHYAYAN" (**"फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों का समाजभाषा-वैज्ञानिक अध्ययन"**)** submitted by me under the guidance and supervision of **Prof. Sachidananda Chaturvedi** is a bonafide research work which is also free from plagiarism. I also declare that it has not been submitted previously in part or full to this University or any other University or Institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my thesis can be deposited in Shodhganga/INFLIBNET.

Date :

Name : KRISHNA KUMAR PASWAN

Signature of the Student
Regd. No. 09HHPH14

माँ और बाबूजी को...

भूमिका

साहित्य मानवीय संवेदनाओं और संबंधों का जीवंत दस्तावेज होता है; जिसमें समाज की सांस्कृतिक परंपरा और भाषायी अस्मिता कलात्मक रूप में अभिव्यक्त होती है। प्रत्येक रचनाकार अपनी साहित्यिक कृतियों में अपने समय के समाज और सामाजिकता को अपनी सृजनात्मक भाषा में रचता है। इस तरह देखा जाय तो साहित्यकार अपने समय का समाजशास्त्री भी है, भाषावैज्ञानिक भी है और इतिहासकार भी। क्योंकि साहित्यकार अपनी भाषा में या प्रचलित भाषा का परिष्कार करके, अपने समय के समाज और समाज की मानसिकता को, वहाँ की प्रचलित रुढियों और परम्पराओं के साथ रचता है। यह सृजन एक तरफ जहाँ सामाजिक होता है वहीं दूसरी तरफ सांस्कृतिक और ऐतिहासिक भी। प्रत्येक रचनाकार की सबसे बड़ी और ईमानदार प्रतिबद्धता अपने समय और समाज के साथ होती है। प्रत्येक रचनाकार अपनी प्रतिबद्धता की अभिव्यक्ति की कोशिश अपने साहित्य में करता है। 'रेणु' ने भी अपने सम्पूर्ण साहित्य में अपने समय और समाज को व्यक्त करने की कोशिश की है। इनके इस प्रयास को हिंदी जगत् और इससे बहार के लोगों ने कई तरह से समझने और रेखांकित करने का प्रयास किया है। प्रस्तुत शोध 'रेणु' के उपन्यासों का समाजभाषा-वैज्ञानिक पक्ष को समझने की कोशिश है। 'रेणु' के साहित्य पर इस तरह के शोध का यह प्रथम प्रयास है।

साहित्य किसी रचनाकार के द्वारा किसी भाषा में रचा जाता है। मनुष्य स्वभाव से सामाजिक होता है। अतः यह भी कह सकते हैं कि साहित्य भाषा के माध्यम से एक समाज और सामाजिकता का पुनर्सृजन है। समाजभाषाविज्ञान में सामाजिक सन्दर्भों के आधार पर भाषा की व्याख्या की जाती है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि साहित्य में भाषा के माध्यम से किसी समाज का चित्रण किया जाता है और समाजभाषाविज्ञान में

भाषा का विवेचन-विश्लेषण सामाजिक संबंधों के आधार पर किया जाता है। इस प्रकार देखा जाए तो दोनों के मूल में भाषा और समाज है। भाषा और समाज दोनों में समान रूप से उपस्थित हैं इसलिए संभव है कि साहित्य और समाजभाषाविज्ञान के बीच कोई सम्बन्ध हो, जिसकी तलाश करने की आवश्यकता अभी बनी हुयी है। प्रस्तुत शोध इसी दिशा में एक प्रयास है।

भाषा और भाषायी समाज की दृष्टि से 'रेणु' के उपन्यासों में जो विविध पर्तें हैं वे हिंदी में अन्यत्र अनुपलब्ध हैं। 'रेणु' के साहित्य को समाजभाषावैज्ञानिक मानकों के आधार पर विश्लेषित किया जाए तो इसे समझने और समझाने के और भी कई आयाम सामने आ सकते हैं। समाजभाषाविज्ञान भाषा के विभिन्न सामाजिक पक्षों की पड़ताल करता है और इसके कारण-कार्य सम्बन्धों पर प्रकाश डालता है। इस तरह के अध्ययन की पहली वकालत DUKE University Press की पत्रिका The American Dialect Society में प्रकाशित Barbara A. Fennell एवं John Bennett के लेख *Sociolinguistic Concepts and Literary Analysis* में की गई है। इस आलेख में इन्होंने John Kennedy Toole का उपन्यास *A Confederacy of Dunces* का विश्लेषण समाजभाषाविज्ञान के मानदंडों पर किया है। यह लेख इस शोध का संरचनात्मक आधार है।

जब किसी विषय के शोध में उस विषय से इतर दूसरे विषय के मानदंडों को आधार बनाकर शोध किया जाता है तो उसे अंतर अनुशासनिक शोध कहा जाता है। प्रस्तुत शोध में साहित्यिक विधा के विश्लेषण के लिए समाजभाषाविज्ञान के मानकों का प्रयोग किया जा रहा है, जो साहित्यिक-शोध के मानदंडों से पृथक हैं। विद्वानों ने इसे समाजभाषावैज्ञानिक शोध-प्रविधि कहा है। इस शोध-प्रविधि में शोध प्रमुख तीन चरणों में सम्पादित किया जाता है; पहले चरण में तथ्य संकलन किया जाता है। दूसरे चरण

में इन तथ्यों का ट्रांस्क्रिप्सन और अंत में इनका अनुशीलन-विश्लेषण कर निष्कर्ष तक पहुँचा जाता हैं। इस शोध-प्रविधि के दो प्रकार हैं-

1. गुणात्मक शोध-विधि (Qualitative Research Method)
2. परिमाणात्मक शोध-विधि (Quantitative Research Method)

गुणात्मक शोध-विधि में किसी भाषा के नमूने का संकलन कर उसका विश्लेषण किया जाता है और इसके बाद किसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। समाजभाषाविज्ञान के जितने भी मानदंड है वे इसी तरह के शोध के द्वारा निर्मित किये गये हैं। परिमाणात्मक शोध-विधि में स्थापित मानदंडों के आधार पर किसी भाषा का विवेचन-विश्लेषण किया जाता है। इस तरह के शोध में कोई सिद्धांत नहीं गढ़ते बल्कि मान्य सिद्धांतों के आधार पर भाषा के सामाजिक सन्दर्भों की पड़ताल करते हैं। साहित्य के समाजभाषावैज्ञानिक विश्लेषण में इसी शोध-विधि का प्रयोग किया जाता है।

प्रस्तुत शोध में परिमाणात्मक शोध-प्रविधि का प्रयोग कर 'रेणु' के छः उपन्यासों, 'मैला आँचल', परती : परिकथा, 'दीर्घतपा', 'जुलूस', 'कितने चौराहे' और 'पल्टू बाबू रोड' के पत्रों के संवादों का विश्लेषण किया गया है। समाजभाषावैज्ञानिक शोध मूलतः बोली जा रही भाषा पर किया जाता है पर यह शोध साहित्यिक कृतियों पर किया जा रहा है इसलिए इसमें परिमाणात्मक शोध-विधि के अतिरिक्त साहित्य सर्वेक्षण शोध-विधि, साक्षात्कार शोध-विधि और सर्वेक्षण शोध-विधि का भी प्रयोग किया गया है। अध्ययन की आवश्यकता और सीमा को ध्यान में रखते हुए शोध-विषय को निम्नलिखित पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय - *समाजभाषाविज्ञान : सैद्धांतिकी,* द्वितीय अध्याय - *साहित्य और समाजभाषाविज्ञान का अंतःसंबंध,* तृतीय अध्याय - *फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों में चित्रित भाषायी समाज,* चतुर्थ अध्याय - *फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों में चित्रित बहुभाषिकता, कूट-मिश्रण*

एवं कूट-अंतरण और पाँचवां अध्याय - *फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों में अभिव्यक्त व्यक्ति-बोली, समाज-बोली एवं भाषा-विकल्पन।*

प्रथम अध्याय, *समाजभाषाविज्ञान : सैद्धन्तिकी* में सबसे पहले शोध का क्षेत्र-निर्धारण एवं विषय-निरूपण किया गया है। क्षेत्र-निर्धारण करते हुए 'रेणु' के साहित्य की भाषा पर की गई साहित्यिक बहसों की चर्चा की गई है। इसी क्रम में बताया गया है कि प्रस्तुत शोध समाजभाषाविज्ञान के क्षेत्र में किये जाने वाले शोध से कैसे अलग है? विषय निरूपण में समाजभाषाविज्ञान का सामान्य परिचय देते हुए इसके उन मानकों की चर्चा की गई है जिसका प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्बन्ध इस शोध से है। समाजभाषाविज्ञान को स्पष्ट रूप से समझने के लिए भाषायी समाज, भाषा और बोली, प्रयुक्ति, व्यक्ति-बोली, समाज-बोली, क्षेत्रीय-बोली, लिंगुवाफ्रेका, पिजिन, क्रिओल, बहुभाषिकता, कूट-मिश्रण, कूट-अंतरण और भाषा-विकल्पन पर विस्तार से चर्चा की गई है। इन मानकों के विश्लेषण का मूल उद्देश्य शोध की पृष्ठभूमि तैयार करना है। इन्हीं में से कुछ मानकों, जिनका सीधा सम्बन्ध साहित्य के विश्लेषण से है, को निकष बना कर 'रेणु' के उपन्यासों का विश्लेषण किया गया है। समाजभाषाविज्ञान और इनके मानकों को समझने के लिए रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, भोलानाथ तिवारी, दिलीप सिंह, राजाराम मेहरोत्रा, देवी प्रसन्ना पटनायक, राजेंद मेस्त्री, विलियम लेबोव, पीटर स्टॉकवेल, आर. ए. हडसन, गम्पर्ज़, रोनाल्ड वर्धो, पीटर मुहल्हौसलर आदि भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों की पुस्तकों की सहायता ली गई है।

द्वितीय अध्याय, *साहित्य और समाजभाषाविज्ञान के अंतःसंबंध* में साहित्य और समाजभाषाविज्ञान के अन्तःसंबंधों की पड़ताल की गई है। इस क्रम में समाज, भाषा और साहित्य एक दूसरे से कैसे जुड़े हैं, इस पर विस्तार से विचार किया गया है। इन तीनों की एकरूपता में संस्कृति किस तरह कड़ी की भूमिका निभाती है; को विवेचित करने का प्रयास किया गया है। साहित्य में लेखक ही भाषा के माध्यम से किसी समाज

का चित्रण करता है। इसलिए इस प्रसंग में सबसे निर्णायक भूमिका रचनाकार की होती है। अतः रचनाकार का सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश साहित्य को किस प्रकार से प्रभावित करता है, की भी चर्चा की गई है। इस अध्याय का केन्द्रीय प्रसंग साहित्य और समाजभाषाविज्ञान का अन्तःसम्बन्ध है जिसे प्रदर्शित करने के लिए भाषायी संजाल (Social Network), वाक् व्यापार (Speech Act) और वार्तालाप सहयोग के सिद्धांत (Principle of Conversational Cooperation) की चर्चा करते हुए बताया गया है कि ये तीनों सिद्धांत किस तरह साहित्य और समाज-भाषाविज्ञान को जोड़ते हैं। यह भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि जिस प्रकार समाजभाषाविज्ञान किसी भाषायी समाज के सम्पर्क को सामाजिक-संजाल के आधार पर विश्लेषण करता है उसी प्रकार साहित्य में भी प्रत्येक पात्र भाषायी-संजाल से जुड़ा होता है। अतः सामाजिक-संजाल साहित्य को समझने में एक नई दृष्टि प्रदान कर सकता है। यह साहित्य और समाजभाषाविज्ञान के बीच योजक कड़ी की भूमिका भी निभा सकता है। इसी तरह की भूमिका वाक्-व्यापार और वार्तालाप सहयोग के सिद्धांत भी निभाते हैं।

तृतीय अध्याय, *फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में चित्रित भाषायी समाज* में सभी पात्रों के संवादों का विश्लेषण भाषायी समाज के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। इसमें सबसे पहले 'रेणु' के उपन्यासों के कथा-क्षेत्र का निर्धारण कर इसके भाषायी भूगोल की चर्चा की गई है। इस क्रम में 'रेणु' के उपन्यासों में चित्रित सीमांकन के आधार पर भाषायी मानचित्र की सहायता से इस क्षेत्र की भाषा का परिचय दिया गया है। आगे इनके उपन्यासों में चित्रित भाषायी समाज के विवेचन विश्लेषण में पाया गया कि इनके उपन्यासों में हिंदी के अलावा लगभग आठ भाषायी समाज, मैथिली, बांगला, नेपाली, भोजपुरी, मगही, अंगिका, संथाली, अंग्रेजी, उपस्थित हैं। इस अध्याय में यह जानने की कोशिश की गई है कि 'रेणु' ने इतने भाषायी समाज का प्रयोग क्यों किया है? इसके पीछे लेखक का क्या उद्देश्य रहा है? क्यों कोई पात्र बांगला बोलता है और कोई नेपाली,

कोई अंग्रेजी बोलता है तो कोई भोजपुरी, मगही, मैथिली या हिंदी। इस अध्याय में यह जानने की कोशिश की भी गई है की किस तरह के पात्र कौन सी भाषा का प्रयोग करते हैं और क्यों करते हैं?

चतुर्थ अध्याय, *फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में चित्रित बहुभाषिकता, कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण* में दिखाने का प्रयास किया गया है कि 'रेणु' के उपन्यासों में चित्रित समाज की भाषायी स्थिति क्या है? इस क्रम में सबसे पहले आयातित शब्दों की चर्चा की गई है और बताया गया है कि क्यों आयातित शब्दों का प्रयोग कूट-मिश्रण नहीं माना जाता है। 'रेणु' के उपन्यासों की बहुभाषिकता की चर्चा करते हुए यह बताने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार बहुसांस्कृतिकता इस क्षेत्र की बहुभाषिकता को पल्लवित-पुष्पित करती है। कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण पर विचार करते हुए इस बात को जानने की कोशिश की गई है कि इनके कौन से पात्र किन-किन भाषाओं का प्रयोग करते हैं और कहाँ किन भाषाओं में किन भाषाओं के शब्दों का मिश्रण एवं अंतरण करते हैं? बहुभाषिकता पर चर्चा करते हुए बताया गया है कि कोई पात्र एक ही समय में किसी के साथ बांगला में बात करता है और किसी के साथ हिंदी में और कहीं अंग्रेजी या नेपाली में। कूट-मिश्रण और कूट-अंतरण का विश्लेषण करते हुए बताया गया है कि कोई पात्र क्यों हिंदी के वाक्यों में अंग्रेजी, नेपाली, बांगला, भोजपुरी, मैथिली या अन्य भाषाओं के शब्दों का मिश्रण करता है?

पंचम अध्याय, *फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में अभिव्यक्त व्यक्ति-बोली, समाज-बोली एवं भाषा-विकल्पन* में सबसे पहले 'रेणु' के हवाले से यह बताया गया है कि इनके उपन्यासों में भाषायी प्रयोग की इतनी विविधता क्यों है? इनके पात्रों के संवादों में इतनी पर्तें क्यों हैं? क्यों कोई पात्र हिंदी, अंग्रेजी, बांगला, नेपाली आदि अनेक भाषाओं का प्रयोग करता है? इन प्रश्नों से रूबरू होते हुए इनके उपन्यासों में अभिव्यक्त व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन के विविध रूपों की चर्चा की

गई है। समाज-बोली के अंतर्गत सभी उपन्यासों में चित्रित समाजों की भाषा का विश्लेषण कर उसे विभिन्न वर्गों में बाँटा गया है; जैसे कॉग्रेसियों की भाषा, सोशलिस्टों की भाषा, शिक्षितों की भाषा, अशिक्षितों की भाषा, संभ्रांत वर्ग की भाषा, गाँव के निम्न वर्गों की भाषा आदि। भाषा-विकल्पन के अंतर्गत संस्थागत भाषा-विकल्पन, शिक्षा पर आधारित भाषा-विकल्पन, जातिगत भाषा-विकल्पन, सामाजिक स्तर पर भाषा-विकल्पन, पेशे के स्तर पर भाषा विकल्पन आदि की चर्चा की गई है।

उपर्युक्त पाँच अध्यायों में 'रेणु' के उपन्यासों का समाजभाषावैज्ञानिक अध्ययन किया गया है। शोध कार्य के दौरान अनेक पुस्तकों का अध्ययन किया है एवं अपने पूर्व के अनुभव की सहायता ली गई है। ऐसी स्थिति में संभव है कि यह अनुभव किसी ग्रंथ से सम्बंधित हो। फिर भी कोशिश की गई है कि जो भी संदर्भ जहाँ से लिया गया है वह ईमानदारी पूर्वक रेखांकित हो सके। शोध में किसी तरह के तथ्य या विचारों के पुनरावृति से बचने के प्रयास किया गया है, इसके बावजूद कई जगहों पर कुछ तथ्यों एवं विचारों को दोहराया गया है। यह पुनरावृति किसी प्रकार की अनभिज्ञता नहीं, बल्कि शोध की आवश्यकता को ध्यान में रख कर किया गया है। समाजभाषाविज्ञान का सिद्धांत मूलतः पश्चिम से आया है इसलिए ये सभी हिंदी में अनुपलब्ध हैं। अतः इस शोध-प्रबंध में अंग्रेजी के अवश्यक सन्दर्भों का भावानुवाद शोधार्थी द्वारा किया गया है तथा मूल कथन को सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची में उद्धृत किया गया है।

इस शोध कार्य को पूरा करने में मेरे शोध निर्देशक का अमूल्य योगदान रहा। इस शोध कार्य के माध्यम से 'रेणु' के साहित्य का समाजभाषावैज्ञानिक विश्लेषण कर पाने में अगर थोड़ी भी सफलता मिली है तो इसका सारा श्रेय इन्हीं को है। इनका निर्देशन मुझे इस कार्य के लिए निरंतर प्रेरित करता रहा। विधागाध्यक्ष, विभाग के सभी प्राध्यापक एवं विभाग-कार्यालय के कर्मचारियों का आभारी हूँ जिन्होंने इस कार्य में हर संभव सहयोग किया।

प्रो. सुवास कुमार के संसर्ग ने 'रेणु' के साहित्य की बारीकियों को समझने की नई दृष्टि दी। प्रो. दिलीप सिंह, प्रो. अवधेश नारायण मिश्र, राजेंद मेस्त्री, पंचानन मोहंती, पांडेय शशिभूषण शीतांशु, प्रो. हेमराज मीणा ने विषय से सम्बंधित आवश्यक सुझाव एवं पुस्तकों की जानकारी दी। मैं इन सभी विद्वानों का आभारी हूँ। शोध के दूसरे अध्याय को समझने के लिए कुछ लेखकों, आलोचकों से साक्षात्कार लिए गये जिसमें प्रो. मैनेजर पाण्डेय, मन्नू भंडारी, अब्दुल बिस्मिल्लाह, पंकज बिष्ट, अल्पना मिश्र, रमेशचंद साह, रमाशंकर यादव विद्रोही जी का आभारी हूँ। इन्होंने मुझे अपना आवश्यक सुझाव और समय दिया। फणीश्वरनाथ 'रेणु' के पुत्र पद्मपराग 'वेणु' एवं समस्त परिवार का आभारी हूँ। इन्होंने इस परिवेश, 'रेणु' के कुछ जीवित पात्रों और यहाँ की भाषा से परिचय करवाया।

जब से इस विषय पर शोध कार्य शुरू किया हूँ तब से आज तक तारिक खान और अभिजीत देवनाथ का अमूल्य सहयोग रहा है। विषय की जटिलता को स्पष्ट करने में इन्होंने हमेशा मेरी मदद की, आवश्यक सुझाव दिए और सामग्री संकलन में अभूतपूर्व सहयोग किया। इनका यह सहयोग आभारी जैसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। शैलेंद्र, दीपा, शीरीं, अंकिता, सस्मिता और अंशु ने शोध कार्य में हर आवश्यक सहयोग दिया। राजेश वर्मा ने टंकण में सहयोग दिया, राकेश सिंह, प्रमोद, राजीव, दिवाकर और राकेश ने प्रूफ की गलतियों को ध्यान से देखा और ठीक किया। इस शोध-कार्य को पूर्ण करने में मेरे सहपाठियों, विश्वविद्यालय तथा देश के अन्य विश्वविद्यालयों के शिक्षकों एवं शोधार्थियों का सहयोग मिला। मैं इन सभी सुधि जानों का आभारी हूँ।

मेरे परिवार वालों ने हमेशा मेरी हिम्मत बढ़ायी। इस कार्य की संभावनाओं से अनभिज्ञ होते हुए भी हमेशा मुझे सराहा। इनका यह विश्वाश मुझे हमेशा संबल देता रहा है। इनके प्रेम और आत्मिक सहयोग के बिना यह असंभव था।

मैं उन तमाम ज्ञात अज्ञात श्रोतों का आभारी हूँ जिनसे इस कार्य को करने में मुझे थोड़ी भी सहायता मिली है। उन सभी रचनाकारों का आभारी हूँ जिनकी पुस्तक मेरे लिए दीपक की तरह पथ प्रदर्शक की भूमिका निभाई। उन सभी दृश्य, अदृश्य प्रेरणाओं का कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मेरी सीमाओं को संभावना बनाने में मदद की तथा निरंतर आगे बढ़ाते रहने की प्रेरणा दी।

कृष्ण कुमार पासवान

अनुक्रमणिका

भूमिका		i-ix
प्रथम अध्याय :	समाजभाषाविज्ञान : सैद्धांतिकी	1-42
द्‌वितीय अध्याय :	साहित्य और समाजभाषाविज्ञान का अंतःसंबंध	43-64
तृतीय अध्याय :	फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में चित्रित भाषायी समाज	65-113
चतुर्थ अध्याय :	फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में चित्रित बहुभाषिकता, व्यक्ति-बोली और समाज-बोली	114-156
पंचम अध्याय :	फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में अभिव्यक्त व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन	157-210
उपसंहार :		211-216
आधार-ग्रंथ सूची :		217
संदर्भ-ग्रंथ सूची :		218-221
सहायक-ग्रंथ सूची :		222-226
परिशिष्ट :	प्रो. दिलीप सिंह से साक्षात्कार	

प्रथम अध्याय

समाजभाषाविज्ञान : सैद्धांतिकी

❖ <u>समाजभाषाविज्ञान : सैद्धांतिकी</u>

- क्षेत्र निर्धारण
- विषय निरूपण

❖ समाजभाषाविज्ञान की सैद्धांतिकी

- भाषाविज्ञान और समाजभाषाविज्ञान
- समाजभाषाविज्ञान
- भाषायी समाज
- भाषा और बोली
- प्रयुक्ति
- व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और क्षेत्रीय-बोली
- लिंग्वाफ्रेंका
- पिजिन
- लिंग्वाफ्रेंका और पिजिन में अंतर
- क्रियोल
- पिजिन और क्रियोल में अंतर
- बहुभाषिकता
- कूट-मिश्रण और कूट-अंतरण
- भाषा-विकल्पन

समाजभाषाविज्ञान : सैद्धांतिकी

क्षेत्र-निर्धारण

रेणु के साहित्य पर हिन्दी में एवम् अन्य देशी और विदेशी भाषाओं में अनेक दृष्टियों से शोध किए जा चुके हैं। इसमें मूल रूप से इनके उपन्यासों में चित्रित आंचलिकता, समाजशास्त्र, राजनीतिक चेतना, सामाजिक विकृति, सामाजिक यथार्थ, भाषा-कौशल, आंचलिक भाषा, लोक-चेतना, ग्राम्य-बोध, किसानी संस्कृति, स्वतंत्रता पूर्व और उत्तर भारत की सामाजिक परिस्थिति इत्यादि पर कार्य किये गए हैं। इन्हीं दृष्टियों को केन्द्र में रख कर इनके साहित्य का विवेचन विश्लेषण किया गया है। इन सभी शोध-कार्यों में रेणु के कथा-साहित्य की भाषा को सभी ने महत्व दिया है। कुछ लोगों ने इसके महत्व को अस्वीकार भी किया है। इनमें विशेष रूप से प्रगतिशील खेमे के आलोचक हैं। रेणु के साहित्य की आलोचना से सम्बंधित कुछ महत्वपूर्ण आलेख मधुरेश के संपादन में प्रकाशित दो पुस्तकों 'मैला आंचल का महत्व' और 'फणीश्वरनाथ रेणु और मार्क्सवादी आलोचना' में संकलित हैं। रेणु के साहित्य को समझने में उनके समकालीन आलोचकों एवं पत्र-पत्रिकाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। प्रो. सुवास कुमार की पुस्तक *'आंचलिकता यथार्थवाद और फणीश्वरनाथ रेणु'*, इनके कथा साहित्य के अनेक पहलुओं को रेखांकित करती है। रघुवीर सहाय ने भारतीय और रूसी साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन पर बात करते हुए हिंदी में रेणु के साहित्य को आधार मानकर *'आंचलिकता या राष्ट्रीयत'*[i] की अवधारणा देने की कोशिश की है। कैथरिन हैंसन ने *'रेणु की आंचलिकता : भाषा और रूप'* शीर्षक लेख में रेणु के साहित्य की भाषा का बारीक विश्लेषण किया है। इनके विश्लेषण के केन्द्र में भी भाषा और आंचलिकता ही है। कैथरिन अपने इस लेख में रेणु द्वारा प्रयुक्त ग्राम-बोली की भाषावैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करते हुए लिखती हैं -

"अशुद्ध वर्तनी का यह हास्य एकदम स्पष्ट है,किन्तु इसके स्रोत क्या हैं? कान क्या सुनते हैं और आँखें क्या देखती हैं, इन दोनों के बीच की दूरी को दर्शाते हुए रेणु पाठक के भाषा-बोध से क्रीड़ा कर रहे हैं। रेणु ने इन शब्दों को इस रूप में लिया है कि वे पूर्वी हिंदी के उपन्यास से मिलते-जुलते हों, पर इसके बावजूद हिंदी के शिक्षित पाठक वर्ग की दृष्टि में ये रूप भ्रष्ट और अस्वीकार्य हैं।"[2]

कैथरिन हैंसन यहाँ रेणु की भाषा का विश्लेषण करते हुए यह रेखांकित करती हैं कि रेणु की भाषा, कान क्या सुनते हैं और आँख क्या देखती है? इसके बीच की दूरी को दर्शाती है। रेणु के साहित्य की भाषा की इससे सटीक व्याख्या शायद नहीं हो सकती। असल में रेणु जब कुछ लिख रहे होते हैं तो उनकी दृष्टि में केवल पात्र, चरित्र या घटना ही नहीं होते बल्कि पूरे परिवेश को मूर्तमान करना उनका लक्ष्य होता है। इसका सबसे महत्वपूर्ण प्रमाण रेणु के साहित्य में प्रयुक्त विभिन्न पात्रों, वाद्य यंत्रों, परिस्थितियों, पशु-पक्षियों आदि की ध्वनि के वर्णन में देखा जा सकता है। इन सभी ध्वनियों एवं बोलियों का प्रयोग रेणु सामाजिक आत्मीयता, सहजता और स्वाभाविकता को ध्यान में रखकर करते हैं। जितनी भी मानवीय और मानवेतर ध्वनियाँ हैं उन सब के लिए शब्द रचने का प्रयास रेणु के साहित्य में मिलता है। रेणु के साहित्य की जितनी सकारात्मक आलोचना हुई है उतनी ही नकारात्मक भी। रामविलास शर्मा अपने लेख 'प्रेमचंद की परंपरा और आंचलिकता' में लिखते हैं -

"आंचलिकता के नाम पर जो कुछ लिखा जाय वह सच नहीं होता। जनता के अंधविश्वासों को बढ़ा-चढ़ा कर दिखाया गया है, राजनीतिक पार्टियों के दोषों की अतिरंजिता और गुणों को नजरअंदाज किया गया है। उपन्यास का पहला हिस्सा आजादी मिलने से पहले का है। तब तक सोशलिस्ट काँग्रेस में ही थे। लेकिन उपन्यास में उनका चित्रण इस तरह किया गया है मानो काँग्रेस से उनका कोई

संबंध न हो। देश के आजाद होने से पहले ही (पृ. 231 पर) यह लिखा मिलता है, 'जमींदारी प्रथा खतम हो गई।' उस समय संथाल और गैर संथाल के ऐसा सोचने का कोई कारण नहीं दिखाई देता। उपन्यास का क्षेत्र मैथिली और बंगाल के बीच के प्रदेश का एक गाँव है। यहाँ के लोग मैथिली बोलते हैं या भोजपुरी? 'खंजड़ी बजा के गीत गवैछी' से मालूम होता है कि लोगों की भाषा मैथिली है। किन्तु भगवान भगत कहता है, 'अरे ई तो दस आदमी के काम बा, जो बा से एकरा में मिल के मदद करे के चाहीं। को हो सी प्रसाद?" ..... इन उदाहरणों से लगता है कि पूर्णिया का यह भाग मैथिली से अधिक भोजपुरी अंचल के अंतर्गत है।[3]

'मधुकर गंगाधर'[4] ने भी रेणु की रचनाशीलता को अस्वीकार किया है। रेणु के साहित्य की ऐसी आलोचना इनके रचना कर्म को प्रश्न के दायरे में खड़ा करने की कोशिश है। बाद में अनेक आलोचकों; परमानन्द श्रीवास्तव, नित्यानंद तिवारी, सूरज पालीवाल, सुवास कुमार, प्रदीप सक्सेना इत्यादि ने इनके साहित्य के भाषा वैविध्य को सराहा और उसकी आवश्यकता को रेखांकित करने का प्रयास किया है।

इस शोध में, रेणु के साहित्य पर अब तक किए गए शोध-कार्यों से इतर, केवल इसमें प्रयुक्त भाषा के सामाजिक संदर्भों की पड़ताल करने की कोशिश की गई है। पूरे शोध के केन्द्र में रेणु के उपन्यासों का समाजभाषाविज्ञान सापेक्षिक विश्लेषण है। समाजभाषाविज्ञान एक बृहत्तर अध्ययन क्षेत्र है। राजेन्द मेस्त्री की पुस्तक 'समाजभाषा-विज्ञान विश्वकोश' इसका प्रमाण है। समाजभाषावैज्ञानिक शोध प्राय: बोली जाने वाली भाषा पर होती है परंतु प्रस्तुत शोध लिखित भाषा पर है। इसलिए इस शोध के प्रथम अध्याय में उन्हीं मानदंडों का विशेष रूप से विश्लेषण किया जा रहा है जो साहित्य के विश्लेषण में कारगर है और जिनका संबंध इस शोध से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से है।

विषय-निरूपण

साहित्यिक शोध, साहित्य के विविध पहलुओं को समय के परिप्रेक्ष्य में समझने-समझाने और इसकी प्रासंगिकता की पड़ताल करने की प्रक्रिया है। इसके माध्यम से साहित्य के उन पहलुओं का उद्घाटन किया जाता है जो अब तक प्रकाश में नहीं आए हैं या उनकी जो व्याख्या की गयी है वे संतोषजनक नहीं हैं। प्रस्तुत शोध इसी क्रम में रेणु के साहित्य को समाजभाषावैज्ञानिक दृष्टि से समझने और समझाने का एक विनम्र प्रयास है। मेरी दृष्टि में रेणु के साहित्य पर अब तक समाजभाषावैज्ञानिक दृष्टि से कोई भी शोध कार्य नहीं किया गया है।

समाजभाषावैज्ञानिक शोध प्रायः बोली जा रही भाषा (Spoken Language) का किया जाता है। अर्थात् शोध-सामग्री बोली जा रही भाषा से ली जाती है। इस दृष्टि से प्रस्तुत शोध थोड़ा भिन्न है। यहाँ एक रचनाकार द्वारा लिखे गए साहित्य को समाजभाषाविज्ञान के मानकों द्वारा विश्लेषित करने का प्रयास किया जा रहा है। जब हम किसी बोली जा रही भाषा पर शोध करते हैं तो शोध-सामग्री संकलन की सीमाओं का निर्धारण स्वयं करते हैं। परन्तु जब किसी साहित्यिक कृति का समाजभाषावैज्ञानिक विश्लेषण करते हैं तो शोध-सामग्री के लिए किसी रचनाकार की कृतियों पर निर्भर करना पड़ता है। इस शोध में रेणु द्वारा रचित छः उपन्यासों '***मैला आँचल', परती : परिकथा', 'दीर्घतपा', 'जुलूस', 'कितने चौराहे'*** और '***पल्टू बाबू रोड***' के पत्रों के संवादों की भाषा का समाजभाषावैज्ञानिक विश्लेषण किया जा रहा है।

समाजभाषाविज्ञान की सैद्धांतिकी

भाषा सामाजिक संरचना को बनाए रखने वाला एक प्रमुख और सबल माध्यम है। इसमें सामाजिक व्यवहार की समस्त आधारभूत इकाइयाँ अंतर्निहित होती हैं। सामाजिक व्यवहार की संपूर्ण अभिव्यक्ति ही किसी भी भाषा की समृद्धि का प्रतीक होती है। अनेक शोध-कार्यों एवम् अध्ययनों से यह पुष्ट हो चुका है कि भाषा समाज सापेक्षिक होती है। समाज एक विकसनशील इकाई है। हजारों वर्षों के मानव विकास के इतिहास में समाज विकास के अनेक चरणों से गुजरते हुए आज वैश्वीकरण की चरम अवस्था पर पहुँच चुका है। विश्व-ग्राम की अवधारणा आज का सर्व प्रचलित एवं मान्य समाज दर्शन बन चुका है। ऐसी स्थिति में कोई भाषा किसी एक समाज की नहीं रह गई है और न ही कोई एक समाज किसी एक भाषा के अंदर सीमित रह गया है। ऐसे में समाज के ऊपर भाषिक दबाव और भाषा के ऊपर सामाजिक दबाव बढ़ा है। इस दबाव ने दोनों को अनेक रूपों में परिवर्तित, परिवर्धित और प्रभावित किया है। सामाजिक एवं भाषिक दबाव से दोनों के स्वरूप में जो परिवर्तन हुए हैं उससे पठन-पाठन के नए आयाम भी विकसित हुए हैं। भाषा अध्ययन के इन अनुशासनों में समाजभाषाविज्ञान भी एक है।

समाजभाषाविज्ञान विवरणात्मक भाषाविज्ञान की एक शाखा है। "यह भाषा और समाज के अंत:संबंधों को एक दूसरे के विभिन्न संदर्भों को केन्द्र में रखकर व्याख्यायित-विश्लेषित करता है। इसके अंतर्गत भाषा की संरचना और प्रयोग के उन सभी पक्षों एवं संदर्भों का अध्ययन किया जाता है जिसका संबंध सामाजिक और सांस्कृतिक प्रकार्य के साथ होता है। अत: इसके अध्ययन क्षेत्र के भीतर विभिन्न सामाजिक वर्गों की भाषिक अस्मिता, भाषा के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण एवम् अभिवृद्धि, भाषा की सामाजिक शैलियाँ,

बहुभाषिकता का सामाजिक आधार, भाषा-नियोजन आदि भाषा अध्ययन के वे सभी संदर्भ आ जाते हैं जिनका संबंध समाज एवं सामाजिक संस्थानों से है।"[5]

भाषा और समाज के अंत:संबंधों को समझने के लिए भाषा और समाज की अवधारणा को ठीक-ठीक समझना जरुरी है। Ronald Wardhaugh ने भाषा और समाज को स्पष्ट करते हुए लिखा है- 'कुछ व्यक्तियों का ऐसा समूह जो किसी उद्देश्य के लिए एक साथ रहते हैं वह समाज है और किसी समाज द्वारा जो सम्प्रेषण के माध्यम के रूप में प्रयोग किया जाता है वह बोली या भाषा है।'[6]

इस प्रकार देखा जाए तो समाज और भाषा एक दूसरे के पूरक हैं, पंरतु भाषा और समाज के अंत:संबंधों के और भी अनेक आयाम हैं जिनका अध्ययन समाजभाषाविज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। उदाहरणस्वरूप किसी एक समाज के होते हुए भी हर व्यक्ति अपने आप में भिन्न होता है। अर्थात् सामाजिक एकरूपता के बावजूद वैयक्तिक स्तर पर विविधताएँ दिखाई पड़ती हैं। इसके कारण समाज में भाषा के स्तर पर अनेकरूपता दिखाई पड़ती है। यही कारण है कि समाज के एक होने पर भी भाषिक स्तर पर बहुरूपता दिखाई पड़ती है और समाज बहुभाषिक हो जाता है।

आधुनिक समय में बहुभाषिकता ने भाषा-अध्ययन को अनेक प्रकार से प्रभावित किया है। इससे भाषा-विकल्पन की संभावनाएँ बढ़ी हैं। भाषा-विकल्पन ने भाषा अध्ययन के अनेक विकल्पों को जन्म दिया है। फलस्वरूप भाषा अनुशीलन के अनेक परिभाषिकी गढ़े गए, मसलन भाषायी समाज, बहुभाषिकता, पिजिन, क्रियोल, कोड-मिक्सिंग, कोड-स्विचिंग, लिंग्वाफ्रेंका, भाषा-विकल्पन, डायग्लोसिया, व्यक्ति-बोली, समाज-बोली इत्यादि। इन सभी का अध्ययन समाजभाषाविज्ञान के अंतर्गत किया जता है।

भाषाविज्ञान और समाजभाषाविज्ञान

पश्चिम में भाषा अध्ययन अनुशीलन की परंपरा लगभग दो हजार वर्ष पुरानी है। भारत में इसकी शुरूआत वैदिक काल से मानी जाती है। इन परंपराओं में भाषा-अध्ययन अनुशीलन की अनेक प्रणालियाँ रही हैं। आधुनिक समय में भाषा-अध्ययन की दो प्रणालियाँ प्रचलित हैं। पहली प्रणाली के अंतर्गत भाषा के अध्ययन में सिर्फ उसके आंतरिक पक्षों के विश्लेषण पर बल दिया जाता है। अर्थात् भाषा का अध्ययन सिर्फ भाषा की संरचना और स्वरूप को व्याख्यायित करने के लिए किया जाता है। भाषा-अध्ययन की इस शाखा को 'भाषाविज्ञान' (Core-Linguistics) कहा जाता है। इस प्रणाली में इस बात पर जोर दिया जाता है कि भाषा अपने आप में क्या है? यहाँ भाषा की संपूर्ण व्याख्या वैयाकरणिक सिद्धांतों के आधार पर की जाती है। जैसे -

'तुम यहाँ आओ'

इस वाक्य का विश्लेषण अगर भाषाविज्ञान (Core-Linguistics) के अंतर्गत किया जाए तो कहेंगे कि इस वाक्य में 'तुम' पुरुष वाचक सर्वनाम है। 'यहाँ' स्थान विशेष का सूचक है तथा 'आओ' आज्ञावाचक क्रिया है। यही इस वाक्य की वैयाकरणिक व्याख्या है। इस व्याख्या में वाक्य के सामाजिक संदर्भों पर ध्यान नहीं दिया गया है।

भाषा अध्ययन की दूसरी प्रणाली में भाषा को संप्रेषण का मूल आधार माना जाता है। यहाँ भाषा का अध्ययन अनुशीलन संप्रेषणीयता को केन्द्र में रखकर किया जाता है। अभिप्राय यह कि इस प्रणाली में भाषा के सामाजिक पक्षों पर विशेष बल दिया जाता है। भाषा अध्ययन की इस प्रणाली को 'समाजभाषाविज्ञान' नाम से अभिहित किया गया है। समाजभाषावैज्ञानिक रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के अनुसार "भाषा एक समाज सापेक्षिक प्रतीक व्यवस्था है। इस प्रतीक व्यवस्था के मूल में सामाजिक तत्व निहित रहते हैं।"[7] समाज और

भाषा के अंत:संबंधों के अध्ययन की एक और प्रणाली विकसित है जिसे भाषा का समाजशास्त्र कहा जाता है।

रोनाल्ड वार्थों ने अपनी पुस्तक *An Introduction to Sociolinguistics* में कौलमस (Coulmas) के हवाले से लिखा है कि - 'समाजभाषाविज्ञान और भाषा का समाजशास्त्र के बीच कोई निश्चित विभाजक रेखा नहीं है। क्योंकि दोनों भाषा और समाज के अंत:संबंधों को ही व्याख्यायित-विश्लेषित करते हैं। इनके बावजूद कुछ ऐसे पक्ष भी हैं जहाँ पर अंतर है। इस अंतर को कॉलमस micro और macro के रूप में देखते हैं।'[8] रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने भाषा का समाजशास्त्र को स्पष्ट करते हुए लिखा है - "भाषा के समाजशास्त्र में भाषा के उन सवालों का अध्ययन करते हैं जिनका संबंध समाज एवम् उनके संस्थानों से होता है। भाषा सिर्फ विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं होती, बल्कि स्वयं में वह कथ्य भी है जो सामाजिक अस्मिता के प्रश्नों से जुड़ी होती है। जैसे किस भाषा को राजभाषा बनाया जाय, किसे शिक्षा की माध्यम भाषा के रूप में। भाषा को सामाजिक प्रतीक मानकर इसका विवेचन-विश्लेषण किया जाता है। यह भाषा और समाज की संकल्पना को एक दूसरे के घात-प्रतिघात के रूप में देखता है।"[9] समाजभाषाविज्ञान में भाषा और समाज के अंत:संबंधों एवं संदर्भों की व्याख्या वक्ता के परिवेश, संस्कार, जाति, धर्म, वर्ण, वर्ग, लिंग, उम्र, पद, पेशा, आदि सामाजिक संदर्भों के आधार पर की जाती है।

समाजभाषाविज्ञान

'समाजभाषाविज्ञान (*Sociolinguistics*) शब्दावली का प्रयोग सर्वप्रथम 1939 में थॉमस सी. हडसन के द्वारा एक लेख *Sociolinguistics in India* में किया गया। आगे चलकर नाइडा ने अपनी पुस्तक *Morphology* में 1949 में किया और फिर दार्शनिक और कवि Haver currie के द्वारा 1952 ई. में इस शब्द का घोषित रूप से समाज और भाषा के अंत:संबंधों को विलेषित करने वाले परिभाषिक शब्द के रूप में किया गया।'[10] इसका

अभिप्राय यह नहीं कि समाजभाषाविज्ञान का अध्ययन 1952 से प्रारंभ हुआ। समाजभाषाविज्ञान की शुरूआत जाने-अनजाने 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही हो चुकी थी। '1870 के आसपास जर्मनी'[11] के कुछ भाषा वैज्ञानिकों ने यहाँ की बोलियों का अध्ययन प्रारंभ किया। अध्ययन के दौरान उन्होंने पाया कि स्थान के परिवर्तन के साथ-साथ बोलियों में भी परिवर्तन होता जाता है। यह परिवर्तन ध्वनि, स्वनिम, शब्द आदि भाषिक इकाइयों में दिखाई पड़ा। इससे इन्होंने यह निष्कर्ष दिया कि भौगोलिक परिवेश का प्रभाव बोली या भाषा पर पड़ता है। यहीं से पठन-पाठन का एक नया अनुशासन 'बोलीविज्ञान' (Dialectology) का प्रारंभ हुआ। बोलीविज्ञान को ही समाजभाषाविज्ञान का प्रस्थान बिन्दु माना जाता है। आगे चलकर 20वीं शताब्दी के छठे दशक में 'विलियम लेबॉव'[12] ने उत्तरी अमेरिका के एक द्वीप मार्था विनयार्ड की भाषा का अध्ययन किया। इस शोध में पहली बार उन्होंने सामाजिक संरचना को केन्द्र में रखकर भाषा का विश्लेषण किया। अपने शोध में पाया कि युवा पीढ़ी की भाषा अपने से बुजुर्ग पीढ़ी से भिन्न है। इसकी वजह की तलाश की तो पाया की मार्था विनयार्ड की जो युवा पीढ़ी है वह प्राय: रेस्तराँ में काम करते हैा या गाइड का काम करते हैं; जिसके कारण उनका संपर्क इस द्वीप पर आने वाले पर्यटकों से लगातार बना रहता है। ये लगातार उनकी भाषा के संपर्क में रहते हैं जिससे इनकी भाषा उनके अपने पहले की पीढ़ी से भिन्न है। यहाँ की बुजुर्ग पीढ़ी प्राय: मछली पकड़ने का काम करते हैं और समुद्र के किनारे रहते हैं। उनका संपर्क अपने मछुआरे समाज से है। इसलिए उनकी भाषा में कोई परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ता है। इस शोध से लेबॉव ने यह प्रमाणित किया कि भाषा और बोली का स्वरूप वहाँ की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। सामाजिक सम्पर्क का भाषा की संरचना के परिवर्तन-परिवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका है। आगे चलकर फर्गुसन, हैलिडे, बर्नस्टीन, हर्डसन, पीटर स्ट्रॉक वेल, रोमेन सुजेन,

मुसहलहौसलर, गम्पर्ज, विलियम ब्राईट, पीटर ट्रूडगिल, राजेन्द्र मेस्त्री, डेल हेम्स आदि विद्वानों ने इस अनुशासन को परिवर्धित, विकसित किया।

यूँ तो समाजभाषाविज्ञान की अनेक संकल्पनाएँ हैं जो भाषा और समाज के संबंधों को विश्लेषित करती हैं पर साहित्य के समाजभाषावैज्ञानिक विश्लेषण के लिए भाषायी-समाज, व्यक्ति-बोली, समाज-बोली, कूट-मिश्रण, कूट-अंतरण, बहुभाषिकता, भाषा-विकल्पन, प्रयुक्ति, डायग्लोसिया आदि मानदंडों का प्रयोग किया जाता है। चूँकि समाजभाषाविज्ञान की अवधारणा को समझने में भाषा, बोली, पिजिन, क्रियोल, लिंग्वाफ्रेंका आदि को समझना जरूरी है इसलिए इसका भी परिचयात्मक विवरण इस अध्याय में दिया जा रहा है।

भाषायी समाज (speech Community)

भाषायी समाज, आधुनिक भाषाविज्ञान की एक महत्वपूर्ण संकल्पना है। इसने भाषा अध्ययन को एक नई दिशा दी है। दुनियाँ के प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक भाषायी पहचान होती है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और भाषा एक समाज सापेक्षिक प्रतीक व्यवस्था। इसलिए किसी भी व्यक्ति की सामाजिक पहचान के साथ-साथ उसकी भाषायी पहचान भी होती है। यह भाषायी पहचान भाषाविज्ञान में भाषायी समाज के रूप में अभिव्यक्त होती है। इसकी परिभाषा अनेक विद्वानों ने अपने-अपने तरीके से दी है। डॉ. भोलानाथ तिवारी लिखते हैं - 'भाषायी-समाज ऐसे समाज को कहते हैं, जिसके सदस्य विचारों की अभिव्यक्ति करने तथा अभिव्यक्ति के माध्यम से विचारों को समझने की दृष्टि से आपस में बँधे होते हैं।"[13] इसकी अवधारणा ब्लूमफील्ड ने अपनी प्रसिद्ध कृति '*लैंगुएज*' (Language) में दी है। वे लिखते हैं - "भाषायी समुदाय ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो परस्पर विचार विनिमय के लिए एक भाषा रूप से जुड़े होते हैं।'[14] आगे चलकर अनेक भाषाविदों ने इस पर गहन अध्ययन कर अपनी-अपनी दृष्टि से इसे परिभाषित करने का प्रयास किया। रोमेने सुजेन का मानना है कि 'भाषायी समाज लोगों का ऐसा

समूह है जो किसी एक भाषा की साझेदारी अपने वार्तालाप में नहीं करता बल्कि किसी एक भाषा के नियमों को साझा करता है। इस प्रकार भाषायी समाज का यह सीमांकन या परिभाषांकन भाषागत से ज्यादा समाजगत है। अर्थात् समाज की भाषिक प्रवृत्ति पर निर्भर है।'[15]

गम्पर्ज, हडसन, हेम्स, लेवोव आदि भाषावैज्ञानिकों ने भी इस पर अपना-अपना मत व्यक्त किया है। इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि कुछ ने भाषायी समुदाय का अभिप्राय लोगों के जातीय समूह से, कुछ ने सामाजिक संस्थाओं से और कुछ ने एक तरह के भाषा भाषी समाज से लिया है। इन तथ्यों के आलोक में विचार किया जाए तो कहा जा सकता है कि 'भाषायी समाज' लोगों के ऐसे समूह को कहते हैं जो विचार विनिमय के लिए एक खास तरह के भाषायी नियमों या भाषा-रूप का प्रयोग करते हैं। ऐसा संभव है कि इसमें अन्य 'कोड' (भाषा) के शब्द भी हों परंतु उनका अर्थ उस समुदाय के भाषायी संस्कार के अनुरूप होता है। इस प्रकार के भाषायी समूह के मुहावरे, लोकोक्ति एवं सांस्कृतिक शब्दावली अपने आप में विशिष्ट और विलक्षण होते हैं, जो अन्यत्र अनुपलब्ध या अपूर्ण रूप में पाये जाते हैं। उदाहरण स्वरूप हिंदी की अनेक बोलियों को लिया जा सकता है। भोजपुरी, मगही, मैथिली, अंगिका, बज्जिका ये सभी बिहार के अलग-अलग क्षेत्रों में बोले जाने वाले भाषा-रूप हैं। इसके बोलने वाले भी एक खास क्षेत्र के हैं। ये सभी भाषाएँ थोड़ी कठिनाई के साथ आपस में समझी और बोली जाती हैं। बावजूद इसके ये सभी भिन्न भाषायी समाज हैं। इनके बोलने वालों की अपनी एक विशिष्ट पहचान है। ये सभी *मगही भाषायी समाज, मैथिली भाषायी समाज, भोजपुरी भाषायी समाज, अंगिका भाषायी समाज, बज्जिका भाषायी समाज* के नाम से जाने जाते हैं। इसी प्रकार ब्रज, अवधी, बुंदेली, पंजाबी, गुजराती आदि भाषाओं का अपना-अपना भाषायी समाज है। हर भाषायी समाज की अपनी-अपनी विशिष्टता होती है। यह विशिष्टता उन्हें एक दूसरे से अलग करती है। यह

विशिष्टता ही इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा का कारण होती है। इन्हीं मानकों पर इनका वर्गीकरण किया जाता है। फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में मूल रूप से हिंदी, मैथिली, मगही, भोजपुरी, अंगिका, बाँगला, नेपाली, अंग्रेजी और संथाली भाषायी समाज का चित्रण मिलता है। इसकी चर्चा तीसरे अध्याय में की जाएगी।

भाषा और बोली (Language and dialect)

मनुष्य की आवश्यताएँ कई प्रकार की होती हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति अलग-अलग तरीके से होती है। इस पूर्ति की अभिव्यक्ति के लिए भाषा के भी अलग-अलग रूप प्रयुक्त होते हैं। विद्वानों के द्वारा भाषा और समाज के अंत:संबंधों पर बात करते हुए भाषा की जो परिभाषा दी गयी है उसके अनुसार एक खास तरह का समाज अपने विचार विनमय के लिए जो कह रहा है वह भाषा है। परंतु समाजभाषाविज्ञान अभिव्यक्ति के प्रत्येक रूप को भाषा कहना उचित नहीं मानता। यह भाषा को विविध सामाजिक, सांस्कृतिक पक्षों के आलोक में व्याख्यायित करता है। रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के अनुसार "भाषा-बोली भेद का आधार वह भाषिक चेतना है जिसकी प्रकृति संस्थागत है। इसलिए इसमें भेद का कारण भाषावैज्ञानिक न होकर समाजभाषावैज्ञानिक होता है। प्राय: यह देखा गया है कि जातीय पुनर्गठन की सामाजिक प्रक्रिया के दौरान कोई 'बोली' व्यापार, राजनीति या संस्कृति के कारण अन्य जनपदीय बोलियों की तुलना में विशेष महत्व प्राप्त कर लेती है, फलस्वरूप अन्य बोली बोलने वालों के बीच संपर्क साधन का भी काम करने लगती है। बाद में चलकर अन्य बोलियों का प्रयोग करने वाले व्यक्ति भी इसे प्रतिष्ठा और संपर्क साधन के रूप में प्रयुक्त बोली के साथ अपनी सामाजिक अस्मिता जोड़ने लगते हैं।"[16] इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि भाषा का गहरा संबंध सामाजिक अस्मिता, आवश्यकता और प्रतिष्ठा से है। यही तथ्य किसी भाषा को बोली और बोली को भाषा का सम्मान

दिलाता है। भाषा और बोली के बीच का मूल अंतर सामाजिक स्वीकृति, आवश्यकता और प्रतिष्ठा ही तय करता है।

भाषा और बोली मूलत: क्या हैं? इनके बीच अंतर क्या है? इसको लेकर विद्वानों की अलग-अलग राय है। 'आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा'[17] ने एडवर्ड सपीर, एल.एच. ग्रे और मारियो पेय को उद्धरित करते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि भाषा और बोली के बीच निश्चित विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती।

इन सभी विद्वानों ने एक मत से स्वीकार किया है कि भाषा और बोली में अंतर की कोई एक निश्चित विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती। इनमें से मारियो और रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव की मान्यता मेल खाती दिखाई पड़ती है। इनका मत है कि कोई बोली ही किन्हीं सामाजिक-राजनीतिक कारणों से भाषा बन जाती है। इसका उत्तम उदाहरण खड़ी बोली हिंदी है।

आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा बोधगम्यता के आधार पर भाषा और बोली के बीच अंतर स्पष्ट करते हुए लिखते हैं- "एक भाषा की विभिन्न बोलियाँ बोलने वाले परस्पर एक दूसरे को समझ लेते हैं, किन्तु विभिन्न भाषाएँ बोलने वाले एक दूसरे को नहीं समझते ..... खड़ी बोली में 'मैं जाता हूँ' बोलने वाला ब्रज का 'जात हौं' अनायास समझ लेगा, किन्तु अंग्रेजी का 'आई गो' नहीं समझ सकता। इसलिए कि खड़ी बोली या ब्रज भाषा हिंदी की बोलियाँ हैं पर हिंदी और अंग्रेजी दो अलग-अलग भाषाएँ।"[18] रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव बिना किसी का नाम लिए भाषा-बोली में अंतर को स्पष्ट करने के लिए निर्मित 'बोधगम्यता' के आधार को नकारते हैं। इनके अनुसार - "भाषा बोली के संबंधों पर विचार करते हुए कुछ विद्वानों ने 'बोधगम्यता' के सिद्धांत को सामने रखकर यह संकेत दिया है कि भाषा और बोली में व्याकरणिक भेद तो होता है पर उतना नहीं कि उसके बोलने वाले एक दूसरे की बात समझ न सकें। इस दृष्टि से दो बोलियाँ जब परस्पर बोधगम्य न होंगी तब दो भाषाएँ

कहलाएँगी। इसके विपरीत जब बोधगम्यता की स्थिति होगी तब वे एक ही भाषा की दो बोलियाँ कही जाएँगी। चीनी भाषा की मान्य कई बोलियाँ (मंडारिन, केंटोनीज, पेकिंगीज) आपस में बोधगम्य नहीं हैं, क्योंकि इनके बोलने वाले एक दूसरे की बात नहीं समझ पाते, फिर भी वे एक भाषा की भिन्न बोलियाँ हैं। इसके विपरीत फ्रेंच और इतालवी अपनी-अपनी भाषा में बात करते हैं और वे एक दूसरे की बात समझ लेते हैं, फिर भी जातीय इतिहास, साहित्य, संस्कृति एवं राजनीतिक आधार इन्हें दो भिन्न भाषा-भाषी बना देते हैं। इसी प्रकार मगही और ब्रज हिंदी भाषा की दो बोलियाँ हैं, जबकि इनकी भाषिक संरचना एक दूसरे से पर्याप्त भिन्न है और इनके बोलने वाले एक दूसरे की बोली कठिनाई से ही समझ पाते हैं। इसके विपरीत हिंदी और पंजाबी दो भिन्न भाषाएँ हैं, जबकि इनकी भाषिक संरचना में पर्याप्त समानता है और इसके प्रयोक्ता काफी आसानी से एक दूसरे की बात समझ लेते हैं। ऊपर के उद्धरण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भाषा-बोली भेद का बोधगम्यता का आधार तर्कसंगत नहीं है।"[19] रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के इन तर्कों से सहमत हुआ जा सकता है। असल में किसी भाषा का बोली बनना या बोली का भाषा के रूप में स्थापित होना, उसके सामाजिक प्रयोग एवं संदर्भ पर निर्भर करता है। यह प्रयोग और संदर्भ बहुआयामी हो सकते हैं जिस पर रोनाल्ड वर्धो ने अपना विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि 'भाषा से अभिप्राय किसी एक भाषायी नियम या एक तरह के नियमों-सी प्रतीत होती बोलियों के समूह से है जबकि बोलियाँ किसी एक तरह के भाषायी नियम को दर्शाती हैं।'[20] भाषा के रूप में खड़ी बोली हिंदी इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। इसमें कई बोलियों का समागम है, जबकि अवधी या भोजपुरी एक बोली है।

निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि भाषा प्रयोग में जितना व्यापक और एक रूपी होती है उसका प्रयोग उतना ही अधिक और सहज होता है। अर्थात् भाषा में व्यापकता, सहजता और एकरूपता का होना अनिवार्य है जबकि बोलियों में इसकी संभावना

बहुत ज्यादा नहीं होती। भोलानाथ तिवारी ने इसका समर्थन अपनी पुस्तक *'हिंदी भाषा की सामाजिक भूमिका'* में किया है। इन्होंने किसी भी भाषा के लिए मानकीकरण को मुख्य आधार माना है। मानकीकरण का अभिप्राय सहजता एवम् एकरूपता से है जिससे प्रयोक्ता को बोलने या समझने में कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। 'भोलानाथ तिवारी ने भाषा के चार लक्षणों ऐतिहासिकता, मानकीकरण, जीवंतता और स्वायत्ता की चर्चा की है।'[21]

1. ऐतिहासिकता (Historicity) : ऐतिहासिकता का संबंध भाषा की प्राचीन परंपरा से है। जब कोई भाषा काल की दृष्टि से सतत् प्रवाहमान होती है तो उसका स्वरूप परिनिष्ठित और कुछ क्रमिक नवीनता के साथ स्थिर और एक रूप हो जाता है। और कई पीढ़ियों तक क्रमिक रूप से चलती रहती है। भाषा की यह क्रमिकता ही उसकी ऐतिहासिकता को सिद्ध करती है।
2. मानकीकरण (Standardization) : मानकीकरण ही किसी भाषा का प्रमुख गुण है जिसके कारण वह अपने पूरे क्षेत्र में व्याकरण और शब्दावली की दृष्टि से समरूप होती है। मानकीकरण किसी भाषा के व्यापक प्रयोग का प्रमाण होता है।
3. जीवंतता (Vitality) : भाषा की जीवंतता का अभिप्राय उसके प्रयोग से है। यदि कोई भाषा किसी समाज के द्वारा बोली जा रही है तो उसे जीवित माना जाता है और जो समाज में व्यवहृत नहीं होती वह मृत। हिंदी, मलयाली, अंग्रेजी, फ्रेंच, चीनी आदि जीवित भाषाएँ हैं जबकि संस्कृत, लैटिन, पाली आदि मृत हो चुकी भाषाएँ हैं।
4. स्वायत्तता (Autonomy) : स्वायत्तता का आशय भाषा के स्वतंत्र अस्तित्व से है। स्वतंत्र अस्तित्व का अर्थ है आत्मनिर्भरता। जब कोई भाषा अभिव्यक्ति की पूर्णता के लिए किसी अन्य भाषा पर निर्भर नहीं होती तो उसे स्वायत्त माना जाता है। परंतु कोई भाषा यदि स्वायत्त नहीं होती, किसी अन्य भाषा पर निर्भर होती है तो

उसे बोली कहा जाता है। जैसे हिंदी अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए किसी अन्य भाषा पर निर्भर नहीं है जबकि अवधी, भोजपुरी आदि हिंदी पर निर्भर है। इसलिए ये सभी बोलियाँ हैं; भाषा नहीं।

हडसन ने मानक भाषा की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि 'मानक भाषा उसी सीमा तक आवश्यक हो सकती है जिस हद तक वह समाज से बंधी रहती है और उसे प्रभावित करती है।'[22]

किसी भाषा के लिए इन चारों तथ्यों का होना अनिवार्य है। बोली में ऐतिहासिकता तथा जीवंतता होती है किन्तु स्वायत्तता नहीं, क्लासिकल भाषाओं में स्वायत्तता, मानकता और ऐतिहासिकता होती है पर जीवंतता नहीं।

उपर्युक्त विवरण से पता चलता है कि भाषा और बोली का संदर्भ एक-दूसरे के बिना अपूर्ण है। किसी एक को ठीक-ठीक समझने के लिए दूसरे को समझना उसी तरह अनिवार्य है जैसे 'लाँग' को समझने के लिए 'पारोल' को, एककालिक को समझने के लिए ऐतिहासिक को। 'रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव'[23] ने इसे और भी स्पष्ट करने के लिए कुछ प्रायोगिक अंतर को दर्शाया है।

भाषा	बोली
1. सामाजिक प्रकार्य में भाषा अध्यारोपित (Superordinate) होती है।	1. सामाजिक प्रकार्य में बोली भाषा के अधीन (Subordinate) होती है।
2. भाषा का क्षेत्रीय आधार अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत होता है।	2. बोली का क्षेत्र भाषा की तुलना में अपेक्षाकृत छोटा होता है।
3. भाषा का प्रयुक्ति क्षेत्र अधिक बहुमुखी होता है, क्योंकि यह साहित्य, शिक्षा,	3. बोली का प्रयुक्ति क्षेत्र सीमित होता है।

प्रशासन आदि अनेक व्यवहार क्षेत्रों में प्रयुक्त होती है।	
4. भाषा समाज में 'प्रतिष्ठा' और प्रभुता की द्योतक होती है।	4. बोली का प्रयोग समाज में प्रतिष्ठा का नहीं आत्मीयता का व्यंजक होता है।
5. भाषा का प्रयोग औपचारिक संदर्भ में होता है।	5. बोली का प्रयोग प्राय: अनौपचारिक संदर्भ में होता है।
6. भाषा, सापेक्षतया अधिक मानकीकृत होती है।	6. बोली में भाषा-विकल्पन सापेक्षतया अधिक होता है।
7. भाषा अपनी विभिन्न बोलियों के प्रयोगकर्ता के बीच संपर्क भाषा का काम करती है	7. बोली प्राय: मातृभाषा के रूप में ही प्रयुक्त होती है।

भाषा-बोली के बीच का यह अंतर और संबंध इस प्रकरण में एक वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करता है। उपर्युक्त विभिन्न विद्वानों के मतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इसमें जो अंतर दिखाई पड़ता है उसका मूल कारण इसका सामाजिक संदर्भ और प्रयोग है। फिर भी एक बात और जिसके बिना यह प्रसंग पूरा नहीं होता, वह यह कि भोलानाथ तिवारी ने जो चार मानक दिए हैं और रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने जो विभाजक रेखा खींची है, वह भाषा और बोली संबंधी राजनीतिक धारणाओं को पुष्ट करती हैं। सही मायने में देखा जाए तो दोनों के द्वारा मनुष्य अपनी अभिव्यक्ति करता है। कुछ व्यक्ति अपनी अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से करते हैं और कुछ बोली से। अत: अभिव्यक्ति के स्तर पर इनमें कोई अंतर नहीं है। चूँकि भाषा मानकीकृत होती है, उसके स्वरूप में स्थिरता और एकरूपता होती है, इसलिए उसके प्रयोग को बोली की अपेक्षा ज्यादा महत्व दिया जाता है।

इसे वक्ता की प्रतिष्ठा से जोड़कर देखा जाता है। बोलियों के संदर्भ में ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसका प्रयोग व्यक्ति अपनी आत्मीयता की अभिव्यक्ति के लिए करता है। कहने का अर्थ यह कि संवेदना एवम् आत्मीयता की पूर्ण अभिव्यक्ति एवं प्रकटीकरण मनुष्य बोली (मातृभाषा) के माध्यम से ही हो पाती है।

भाषा और बोली के भी कई रूप होते हैं जिसका आधार उसका सामाजिक प्रयोग है। भाषा को प्रयुक्तियों में बाँटा जा सकता है। उसी प्रकार बोली को व्यक्ति बोली, समाज बोली और क्षेत्रीय बोली के रूप में देखा जा सकता है।

प्रयुक्ति (Register)

भाषा अपने प्रयोग में विषमरूपी होती है। इसका प्रयोग और स्वरूप संदर्भ के अनुरूप बदलता रहता है। मसलन कार्यालय में जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया जाता है, वही भाषा किसी समारोह या उत्सव में प्रयुक्त नहीं होती। जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग हमउम्र मित्रों के साथ किया जाता है उसी तरह की भाषा का प्रयोग अपने पिता, माता या परिवार के बुजुर्ग सदस्यों से बात करते हुए नहीं करते। अभिप्राय यह कि भाषा के विविध रूपों का प्रयोग प्रयोजन के अनुरूप किया जाता है। इसी प्रकार अलग-अलग तरह के कामों में अलग-अलग तरह की भाषा अपनायी जाती है। भाषा का यह रूप उस कार्य की प्रतिबद्धता और आवश्यकता से जुड़ा होता है। भाषा की इसी कार्योपयोगिता को प्रयुक्ति कहा जाता है। Wikipedia के अनुसार - 'रजिस्टर भाषा का एक प्रकार है जो किसी विशेष सामाजिक संदर्भ में प्रयुक्त होता है .....इस परिभाषिकी का प्रथम प्रयोग भाषाविद् थॉमस बरटर्न राइड ने 1956 ई. में किया था।'[24] हडसन ने इसे परिभाषित करते हुए लिखा है कि 'रजिस्टर शब्द समाजभाषाविज्ञान में किसी विशेष तरह के कार्य से जुड़ी भाषा के लिए प्रयोग किया जाता है।'[25] रोनाल्ड वार्धो रजिस्टर के संदर्भ में अपना विचार व्यक्त करते हुए

लिखते हैं कि - 'रजिस्टर एक खास तरह की भाषा है जो एक खास तरह के व्यवसाय से जुड़ी होती है। जैसे चिकित्सक, बैंककर्मी, वायुयान चालक आदि की भाषा।'[26]

कहा जा सकता है कि हर व्यवसाय की अपनी प्रयुक्तियाँ होती हैं और हर भाषा में कई-कई प्रयुक्तियाँ होती हैं; जो अपने प्रयोग में भिन्न और विशिष्ट होती हैं। भोलानाथ तिवारी के अनुसार "किसी भाषा की विभिन्न प्रयुक्तियाँ पारिभाषिक शब्दावली की दृष्टि से तो अलग-अलग होती हैं, कभी-कभी अपनी भाषिक संरचना में भी अलग होती हैं। उदाहरण के लिए कार्यालयी हिंदी को ही लें, कार्यालय में प्रयुक्त प्रशासनिक शब्दावली (जैसे - प्रभाग, अनुभाग, संस्तुति, आवती, पावती) तो अन्य प्रयुक्तियों से अलग होती ही हैं उसकी भाषिक संरचना की भी यह विशेषता है कि उसमें निर्वैयक्तिक और कर्मवाच्य के वाक्य ही अपेक्षाकृत अधिक आते हैं। जैसे 'सर्वसाधारण को सूचित किया जाता है' न कि 'मैं सर्वसाधारण को सूचित करता हूँ'।"[27]

'भोलानाथ तिवारी ने प्रयुक्तियों के तीन आधार, विषय, अभिव्यक्त-रूप और शैली बताया है।'[28] विषय के रूप अर्थात् प्रशासन में भाषा का रूप, विज्ञान में, सामाजिक व्यवहार में इत्यादि। अभिव्यक्ति के रूप अर्थात् लिखित एवं मौखिक माध्यम में तथा शैली का अभिप्राय रूढ़िगत, सामान्य, औपचारिक, अनौपचारिक आदि से है।

व्यक्ति-बोली (Idiolect), क्षेत्रीय-बोली (Regional Dialect) और समाज-बोली (Sociolect)

किसी भी भाषा या बोली की सामाजिक एवं व्यवहारिक एकरूपता के बावजूद व्यक्तिगत स्तर पर थोड़ी विविधता होती है। यह विविधता व्यक्ति के ध्वनि से लेकर वाक्य विन्यास तथा उसके बोलने के लहजे तक में दिखाई पड़ती है। बोली या भाषा के इस रूप को 'व्यक्ति-बोली' कहते हैं। मोहनलाल ने सर हॉकेट के हवाले से लिखा है - "किसी निश्चित समय पर व्यक्ति विशेष का संपूर्ण वाग्-व्यवहार उसकी व्यक्ति बोली है।"[29]

व्यक्ति बोली संरचनात्मक भाषा विज्ञान की संकल्पना है। इसका अच्छा उदाहरण टी.वी. पर कार्यक्रम पेश करने वाले ऐंकर की भाषा में देखा जा सकता है। जिस किसी भाषा/बोली में जितने वक्ता होते हैं उसकी उतनी व्यक्ति-बोली होती हैं। पर इसमें इतने बारीक़ अंतर होते हैं कि सामान्य व्यक्ति के लिए यह निर्धारित कर पाना मुश्किल होता है।

व्यक्ति-बोली की तरह ही 'क्षेत्रीय-बोली' और 'समाज-बोली' होती है। क्षेत्र विशेष के कारण बोली में जो एकरूपता या विकल्पन देखने को मिलते हैं वह क्षेत्रीय बोली कहलाती है। क्षेत्रीय बोली के रूप में पटना की हिंदी, बनारस की हिंदी, दिल्ली की हिंदी, हैदराबादी हिंदी आदि को देख सकते हैं। इसी प्रकार सामाजिक स्तर पर बोली में जो एकरूपता या विकल्पन दिखाई देता है उसे समाज-बोली कहते हैं। उदाहरण के लिए शिक्षा के आधार पर शिक्षित समाज की भाषा, अशिक्षित समाज की भाषा। ऐसे ही धर्म के आधार पर बोलियों को देखा जा सकता है।

लिंग्वाफ्रेंका (Lingua franca)

मनुष्य की प्रवृत्ति समाज सापेक्षिक होती है। इसके सामाजिक होने की सिद्धि इसके भाषा-व्यवहार में दिखाई पड़ती है। यह संभव है कि किसी भी समाज में एक से अधिक भाषा के लोग रहते हों। पर अलग-अलग भाषायी समाज होने के कारण वे आपसी व्यवहार में एक ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं जो सभी समझ सकते हैं। इसी संपर्क की भाषा को 'लिंग्वाफ्रेंका' कहा गया है। रोमेन सुजेन के अनुसार 'लिंग्वाफ्रेंका एक प्राकृतिक संपर्क भाषा है जो विविध भाषायी समाज के बीच संपर्क भाषा का काम करती है।'[30] जब भिन्न-भिन्न मातृभाषा भाषी एक दूसरे से संपर्क स्थापित करना चाहते हैं तो माध्यम रूप में वे एक ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं जो दोनों जानते हैं। ऐसी माध्यम भाषा का मूल उद्देश्य विचार विनमय को संप्रेषणीय बनाना है। Ronald wardhough ने लिखा है कि 'लिंग्वाफ्रेंका एक ऐसी भाषा है जो अलग-अलग मातृभाषा-भाषी के बीच आसानी से संपर्क

साधने में प्रयुक्त होती है।'[31] लिंग्वाफ्रेंका को व्यावसायिक भाषा (Trade Language) संपर्क भाषा (Contact Language) अंतर्राष्ट्रीय भाषा (International Language) सहायक भाषा (Auxiliary language) आदि नामों से अभिहित किया गया है। विश्व के हर कोने में इस तरह की भाषाएँ हैं। *स्वाहिली* पूर्वीअफ्रीका में लिंग्वाफ्रेंका के रूप में प्रयुक्त होती है। भारत में इसके लिए *हिंदी* एवम् *अंग्रेजी* का प्रयोग किया जाता है।

पिजिन और क्रियोल

आधुनिकता ने अनेक क्षेत्रों में अध्ययन की अनेकानेक संभावनाओं को जन्म दिया। विज्ञान के विकास ने मनुष्य को करीब लाने की प्रक्रिया अत्यंत सरल कर दी। आपसी मेलजोल ने भाषा की पुरानी और मान्य संरचना को बदला और तोड़ा। आज यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि किसी भी समाज का प्रत्येक व्यक्ति द्विभाषिक या बहुभाषिक है। यातायात एवं जनसंपर्क के नवीन एवम् अति नवीन साधनों के विकास ने लोगों को सामाजिक और भाषिक, दोनों स्तरों पर जोड़ा है। बहुभाषिक व्यक्ति और समाज के आपस में जुड़ने से भाषाओं का विलयन भी तीव्रता से हुआ है। इस विलयन के फलस्वरूप भाषा के अनेक रूप हमारे सामने आए हैं। *पिजिन* और *क्रियोल* इसी प्रकार की भाषा या भाषा रूप हैं।

पिजिन (Pidgin)

पिजिन पर विचार करते हुए विश्वकोश में लिखा है कि 'पिजिन शब्द की उत्पत्ति को लेकर अभी भी मतभिन्नताएँ हैं। यह संभव है कि यह दक्षिणी अमेरिका के शब्द Pidian से बना हो या इंग्लिश अथवा पुर्तगाली शब्द बिजनेस का चीनी अपभ्रंश हो या इन दोनों के मिलने से उत्पन्न हुआ हो। पर इसका सामान्य अर्थ यह है कि यह एक ऐसी भाषा है जिसका प्रयोग अलग-अलग भाषा-भाषी आपसी संपर्क के लिए करते हैं।'[32]

इसकी उत्पत्ति के संबंध में इस तरह के मत 'मुहल्हौसलर की पुस्तक *Pidgin and Creole linguistics* में भी मिलते हैं।'[33] कुछ लोग इसे अंग्रेजी के बिजनेस शब्द का चीनी अपभ्रंश मानते हैं, तो कुछ पुर्तगाली शब्द *acupacao* (बिजनेस) का चीनी भ्रष्ट रूप। कुछ लोगों का मानना है कि पिजिन एक ऐसी दक्षिण अमेरिकी और भारतीय भाषा का मिश्रित रूप है जो उपनिवेशवाद के समय में दासों के बीच भाषा व्यवहार के लिए प्रयुक्त होता था। इन विद्वानों के मतों पर विचार किया जाय तो एक धारणा यह बनती है कि यह एक ऐसी भाषा है जो सामाजिक एवं भाषिक दबाव के फलस्वरूप निर्मित हुई है। 'इस संदर्भ में सबसे पहला अध्ययन सुचार्ड का मिलता है। सन् 1880 ई. में इनका एक प्रपत्र *kreolische Studien* नाम से प्रकाशित हुआ। यह इस विषय पर लिखा गया प्रथम प्रपत्र था।'[34] इन्होंने पिजिन को Lingua franca के रूप में देखा। अपने शोध में पाया कि जब दो या दो से अधिक भिन्न-भिन्न मातृभाषा-भाषी आपस में विचार विनिमय करते हैं तो जिस भाषा का प्रयोग होता है वह उन वक्ताओं में से किसी की मातृभाषा नहीं होती। इन्हीं लक्षणों के आधार पर पिजिन को अनेक विद्वानों ने परिभाषित करने की कोशिश की है।

पीटर मुहलहौसलर ने अपनी पुस्तक *Pidgin and Creale linguistics* में ब्लूमफील्ड, UNESCO, हॉल, बासेलर आदि के पिजिन संबंधी मतों को उद्धृत किया है।'[35] इन विद्वानों के मतों के आधार पर निष्कर्ष रूप में कहा कि 'पिजिन एक द्वितीय भाषा है जो भाषायी सम्प्रेषण की आवश्यकताओं के फलस्वरूप उत्पन्न होती है।'[36] सभी विद्वान इस बात से भी सहमत हैं कि यह किसी की मातृभाषा नहीं होती। P.H. Methews ने C*oncise Dictionary of Linguistics* में इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है कि 'पिजिन व्यवसाय के लिए विकसित की गई एक सामान्यीकृत भाषा है। पर यह ऐसे लोगों के बीच संपर्क भाषा के रूप में प्रयुक्त होती है जिनके बीच कोई दूसरी भाषा माध्यम रूप में नहीं होती।'[37]

इन परिभाषाओं में विद्वानों ने भले ही पिजिन का अलग-अलग नाम दिया हो पर एक स्वर में सभी ने इसे अलग-अलग भाषा-भाषियों की आपसी सम्प्रेषण की विवशता के फलस्वरूप विकसित भाषा के रूप में स्वीकार किया है। इन विद्वानों के द्वारा दिया गया नाम, चाहे संक्षिप्त भाषा हो या मिश्रित भाषा सभी में जो लक्षण कॉमन है वह है पिजिन का लिंग्वाफ्रेंका जैसा समान धर्मा गुण। धर्मपाल गाँधी ने इसे परिभाषित करते हुए लिखा है कि "पिजिन दो भाषाओं के संपर्क के फलस्वरूप निर्मित ऐसी भाषाएँ हैं जो दो भाषिक समुदायों में परस्पर विनिमय की आवश्यकता को लेकर उत्पन्न होती हैं।"[38]

अन्य समाजभाषावैज्ञानिक जैसे आर.ए. हडसन, पीटर स्ट्रॉकवेल आदि ने उपर्युक्त कथन को स्वीकार किया है। पिजिन की इन परिभाषाओं से एक बात और भी स्पष्ट होती है कि जब दो या अधिक भाषा-भाषी समुदाय आपस में मिलते हैं तो जो तीसरी भाषा अर्थात् संपर्क भाषा बनती है, उसकी व्याकरणिक संरचना, प्रतिष्ठित और उच्च वर्ग या श्रेणी की भाषा की होती है और शब्दावली अन्य भाषाओं की। इसका मुख्य उद्देश्य संप्रेषणीयता है इसलिए व्याकरण की संरचना अत्यंत सरल और सहज होती है। सरलता और सुबोधता इसकी पहली शर्त मानी जाती है।

पिजिन एवं पिजिनीकरण की प्रक्रिया को समझाते हुए धर्मपाल गाँधी ने एक उदाहरण प्रस्तुत किया है - "मान लिया जाए कि कोई बहुभाषा-भाषी क्षेत्र है जिसमें एक समुदाय की मातृभाषा 'क' तथा दूसरे की 'ख' है। और यह भी कल्पना कीजिए कि 'क' मातृभाषा वाले व्यक्ति में 'ख' भाषा की कुछ दक्षता है और 'ख' भाषा वाले सदस्यों में 'क' भाषा की। इनके वार्तालाप का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि इनके बीच संप्रेषण के लिए जो भाषा प्रयुक्त हो रही है वह न तो 'क' के मानक व्याकरण के अनुरूप है और न ही 'ख' के। दोनों की भाषाएँ 'क' और 'ख' के संपर्क में आने के फलस्वरूप संप्रेषणीयता की सुविधा के लिए अपने व्याकरण को सरलीकृत करती पाई जाती है। इसके अलावा

पर्यायवाची शब्दों का भी अध्याहार करते हुए वे सीमित शब्दावली तक अपने को परिसीमित करते चलती है। उदाहरणार्थ -

भाषा 'क' + भाषा 'ख' = 'क' पिजिनीकृत 'ख'

हिंदी + मराठी = 'हिंदी' पिजिनीकृत मराठी"[39]

इस उद्धरण में जहाँ तक सरलीकरण एवं संप्रेषणीयता की बात है वहाँ तक युक्तिपूर्ण है। पिजिन भाषा का यह प्रमुख लक्षण है, किन्तु इसे यह कहना कि भाषा 'क' और 'ख' एक दूसरे की भाषा को आंशिक रूप में समझते हैं, असंगत है। क्योंकि पिजिन भाषा की उत्पत्ति की पहली शर्त है कि दो या दो से अधिक ऐसे भाषा-भाषी जो एक दूसरे की भाषा को नहीं समझते हैं। ऐसे में उनके संप्रेषण के लिए जो भाषा निर्मित होती है वह पिजिन है। Ronald wardhaugh ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'यह एक ऐसी संक्षिप्त भाषा है जो ऐसे लोगों के संपर्क में आने के परिणामस्वरूप बनती है जिनके बीच कोई भी कॉमन लैंग्वेज नहीं होती। इसका संबंध केवल ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति से है। कोई भी वक्ता इस भाषा को मातृभाषा के रूप में नहीं सीखता।'[40]

रोनाल्ड वार्धों के इस कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि धर्मपाल गाँधी जिसे पिजिन कहते हैं वह पिजिन नहीं बल्कि भाषा-रूप है। कई विद्वानों ने बम्बइया हिंदी, कलकतिया हिंदी, आदि को पिजिन नाम दिया है, जो तर्कसंगत नहीं है। इन भाषाओं के अनेक शब्द मिलते-जुलते हैं जिसके प्रयत्न के सहारे अनायास ही कुछ अर्थ बोध हो जाता है। इस आधार पर देखा जाय तो भारत में पिजिन का अगर किसी भाषा में कुछ लक्षण मिलता है तो वह 'नागामिज' है। यह मूलतः बाँगला एवम् असमिया का मिला जुला रूप है जो इनके बीच संपर्क भाषा का काम कराती है। इसका व्याकरण असमिया भाषा का है और शब्द वहाँ के विभिन्न भाषाओं से लिए गए हैं। विश्व में अनेक भाषाओं के पिजिन हैं, जैसे

- *New Hebrides pidgin, Solomon Islands Pidgin, New Guinea Pidgin, China coast pidgin* इत्यादि।

लिंग्वाफ्रेंका और पिजिन में अंतर

पहले के विवरण में बताया जा चुका है कि लिंग्वाफ्रेंका को विद्वानों ने बहुभाषा-भाषी समुदाय के बीच संपर्क भाषा के रूप में देखा है। पिजिन भी इसी तरह की भूमिका निभाता है। पर ऊपर के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकल कर सामने आता है कि दोनों की जिम्मेदारी एक होते हुए भी इनमें बारीक अंतर है। पहला यह कि लिंग्वाफ्रेंका किसी भाषायी समुदाय की मातृभाषा हो सकती है परंतु पिजिन किसी की मातृभाषा नहीं होती। बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक समाज में ऐसा संभव है कि लिंग्वाफ्रेंका का प्रयोग व्यक्ति अपने कार्य क्षेत्र में और घर में दोनों जगह करते हों परंतु पिजिन का प्रयोग दोनों उद्देश्य के लिए नहीं किया जाता। इन सभी अंतरों का मूल कारण यह है कि लिंग्वाफ्रेंका किसी भाषायी समुदाय की प्राकृतिक भाषा है जो उनके द्वारा वाक् व्यापार में प्रयुक्त होती है जबकि पिजिन एक मिश्रित उत्पाद है जो अलग-अलग भाषायी समुदाय के आपसी संपर्क के कारण बनता है।

क्रियोल (Creole)

पिजिन अपनी प्रारंभिक अवस्था में सिर्फ मौखिक रूप में प्रयुक्त होती है। पर जब यह धीरे-धीरे स्थिर, विकसित और नई पीढ़ी की मातृभाषा बन जाती है तो क्रियोल कहलाने लगती है। क्रियोल शब्द 'प्रारंभ में उन यूरोपियन के लिए प्रयुक्त किया जाता था जो यूरोपियन और अफ्रीकन के मिश्रण से उत्पन्न होते थे। और ऐसे समूहों की भाषा को क्रियोल कहा जाता था।'[41]

पीटर मुहल्हौसलर ने भी 'जो भाषा जातीय एवं संस्कृति के मिश्रण से बनी है उसे क्रियोल कहा है।'[42] उपनिवेशवाद के दौर में क्रियोल रेड इंडियन एवं श्वेतों के संबंध से

उत्पन्न संतान को कहा जाता था। आगे चलकर, चूँकि पिजिन भाषा इसी तरह के मिश्रण से बनी थी, अत: जब यह किसी पीढ़ी की मातृभाषा बनी तो इस भाषा को भी क्रियोल नाम से जाना जाने लगा। इस भाषा की तीन प्रमुख विशेषताएँ, मिश्रित जाति एवं संस्कृति की भाषा, पिजिन भाषा की दूसरी अवस्था और प्राकृतिक भाषा जिसमें मनुष्य सोचता है, बतलाई गई हैं।'[43] संसार में बहुत सी पिजिन और क्रियोल भाषाएँ हैं। भारत के परिप्रेक्ष्य में दक्खिनी हिंदी को लिया जा सकता है पर उपर्युक्त सारी शर्तें इस पर लागू नहीं होती। वैश्विक परिदृश्य में उदाहरण के रूप में *'Hawaian creole English', 'Torrestraints creole English', 'New Guinea Tok pisin'* को देख सकते हैं।

पिजिन और क्रियोल में अंतर

पिजिन और क्रियोल दोनों एक ही भाषा की दो अलग-अलग अवस्थाएँ हैं। जातीय एवं सांस्कृतिक मिश्रण के फलस्वरूप पहले पिजिन बनती है, फिर यही विकसित होकर क्रियोल बन जाती है। पिजिन का संबंध सिर्फ मौखिक भाषा से है पर जब यह क्रियोल बन जाती है तो यह एक जाति, समाज या क्षेत्र विशेष की अस्मिता से जुड़ जाती है। इसकी अपनी एक लिपि होती है, अपना व्याकरण विकसित हो जाता है। इन्हीं बिन्दुओं के आधार पर 'दिलीप सिंह'[44] ने इनमें कुछ अंतर निर्धारित किया है : -

1. पिजिन के प्रयोक्ताओं की मूल भाषा (मातृभाषा) कुछ और होती है। क्रियोल के बोलने वालों की मूल या मातृभाषा वही होती है।
2. क्रियोल का एक निश्चित भाषा समुदाय होता है, पिजिन का नहीं।
3. क्रियोल का अपना सुनिश्चित भाषा क्षेत्र होता है, पिजिन का नहीं।
4. पिजिन रूप को सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं मिल पाती, क्रियोल को मिल जाती है।
5. पिजिन के मानकीकरण के यत्न नहीं किए जाते, क्रियोल का मानकीकरण किया जाता है।

6. पिजिन की व्यवस्थित शिक्षा देने की आवश्यकता प्रयोक्ता महसूस नहीं करते, क्रियोल को शिक्षा क्रम में स्थान दिलाने का भरपूर प्रयास करते हैं।
7. पिजिन कोई सुनिश्चित भाषा नहीं होती, क्रियोल होती है।

बहुभाषिकता (Multilingualism)

नाम से ही स्पष्ट है, दो या दो से अधिक भाषाओं को जानना द्विभाषिकता या बहुभाषिकता है। हिंदी में द्विभाषिकता का अभिप्राय कुछ लोग दो भाषाओं को जानने से लेते हैं परंतु "अंग्रेजी में Bilingualism में Multilingualism को समाहित मानते हैं। अर्थात् जहाँ-जहाँ 'द्विभाषिक' या 'द्विभाषिकता' शब्दों का प्रयोग हो वहाँ-वहाँ इसके अर्थ क्रमश: द्विभाषिकता या बहुभाषिकता लिया जाना चाहिए।"[45]

आज मानव विकास की चरम अवस्था पर पहुँच चुका है। जनसंपर्क के साधनों के विकास से विविध भाषा-भाषी समुदाय का मेलजोल बढ़ा है जिस कारण एक दूसरे की भाषा सीखने की प्रवृत्ति भी बढ़ी है। ज्ञान अर्जन की जिज्ञासा और होड़ ने इसे और भी प्रोत्साहित किया है। ऐसे में आज कोई भी एक भाषी नहीं है। प्राय: व्यक्ति एक से अधिक भाषा समझता है, बोलता है। अत: कहा जा सकता है कि आज के सभी मनुष्य बहुभाषिक हैं। बहुभाषिकता के कई कारण हैं। इनमें बहुसांस्कृतिकता और शिक्षा प्रमुख है। राष्ट्र की राजनीतिक नीतियाँ भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। भारतीय संस्कृति विविध संस्कृतियों का सम्मिलित रूप है। चूँकि संस्कृति किसी सीमा में नहीं बँधती, इसलिए इसका प्रवाह एक समाज से दूसरे समाज में और एक राज्य से दूसरे राज्य में निर्बाध होता रहता है। यही कारण है कि किसी खास संस्कृति से संबद्ध भाषा भी आसानी से एक भाषायी समुदाय से दूसरे भाषायी समुदाय तक पहुँचती है। इस प्रकार कह सकते हैं कि बहुसांस्कृतिकता बहुभाषिकता का महत्वपूर्ण कारण है।

शिक्षा भी व्यक्ति और समाज को बहुभाषिक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उदाहरण के रूप में भारतीय शिक्षा प्रणाली को देख सकते हैं। यहाँ हम घर में अपनी मातृभाषा में बात करते हैं, सामाजिक व्यवहार की भाषा दूसरी है और शिक्षा ग्रहण किसी अन्य भाषा में करते हैं। इन परिस्थितियों के कारण व्यक्ति बहुभाषिक हो जाता है। उदाहरण स्वरूप बिहार की शिक्षा प्रणाली एवं समाज की भाषाई स्थिति को देख सकते हैं। वहाँ के लोगों की मातृभाषा मगही, भोजपुरी, अंगिका, मैथिली या बज्जिका है। यहाँ की प्रारंभिक शिक्षा और माध्यमिक शिक्षा हिंदी माध्यम से दी जाती है और उच्च शिक्षा मुख्य रूप से अंग्रेजी माध्यम से दी जाती है। यही स्थिति लगभग पूरे भारत की है। तीसरा महत्वपूर्ण कारण देश की राजनीतिक नीतियाँ भी हैं। भारत में तीन भाषा सूत्री शिक्षा नीति का प्रावधान है। अर्थात् सभी राज्यों में तीन भाषाओं की पढ़ाई अनिवार्य माना गया है। इन सभी कारणों से यहाँ का समाज स्वाभाविक रूप से और बलपूर्वक बहुभाषिक बन जाता है।

भारत की बहुभाषिकता के विभिन्न पहलुओं को समझने में देवी प्रसन्ना पटनायक द्वारा संपादित पुस्तक *Multilingualism in India* बहुत सहायक है। इसमें कई लेख हैं जो उपर्युक्त वर्णित कारणों को रेखांकित करते हैं। हिंदी में रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, भोलानाथ तिवारी और दिलीप सिंह की पुस्तकें इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डालती हैं।

कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण

'बर्नस्टीन ने भाषा एवं भाषा रूपों को कोड (code)'[46] की संज्ञा से अभिहित किया है। आधुनिक भाषा-विज्ञान की यह एक महत्वपूर्ण संकल्पना है। इस स्थापना ने भाषा, बोली, शैली आदि अभिव्यक्ति के विविध रूपों से उत्पन्न भ्रमों की संभावनाओं को कम कर दिया है। अब भाषाविज्ञान में कोड कहने से विभिन्न भाषाओं एवं बोलियों का बोध होता है। भाषाविज्ञान कोश में लिखा है 'कोड शब्द का प्रयोग किसी भाषा या भाषा प्रकार के लिए किया जाता है।'[47] भाषा व्यवहार में भाषा-प्रयोग के विविध रूप होते हैं, इसी के आधार पर

कूट-मिश्रण (Code Mixing) और कूट-अंतरण (Code Switching) की संकल्पना भी विकसित हुई है।

कूट-मिश्रण (Code Mixing)

बहुभाषिकता आज के समाज की सबसे बड़ी विशिष्टता है। आज कोई भी व्यक्ति एक भाषा-भाषी नहीं है। ऐसे में भाषा प्रयोग के कई रूप उभरकर सामने आए हैं। कोड मिश्रण इन्हीं में से एक है। कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई वक्ता एक साथ, एक ही वाक्य में दो या दो से अधिक भाषाओं (Code) के शब्दों या उपवाक्यों का प्रयोग करता है। इस प्रक्रिया में व्याकरणिक संरचना किसी एक भाषा की होती है तथा शब्द, पद, पदबंध, उपवाक्य दूसरी भाषा के भी होते हैं। इस प्रकार का प्रयोग स्वाभाविकता और संप्रेषणीयता को प्रभावशाली बनाने के लिए किया जाता है। भारत में शिक्षित वर्ग और अशिक्षित वर्ग दोनों भाषा व्यवहार में हिंदी या बोलचाल की भाषा के साथ अंग्रेजी एवम् अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से करते हैं। जैसे -

मैं शॉपिंग करने मार्केट जा रहा हूँ।

मेरी ज़मीन का दाख़िल ख़ारिज़ कीजिए।

मास्टर साहब का तबादला हो गया।

राजू चिल्ड्रेंस पार्क में मटरगस्ती कर रहा है।

इन वाक्यों में 'शॉपिंग', 'मार्केट', 'मास्टर', 'चिल्ड्रेन्स पार्क' अंग्रेजी भाषा के शब्द हैं जबकि 'ज़मीन', 'दाख़िल-ख़ारिज़', 'तबादला', 'मटरगस्ती' ये सभी अरबी-फारसी के शब्द हैं जिसका प्रयोग अत्यंत प्रभावी और स्वाभाविक तरीके से इन वाक्यों में किया गया है। भाषा प्रयोग के इसी रूप को कूट-मिश्रण कहा जाता है। इसमें किसी एक भाषा के वाक्य में दूसरी भाषा के शब्दों एवं पदों का मिश्रण किया जा रहा है।

कूट-अंतरण (Code Switching)

भाषा व्यवहार में कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई वक्ता किसी एक भाषा में बातचीत के क्रम में बीच-बीच में किसी दूसरी भाषा के वाक्यों का प्रयोग करने लगता है। भाषा व्यवहार की इस प्रक्रिया को कूट-अंतरण या कूट-अंतरण कहा जाता है। इसकी एक शर्त यह है कि वक्ता और श्रोता दोनों संवाद में प्रयुक्त भाषाओं को जानता, समझता हो, और दोनों पर समान अधिकार रखता हो। जैसे -

1. आज मेरे पेट में दर्द हो रहा है। सो नॉट कमिंग फॉर प्लेयिंग।
2. तूने आज का नाटक देखा। इट वाज वेरी नाइस।

इन वाक्यों को देखने से पता चलता है कि इनका प्रथम वाक्य हिंदी में है परंतु दूसरा वाक्य अंग्रेजी में और दोनों वाक्यों में अंतरण की प्रक्रिया अत्यंत सहज और स्वाभाविक है। भारतीय जनमानस पर अंग्रेजी का गहरा प्रभाव है। लोग अंग्रेजी को प्रतिष्ठा भाषा समझते हैं अत: यहाँ की भाषा में प्राय: कूट-मिश्रण और कूट-अंतरण की प्रक्रिया में अंग्रेजी के शब्दों एवं वाक्यों का प्रयोग ज्यादा होता है। ऐसा नहीं कि सिर्फ अंग्रेजी के शब्दों का ही मिश्रण एवम् अंतरण होता है। यहाँ की क्षेत्रीय बोली के साथ भी ऐसा देखा जा सकता है। हर क्षेत्र की बोली में उसके निकटवर्ती बोली के शब्दों और वाक्यों का अंतरण और मिश्रण होता है।

कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण अभिव्यक्ति के विविध रूप हैं। इन संकल्पनाओं की सार्थकता के लिए कुछ नियम निर्धारित किए गये हैं। 'कोड मिश्रण के लिए दिलिप सिंह ने नियमों का निर्धारण करते हुए लिखा है'[48]

1. एक भाषा के वाक्य में दूसरी भाषा का उपवाक्य मान्य नहीं है;

   *वह लड़का **हूम यू मेट यस्टरडे, फेल** हो गया।*

2. एक भाषा के दो वाक्यों के बीच दूसरी भाषा का संयोजक मान्य नहीं है;

मैं पढ़ना चाहता था ***बट*** नहीं पढ़ सकता।

3. एक भाषा के उपवाक्य के बाद दूसरी भाषा के उपवाक्य में समुच्चय बोधक दूसरी भाषा का ही होना चाहिए।

कूट-मिश्रण की प्रक्रिया में इन बिंदुओं पर ध्यान देना अनिवार्य है। यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है अत: कोई नियम लागू नहीं किया जा सकता परंतु अगर इन नियमों का पालन नहीं होता है तो वह कूट-मिश्रण का शुद्ध प्रयोग नहीं माना जाएगा। कोड-अंतरण में प्रयुक्त भाषाओं के व्याकरण का होना अनिवार्य है।

भाषा-विकल्पन

हिंदी के किसी कवि ने लिखा है कि *'कोस कोस पर पानी बदले बीस कोस पर बानी'* अर्थात् हर एक कोस पर पानी का स्वाद बदल जाता है और हर बीस कोस पर भाषा। इस पंक्ति में भाषा की समानता पानी से करके भाषा संबंधी एक सबसे बड़ी विशेषता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया है। यह विशेषता है भाषा की जीवंतता। जिस तरह पानी में एक प्रवाह है, धार है उसी तरह भाषा में भी सतत् प्रवाह है जिसे विकल्पन कहते हैं। "जिस भाषा में विकल्पन नहीं होता उसे मृत भाषा या अप्राकृतिक भाषा माना जाता है।"[49] भाषा के बदलने का अभिप्राय भाषा की संरचना के आंतरिक और बाह्य परिवर्तन से है। यह परिवर्तन शब्द के उच्चारण से लेकर अर्थ-बोधन की प्रक्रिया तक में देख सकते हैं। भाषा परिवर्तन की इस घटना को भाषावैज्ञानिक भाषा-विकल्पन (Language variation) कहते हैं।

भाषा एक समाज सापेक्षिक संकल्पना है इसलिए विकल्पन की सारी संभावनाएँ समाज एवं सामाजिक वर्गीकरण से जुड़ी होती हैं। भाषा-विकल्पन के अनेक आधार हैं। ये आधार भौगोलिक, सामाजिक एवम् आर्थिक कारणों से सीधे-सीधे जुड़ते हैं। गम्पर्ज ने भारत को इस तरह के अध्ययन के लिए सबसे उपयुक्त स्थान माना है। उन्होंने लिखा है कि -

'समाजभाषाविज्ञान में भाषा-विकल्पन के अध्ययन के लिए भारत सबसे अनुकूल जगह है। यहाँ की जाति-व्यवस्था भाषाविकल्पन का सबसे आसान आधार प्रस्तुत करता है। यह वर्गीकरण भाषा रूप के विभिन्न लेयर्स को समझने में मदद करता है।'[50]

इसके अलावा अनेक आधार हैं जिसके द्वारा भाषा-विकल्पन की गुंजाइश पैदा होती है। पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु लिखते हैं कि "बच्चे का भाषा व्यवहार अधेड़ उम्र के व्यक्ति के भाषा व्यवहार से अलग होता है और वृद्ध का भाषा व्यवहार इन सबसे पार्थक्य दिखाने वाला होता है। यही नहीं, योन (Sex) के आधार पर भी, पुरुष और नारी के भाषा व्यवहार में अंतर पाया जाता है। जिस प्रकार का आक्रामक भाषा-व्यवहार पुरुष कर पाता है उस प्रकार का आक्रामक भाषा-व्यवहार नारी के लिए संभव नहीं हो पाता। अपशब्दों के प्रयोग संदर्भ में पुरुष और नारी के भाषा-व्यवहार के अंतर को और भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इसी प्रकार समाज के निम्नतम वर्ग, मध्य वर्ग और उच्च वर्ग के भाषा व्यवहार में भी उनके शब्द चयन और उनकी वाक्य रचना दोनों में अंतर देखा जा सकता है। यहाँ तक कि भौगोलिक दृष्टि से एक ही भाषा-भाषी क्षेत्र में, पर गाँव और शहर में अलग-अलग रहने वाले लोगों की भाषा में, उनके शब्द चयन और उनकी वाक्य रचना में इस तरह का अंतर देखा जा सकता है।"[51] विद्वानों के अनुसार भाषा-विकल्पन समाजभाषाविज्ञान की महत्वपूर्ण संकल्पना है। 'समाजभाषाविज्ञान की शुरूआत बोली विज्ञान से होती है और बोली विज्ञान का मूल आधार भौगोलिक परिवर्तन के आधार पर भाषा में व्याप्त ध्वनि परिवर्तन है।'[52]

भाषा-विकल्पन संबंधी इन मान्यताओं के आधार पर भाषा-विकल्पन को कई श्रेणियों में बाँटा जा सकता है -

1. क्षेत्र आधारित भाषा-विकल्पन।
2. उम्र आधारित भाषा-विकल्पन।

3. लिंग आधारित भाषा-विकल्पन।

4. वर्ग आधारित भाषा-विकल्पन।

5. जाति आधारित भाषा-विकल्पन।

6. पेशा आधारित भाषा-विकल्पन।

7. शिक्षा आधारित भाषा-विकल्पन इत्यादि

इन विकल्पनों के आधार पर किसी भी क्षेत्र की भाषाओं में पाए जाने वाले विकल्पनों का अध्ययन किया जा सकता है।

प्रस्तुत सैद्धांतिकी समाजभाषाविज्ञान के मूलभूत आधार हैं। इन्हीं मानकों के आधार पर किसी भाषा की समाजभाषावैज्ञानिक व्याख्या की जाती है। किसी भी समाजभाषावैज्ञानिक शोध में भाषायी समाज, बहुभाषिकता, कूट मिश्रण, कूट अंतरण, भाषा विकल्पन, व्यक्ति बोली, समाज बोली आदि की खोज करना प्राथमिक शर्त है। इसके आधार पर ही आगे की खोज संभव होती है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है समाजभाषाविज्ञान की अवधारणा भाषा को समझने की नवीन दृष्टि प्रदान करता है। इसकी शुरूआत बोली-विज्ञान से होती है परंतु वही आगे परिवर्तित-परिवर्धित होकर समाजभाषाविज्ञान के नाम से भाषाविज्ञान की एक शाखा के रूप में स्थापित होता है। कई विद्वानों ने प्रारंभ में समाजभाषाविज्ञान और भाषा के समाजशास्त्र को एक ही माना है। अध्याय के प्रारंभ में की गई चर्चा यह स्पष्ट करती है कि भाषा का समाजशास्त्र भाषा की संस्थागत अस्मिता को रेखांकित करता है, मसलन कौन-सी भाषा राजकाज की भाषा हो, किसे शिक्षा का माध्यम बनाया जाए आदि। पर समाजभाषाविज्ञान भाषा और समाज के अंत:संबंधों को वृहतर स्तर पर प्रकाशित करने का प्रयास करता है। इसी प्रयास के परिणामस्वरूप इसके अनेक मानक निर्मित किए गए - भाषायी समाज, प्रयुक्ति, लिंग्वाफ्रेंका, व्यक्ति-बोली, समाज-बोली, क्षेत्रीय-बोली, पिजिन,

क्रियोल, कूट-मिश्रण, कूट-अंतर, बहुभाषिकता, भाषा-विकल्पन इत्यादि। इन्हीं मानकों के आधार पर किसी भाषा का समाजभाषावैज्ञानिक विवेचन-विश्लेषण किया जाता है।

इस अध्याय में इन सभी मानकों का विवेचन किया गया है। चूँकि कोई भी भाषायी बहस भाषा और बोली के बिना पूरा नहीं होती इसलिए इन दोनों पर भी विस्तार से चर्चा की गई है। इस प्रसंग में यह स्पष्ट किया गया है कि भाषा और बोली के बीच जो भी अंतर है वह राजनीतिक है, क्योंकि प्रकार्य के स्तर पर दोनों विचार विनमय की भूमिका निभाते हैं। प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव द्वारा भाषा और बोली के बीच रेखांकित किए गए अंतरों को उद्धृत किया गया है। समाजभाषाविज्ञान भाषा के सामाजिक संदर्भों की पड़ताल करता है। इस प्रक्रिया में समाज और भाषा के घात-प्रतिघात को समझने के लिए भाषायी समाज, प्रयुक्ति, लिंग्वाफ्रेंका, व्यक्ति-बोली, समाज-बोली, भाषा विकल्पन, बहुभाषिकता, कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण को समझने का प्रयास किया गया है। इन मानकों को स्पष्ट रूप से विश्लेषित करने के लिए विभिन्न विद्वानों के मतों का सहारा लिया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

---

[1] सहाय रघुवीर, "आंचलिक या राष्ट्रीय" सिंह नामवर (संपा०), *आलोचना,* जनवरी-मार्च 1987, राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, पृ.सं. 69

[2] हैंसन कैथरिन, "रेणु की आंचलिकता : भाषा और रूप" नामवर सिंह (संपा.), *आलोचना* वर्ष 37, अंक 87, अक्टूबर-दिसम्बर 1988, राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, पृ.सं. 40

[3] शर्मा रामविलास, "प्रेमचंद की परंपरा और आंचलिकता", मधुरेश (संपा.), *फणीश्वरनाथ रेणु और मार्क्सवादी*, आलोचना, यश पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ.सं. 7

[4] मधुरेश, "मैला आँचल का महत्व" मधुरेश (संपा०), *मैला आँचल का महत्व,* सुमित प्रकाशन,यु० एफ० 42, अलोपशंकारी अपार्टमेंट, 107/177, अलोपीबाग, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण : 2008, पृ सं० 174

[5] श्रीवास्तव रवीन्द्रनाथ, *हिंदी भाषा का समाजशास्त्र,* राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, जी-17, जगतपूरी, दिल्ली 110051, प्रथम संस्करण : 1994, दूसरी आवृति : 2001 पृ.सं. 3

[6] Society is any group of people who are drown together for a certain purpose. A language is what the member of a particular society speak. Wardhaugh Ronald, *An Introduction to Sociolinguistics,* Blackwell Publishers Inc 350 Main Street, Malden, Massachusetts 02148, USA, Third Edition : 1998, pg. 15

[7] श्रीवास्तव रवीन्द्रनाथ, सहाय रामानाथ (सं०), *हिंदी का सामाजिक संदर्भ,* केन्द्रीय हिंदी संस्थान, हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा 282005, चतुर्थ संस्करण : 2008, पृ. सं. 7

[8] There is no sharp dividing line between the two, But a large area of common concern although sociolinguistics research centers about a number of different key issue, any rigid mico-macro compartmentalization seems quit contrined and unnecessary in the present state of knowledge about the complex interrelationship between linguistic and social structures. contributions to a better understanding of a language as a necessary condition and product of social life will continue to come from both quarter.

Wardhaugh Ronald, *An Introduction to Sociolinguistics,* Blackwell Publishers Inc 350 Main Street, Malden, Massachusetts 02148, USA, Third Edition : 1998, pg. 13

[9] श्रीवास्तव रवीन्द्रनाथ, सहाय रामानाथ (सं०), *हिंदी का सामाजिक संदर्भ,* केन्द्रीय हिंदी संस्थान, हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा 282005, चतुर्थ संस्करण : 2008, पृ.सं. 21

[10] The word sociolinguistics was apparently coined already in 1939 in the title of an article by Thomas C. Hodson, "Sociolinguistics in India" in man in India; it was first use in linguistics by Eugen Nida in the second edition of his morphology (1949;152) but one often sees the term attributed to Haver currie (1952), who himself claimed to have invented.

Bratt Christina and Tucker G. Richerd (ed.), *Sociolinguistics The Essential Readings,* Blackwell Publishing Ltd., 350 Main Street, Malden MA 02148-5018, USA, First Publication : 2003, pg. 1

[11] Chambers J.K. and Trudgill Pete, *Dialectology,* Cambridge University Press, The Edinburgh Building, Cambridge CB2 2RU, UK, Second Edition : 2004, pg. 15

[12] Labov William, *Sociolinguistic Patterns,* University of Pennsylvania Press, Philadelphia, First Edition : 1972, pg. 4

[13] तिवारी भोलानाथ, प्रियदर्शिनी मुकुल, *हिंदी भाषा की सामाजिक भूमिका,* उच्च शिक्षा एवं शोध संसथान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास, संस्करण :1982, पृ.सं. 17

[14] A speech community is a group of people who interact by means of speech.

Bloomfield Leonard, *Language,* Motilal Banarsidas, Bungalow Road, Delhi 110007, First edition :1935, Reprinted : 1985, pg. 42

[15] A speech community is a group of people who do not necessarily share the some language, but share a set of norms and rules for the use of language. The boundaries between speech community are essential social rather than linguistic….. A speech community is not necessarily co-extensive with a language community.

Petrick Peter L., “The Speech Community : Some Definition”, NWAVE - 28 *http://repository.essex.ac.uk/166/1/SpeechCommunity.pdf,*

[16] श्रीवास्तव रवीन्द्रनाथ, *हिंदी भाषा का समाजशास्त्र,* राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, जी-17, जगतपूरी, दिल्ली 110051, प्रथम संस्करण : 1994, दूसरी आवृति : 2001, पृ.सं. 26

[17] To the linguist there is no real difference between a 'dialect' and a 'language' which can be shown to be related, however remotely, to another language. By preference the term is restricted to a form of speech which does not differ sufficiently from another form of speech to be unintelligible to the speakers of the latter. (selected writing of Edward sapir; pg. 83)

It's impossible to draw exact lines of demarcation between either 'dialects' or languages, though at their frontiers they merge imperceptibly one into another (Foundation of language by L.H. Gray; pg. 26)

There is no intrinsic difference between language and dialects, the former being a dialects which, for some special reason, such as being speech form of the locality which is the set of the government, has acquired pre-eminence over the other dialects of the country. Actually there is no clear-cut reply to the question. Even a linguistic shrinks from answering it and rightly. (The story of language by Mario pei; pg. 26)

शर्मा देवेन्द्रनाथ, शर्मा दीप्ति, *भाषाविज्ञान की भूमिका,* राधाकृष्ण प्रकाशन प्रइवेट लिमिटेड, जी-17, जगतपुरी, दिल्ली 110051, प्रथम संस्करण : 1966, दूसरी आवृति : 2004, पृ.सं. 56

[18] वही. पृ.सं. 57

[19] श्रीवास्तव रवीन्द्रनाथ, *हिंदी भाषा का समाज शास्त्र* पृ.सं. 37

[20] Language can be used to refer either to a single linguistic norm or to a group or related norms and dialects to refer to one of the norm.

Wardhaugh Ronald, *An Introduction to sociolinguistics*, pg. 24

[21] तिवारी भोलानाथ, *हिंदी भाषा की सामाजिक भूमिका,* पृ.सं. 22

[22] Standard language are interesting in as much as they have a rather special relation to society ……standard languages are the result of a direct and deliberate intervention by society.

Hudson R. A., *Sociolinguistics,* Cambridge University Press, The Edinburgh Building, Cambridge CB2 2RU, UK, Second Edition : 1996, Reprinted : 2001, pg. 32

[23] श्रीवास्तव रवीन्द्रनाथ, रमानाथ सहाय (सं.), *हिंदी भाषा का समाज शास्त्र*, पृ.सं. 38

[24] Register is a variety of language used for a particular social setting…….This terminology was first used by the linguistics Thomas Berterm Reid in 1956.

http/en.wikipedia.org/wiki/register/sociolinguistic (28.08.11) 10.30 A.M.

[25] The term REGISTER is widely used in sociolinguistics to refer to varieties according to use, in contrast with dialects defined as variety according to user.

Hudson R. A., *Sociolinguistics*, pg. 45

[26] Registers are set of language items associated with discrete occupational or social groups. Surgeons, Airline pilot, Bank Managers, Sales clerks…..different registers.

Wardhaugh Ronald, *An Introduction to sociolinguistics,* pg. 48

[27] तिवारी भोलानाथ, *हिंदी भाषा की सामाजिक भूमिका,* पृ.सं. 26

[28] वही. पृ.सं. 26

[29] श्रीवास्तव रवीन्द्रनाथ, रमानाथ सहाय (सं.), *हिंदी का सामाजिक संदर्भ,* पृ.सं. 18

[30] Lingua franca is a natural contact language or trade language. This ia used when people of different mother tongues want to communicate with each other….

Wikipedia

[31] Lingua franca as a language which is used habitually by people whose mother tongues are different in order to facilitate communication between them.

Wardhaugh Ronald, *An Introduction to sociolinguistics*, pg. 55

[32] The origins of the word pidgin are still debated. It is possible that it derives from pidian (South American Indian), from a chines pronunciation of English business or Portuguese acupacao (business) from Hebrew pidgon (barter), from Portuguese pequeno (little and suggesting baby talk)

or from a combination of any of these, reinforced by English pigeon. The term is applied to a lingua franca which develops as a simple means of communication between people speaking different languages.
Mesthrie Rajend (ed.), *Concise Encyclopedia of Sociolinguistics,* Elsevier Science Ltd., The Boulevard, Langford Lane, Kidlington, Oxford OX5 IGB, UK, 2001, pg. 525

[33] Muhlhausler Peter, *Pidgin & Creole Linguistics,* Basil Blackwell, 432 Park Avenue South, Suite 1503, New York, NY 10016, USA, Edition :1986, pg. 1

[34] Romaine Suzanne, *Pidgin & Creole Languages,* Longman Group UK Limited, Longman House, Burnt Mill, Harlow, EssexCM20 2JE, England, Edition : 1988, pg. 4 (Description)

[35] A variety whose grammar and vocabulary are very much reduced….. The resultant language must be native to no one (Bloomfield 1933 : 474)

A language which has arisen as the result of contact between people of different languages, usually formed from mixing of languages. (UNESCO : 1963; 46)

Two or more people use a language in a variety whose grammar and vocabulary are very much reduced in extend and which is native to neither side. Such a language is a 'pidgin' (Hall 1966 : xii)

It (i.e. pidgin English) is a corrupted form of English mixed with many morsels from other language and it is adapted to the mentality of the natives; therefore words tend to be simply concatenated and conjunction and declension are avoided (Baessler 1964 : 23-4, Translated from German)
Muhlhausler Peter, *Pidgin & Creole Linguistics,* pg. 3

[36] Pidgin are examples of partially targeted or non-targeted second language learning, developing from simpler to more complex systems as communicative requirements become more demanding. Pidgin languages

by definition have no native speakers, they are social rather than individual solution, and hence are characterized by norms of acceptability.
Muhlhausler Peter, *Pidgin & Creole Linguistics,* pg. 5

[37] PIDGIN a simplified form of speech developed as a medium of trade, or through other extended but limited contact, between groups of speakers who have no other language in common; e.g. the simplified form of English, French or Dutch which are assumed to be the origin of creole in the West Indies. Distinguished in principle at least from less established forms of similar origin, sometimes described as 'Jargons' or 'Pre-pidgins'
Matthews P.H., *Concise Dictionary of Linguistics,* Oxford University Press, Great Clarendon Street, Oxford OX26DP, Second Edition : 2007, pg. 303

[38]श्रीवास्तव रवीन्द्रनाथ, रमानाथ सहाय (सं.), *हिंदी का सामाजिक संदर्भ*, पृ.सं. 110

[39] वही. पृ.सं. 111

[40] A reduced language that result from extended contact between groups of people with no language in common. It involves when they need some means of verbal communication, perhaps for trade, but no groups learns the native language of any other groups for social reason that may include lack of trust or close contact.
Wardhaugh Ronald, *An Introduction to sociolinguistics*, pg. 57

[41] The term creole was applied to Europeans who were born in the new world, than to Africans born here, to both. To people of mixed race. to the form of language spoken by people in the Americans and eventually to any pidgin which has become a mother tongue for a community.
Mesthrie Rajend (ed.), *Concise Encyclopedia of Sociolinguistics,* pg. 525

[42] The term creole is that of mixture of culture and race and it is commonly assumed that linguistic mixture goes hand in hand with these.
Muhlhausler Peter, *Pidgin & Creole Linguistics*, pg. 6

[43] 1.creole are regarded as mixed language typically associated with cultural and often racial mixture.
2.Creole are defined as pidgin language (second language) that have become the first language of a new generation of speakers.

3.Creole are reflections of a natural bio program for human language which in activated in case of imperfect language transmission.
Muhlhausler Peter, *Pidgin & Creole Linguistics*, pg. 6

[44]सिंह दिलीप, *भाषा का संसार,* वाणी प्रकाशन, 4695, 21 ए, दरियागंज, नई दिल्ली 110002, द्वितीय संस्करण : 2011, पृ.सं. 155

[45] तिवारी भोलानाथ मुकुल प्रियदर्शिनी (सं.), हिंदी भाषा की सामाजिक भूमिका, पृ.सं. 38

[46]श्रीवास्तव रवीन्द्रनाथ, सहाय रामानाथ (सं०), *हिंदी का सामाजिक संदर्भ,* पृ.सं. 85

[47] The term code is loosely used of any language or distinct variety of a language, whether or not it is actually thought of as a code (like morse code or a legal code) in any illuminating sense.
Matthews P.H., *Concise Dictionary of Linguistics,* pg. 62

[48] सिंह दिलीप, *भाषा का संसार,* पृ.सं. 150

[49] Mukharjee Aditi (ed.), *Language Variation And Language Change,* Center of Advanced Study in Linguistics, Osmania University, Hyderabad 500007, First Edition : 1989, Forward pg.

[50] The Indian subcontinent is an exceptionally good for the study of both types of socio linguistic variation ……First of all, the India caste system making for easy recognition of the social levels with which linguistic variation is co-related.
Bright William, *Variation and Change in Language,* Stanford University Press, Standford, California, Published : 1976, pg 33

[51] पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु', *अद्यतन भाषाविज्ञान : प्रथम प्रमाणिक विमर्श,* लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहबाद-1, संस्करण : 2012, पृ.सं. 136

[52] Sociolinguistic has deep roots in regional dialectology or linguistic geography. The study of the same language shows variation from region to region.
Labov William "Language and variation", Bratt Christain (ed.), *Sociolinguistics The essential reader*, pg. 231

द्वितीय अध्याय

साहित्य और समाजभाषाविज्ञान का अंत:संबंध

❖ साहित्य और समाजभाषाविज्ञान का अंत:संबंध

- समाज, भाषा और साहित्य
- रचनाकार
- सामाजिक संजाल
- वाक् व्यापार
- वार्तालाप सहयोग का सिद्धांत

साहित्य और समाजभाषाविज्ञान का अंत:संबंध

प्रथम अध्याय में समाजभाषाविज्ञान की संकल्पनाओं पर विस्तार से विचार किया गया है। इस अध्याय में उन बिंदुओं और संदर्भों पर प्रकाश डालने की कोशिश की जायेगी जो समाजभाषाविज्ञान और साहित्य के अंत:संबंधों को स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यहाँ यह दुहराना समीचीन होगा कि समाजभाषाविज्ञान भाषा की व्याख्या सामाजिक संदर्भों के आधार पर करता है और साहित्य में समाज की समस्त मनोदशाएँ, एवं संवेदनाएँ भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त होती हैं। इस प्रकार भाषा और समाज, साहित्य और समाजभाषाविज्ञान दोनों के केन्द्र में है। भाषा और समाज ही दोनों का साधन भी है और साध्य भी।

समाज, भाषा और साहित्य

समाज, भाषा और साहित्य मानवीय सत्ता, जीवन और जगत को संचालित करने तथा बचाए रखने वाले महत्वपूर्ण अवयव हैं। ये तीनों सहजीवी और सहपोषी हैं। तीनों एक दूसरे से निरंतर प्रभावित होते हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। अनेक विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से इन्हें परिभाषित किया है। परन्तु, उन परिभाषाओं को उद्धृत करना इस शोध का उद्देश्य नहीं है, बल्कि उद्देश्य यह है कि तीनों आपस में एक दूसरे से कैसे जुड़े हुए हैं एवं एक दूसरे की अर्थवत्ता को किस प्रकार प्रकाशित-प्रदर्शित करते हैं, उसे स्पष्ट करना।

भाषा को विद्वानों ने सम्प्रेषण के माध्यम के रूप में स्वीकार किया है परंतु भाषा महज एक सम्प्रेषण का साधन मात्र नहीं अपितु मानवीय अस्मिता से जुड़ी हुई सामाजिक संकल्पना है। 'विलियम डाउंज (William Downes) ने भाषा को दैनिक जीवन का जटिल व्यापार माना है।'[1]

हम प्राय: देखते हैं कि दैनिक व्यवहार में लोग 'भाषा' शब्द का प्रयोग अनेकानेक प्रकार से करते हैं। उदाहरणार्थ आपसी बातचीत में अगर किसी ने असम्मानजनक शब्दों प्रयोग किया तो श्रोता तत्काल उसे आगाह करते हुए कहता है- *इस तरह की भाषा का प्रयोग न करें,* वहीं किसी ने आदरपूर्वक बात की तो लोग कहते हैं- *वाह! कैसी भाषा है। अद्भुत भाषा है!* अगर बुजुर्गों से शिष्ट भाषा में बात करते हैं तो कहते हैं - *माँ बाप ने क्या स्कार दिये हैं।* वहीं अगर ऊटपटांग बातें करें तो कहते हैं- *बड़ा ही कुसंस्कारी बच्चा है।* यदि हम उम्र के साथ भी अशिष्ट भाषा का प्रयोग करें तो समाज संदर्भित परिप्रेक्ष्य में वे भी हमें आपत्तिजनक दृष्टि से देखते हैं। कहने का अभिप्राय यह कि हम जो भी भावना, व्यापार, व्यवहार भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं, वे सभी महज भाषा के माध्यम से सम्प्रेषित ही नहीं होते वरन् वक्ता के व्यक्तिगत स्वभाव, ज्ञान, परिवेश, प्रतिष्ठा, रहन-सहन, सामाजिक स्थिति आदि को भी दर्शाते हैं। भाषा के माध्यम से ही मनुष्य मूर्त-अमूर्त वस्तु, भावना, विचार आदि को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भाषा एक ऐसी बहुआयामी संकल्पना है जो वक्ता की जातीय अस्मिता, ज्ञान, सम्मान से जुड़ी होती है। भाषा संबंधी इस प्रकार की संकल्पना को अज्ञेय ने अपने निबंध *'भाषा और अस्मिता'* में स्पष्ट किया है कि "किसी भी गंभीर अथवा संवेदनशील वक्ता के लिए भाषा उसकी अस्मिता की अभिव्यक्ति हो जाती है।"[2] भाषा की आवश्यकता सामाजिकता से जुड़ी हुई है इसलिए समाज ही इसकी प्रयोगशाला है। यहीं यह परिवर्तित, परिवर्धित होती है। विद्यानिवास मिश्र के शब्दों में कहें तो "आदमी भाषा केवल दुहराता ही नहीं, भाषा का अनेक प्रयोग से विनियोग करके, भाषा को अनुवर्तित करके नया आकार भी देता है।"[3]

व्यक्ति का सुसंगठित समूह समाज कहलाता है। सुगठित समूह से तात्पर्य है नियमों की एकसूत्रता में बँधा मानव समुदाय। समाज का प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रूप में एक दूसरे से जुड़े होते हैं। यह जुड़ाव या निर्भरता ही मनुष्य को सामाजिक प्राणी

बनाता है। आज समाज और सामाजिकता ने मानवीय सभ्यता की लम्बी विकास यात्रा कबीलाई-संस्कृति से साइबर-संस्कृति तक तय कर ली है। इसका गंभीर अध्ययन नृविज्ञान (Anthropology) और समाज विज्ञान (Sociology) में मिलता है। विकास के इस चरण ने जीवन और जगत् को कई रूपों में प्रभावित किया है। आज के जीवन-मूल्य वही नहीं हैं जो आदिकाल या मध्यकाल में हुआ करते थे। आज के जीवन-मूल्य अपनी ऐतिहासिकता में आधुनिक एवं उत्तर आधुनिक हो गये हैं। इसी के अनुरूप सामाजिक मूल्य भी बदले हैं।

भाषा और समाज के उपर्युक्त विवरण पर गौर किया जाए तो पाते हैं कि व्यक्ति (मनुष्य) इन दोनों के केन्द्र में है। भाषा मनुष्य के दैनिक व्यवहार को प्रकाशित करने का माध्यम है और समाज इस माध्यम के द्वारा जुड़ा मानव समूह है। एक और अवधारणा जो भाषा और समाज के अंत:संबंधों को व्याख्यायित करने के लिए अत्यंत जरूरी है वह है 'संस्कृति'। ऐसा माना या कहा जा सकता है कि मानव जीवन के समस्त कार्य-व्यापार का सम्मिलित रूप संस्कृति है। हर समाज की अपनी रूढ़ियाँ एवं परंपराएँ होती हैं। इन्हीं के मिलने से कोई संस्कृति बनती है। यहाँ यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि संस्कृति की अभिव्यक्ति भी भाषा के माध्यम से ही होती है। भाषा और संस्कृति को अभिन्न मानते हुए Dell Hymes ने लिखा है कि 'भाषा और संस्कृति में संबंध ही नहीं है बल्कि ये दोनों एक-दूसरे के परस्पर सहसंबंधी हैं।'[4]

समाज और भाषा के अंत:संबंधों को विश्लेषित करते हुए 'डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव'[5] ने भाषा का समाजशास्त्र और समाजभाषाविज्ञान की चर्चा की है। भाषा और समाज की पूर्व मान्यताओं और परंपराओं को ध्यान में रखकर इनके बीच के अंत:संबंधों को व्याख्यायित करने की बात 'राजेन्द्र मेस्त्री'[6] ने कही है। राजाराम मेहरोत्रा ने भाषा और समाज के अंत:संबंधों पर बात करते हुए लिखा है कि 'भाषा और समाज का स्वतंत्र अस्तित्व होते हुए भी ये दोनों एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। भाषा के

बिना किसी समाज की कल्पना नहीं की जा सकती और न ही समाज के बिना भाषा की।'[7] इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि भाषा और समाज दोनों ही जीवन एवं जगत् के लिए अनिवार्य संकल्पनाएँ हैं। चूँकि दोनों का संबंध अन्योन्याश्रित है। अत: एक की व्याख्या के लिए दूसरा साधन का कार्य करता है। 'सस्यूर ने भाषा को भाषाई समुदाय से जोड़ते हुए इसे सामाजिक सच्चाई (social fact) के रूप में स्वीकार किया है।'[8]

इन विद्वानों के मतों से स्पष्ट हो जाता है कि भाषा और समाज एक दूसरे के पूरक हैं। समाज के बिना भाषा की संकल्पना असंभव है क्योंकि भाषा सामाजिक जीवन को ही विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त करती है। इसी प्रकार भाषा के बिना समाज भी अपूर्ण और अव्याख्येय है। समाज अपनी सारी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से करता है। अत: भाषा और समाज दोनों ही एक दूसरे के परिवर्तन और परिवर्धन में साधन और माध्यम का काम करते हैं। एक के बिना दूसरे की कल्पना असंभव है। अगर Whitney के शब्दों में कहें तो 'भाषा कोई व्यक्तिगत स्वामित्व वाली नहीं बल्कि सामाजिक संकल्पना है। ये दोनों दो अलग-अलग वस्तु नहीं बल्कि एक हैं। भाषा किसी एक के लिए नहीं बल्कि पूरे समाज के लिए होती है और इसके विकास में भी किसी एक व्यक्ति का नहीं बल्कि पूरे समूह की भूमिका होती है।'[9]

इस प्रकार भाषा की समाजधर्मिता और समाज की भाषानुमुखता एक नैसर्गिक एवं अनिवार्य प्रक्रिया है। व्यक्ति से समाज बनता है और समाज में सामाजिकता विकसित होती है। समाज में सामाजिक अभिव्यक्ति उस समाज विशेष की भाषा में होती है। कहा जा चुका है कि सामाजिकता का अभिप्राय भाषा की एकसूत्रता में बंधे व्यक्ति-समूह से है। यह एकसूत्रता उस भाषायी समुदाय के आपसी समझदारी, साझेदारी और तालमेल पर निर्भर करती है। हम जानते हैं कि दुनियाँ का प्रत्येक समाज अनेक स्तरों में वर्गीकृत होता है। पश्चिम का सामाजिक वर्गीकरण, वर्ग, वर्ण, धर्म, क्षेत्र, नस्ल, लिंग आदि पर आधारित

है। भारत में यह वर्गीकरण और भी सूक्ष्म है, मसलन वर्ण, धर्म, क्षेत्र, सम्प्रदाय, लिंग, जाति, उपजाति इत्यादि। इन सभी में जातिगत वर्गीकरण भारत में सबसे ज्यादा प्रभावशाली है। वर्तमान लोकतंत्र भी परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से इसी पर निर्भर है। प्राचीन समय में जाति कर्म पर आधारित था पर आज जन्म आधारित है। आधुनिकता के प्रभाव से इस वर्गीकरण में थोड़ा बदलाव भी आया है, बावजूद इसके इसकी सत्ता अब भी कायम है। इस वर्गीकरण का भाषा से गहरा संबंध है। हर समाज की अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत होती है। हर समाज के अपने कुछ ऐसे शब्द भी होते हैं जिसकी अर्थवत्ता उसी समाज से संदर्भित होती है। उदाहरणस्वरूप 'नहछू' शब्द को देखा जा सकता है। इस शब्द का संबंध हिन्दू धर्म में वर्णित सोलह संस्कार से है, लेकिन इसकी अर्थवत्ता उत्तर भारत के हिंदू समाज की एक खास जाति 'नाई' से जुड़ी हुई है। इस तरह के अनेक शब्द हर समाज में प्रचलित होते हैं जिनका सामाजिक वर्गीकरण से गहरा संबंध होता है। वर्गीकृत समाज में भी प्रत्येक जाति और वर्ग आपस में एक दूसरे से अनेक आवश्यकताओं के लिए जुड़े होते हैं। इस जुड़ाव को भी भाषा के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। वर्तमान में सामाजिक वर्गीकरण का एक प्रमुख आधार 'पेशा' है। समाज में किसान, अधिकारी, धोबी, दिहाड़ी मजदूर, दुकानदार, पुलिस, छात्र, शिक्षक, चालक आदि सभी होते हैं; जो एक सामाजिक संजाल के द्वारा एक दूसरे से जुड़े होते हैं। इनके आपसी जुड़ाव के अनेक कारण हैं, परंतु जुड़ाव का माध्यम सिर्फ भाषा है। यहाँ भाषा एक माध्यम के रूप में अवश्य होती है परंतु इसके भी अनेक स्तर और रूप होते हैं। इसके स्तर और रूप को भाषा विकल्पन कहा जाता है जिसकी चर्चा प्रथम अध्याय में की गयी है।

'साहित्य' इस अध्ययन का महत्वपूर्ण घटक है। इसे मानवीय संवेदनाओं एवं संबंधों का जीवंत एवं सर्जनात्मक दस्तावेज कहा जा सकता है। इसमें मानवीय भाव, व्यापार और विकार, मसलन प्रेम, घृणा, करुणा, वात्सल्य, क्रोध, अहंकार, आदि को चित्रित किया जाता

है। यहाँ भी मानवीय संवेदनाओं और संबंधों की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से की जाती है।

साहित्य में मूलत: किसी समाज को मूर्तमान किया जाता है। इसके माध्यम से हम प्राचीन एवं वर्तमान संस्कृति, सामाजिक परंपरा एवं भाषाई अस्मिता से परिचित होते हैं। अभिप्राय यह है कि साहित्य संस्कृति, समाज और भाषा को सुरक्षित रखने का एक माध्यम भी है। इस प्रकार कह सकते हैं कि किसी भी समाज के निर्माण में साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है कि - "अगर समाज में साहित्य की कोई भूमिका नहीं होती तो इसकी जरूरत भी नहीं होती।"[10] अर्थात् साहित्य, समाज और सामाजिक संरचना को बनाए एवं बचाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यहाँ सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि साहित्य में समाज की अभिव्यक्ति एवं पुनर्रचना भाषा के माध्यम से होती है भाषा के माध्यम से ही संपूर्ण सामाजिक संभावना को अभिव्यक्ति मिलती है। भाषा की इस प्रयोजनशीलता को विश्लेषित करते हुए अज्ञेय ने लिखा है - "नि:संदेह भाषा मूल्यों के सर्जनात्मक शोध का और गंभीरतम अनुभूतियों और संवेदनाओं के प्रेषण का माध्यम भी है; लेकिन साथ ही असंख्य साधारण, रोजमर्रा, नगण्य प्रयोजनों और कार्य व्यापारों का माध्यम भी है। इतना ही नहीं लेखक इन व्यापारों एवं प्रयोजनों की उपेक्षा भी नहीं कर सकता। क्योंकि ये ही उसके अपने रचना संसार का कच्चा माल है।"[11] यहाँ अज्ञेय ने भाषा की सामाजिकता तथा उसके साथ साहित्य तथा साहित्यकार की इस पर निर्भरता को उद्घाटित करने का प्रयास किया है। इन विवरणों एवं प्रमाणों के आधार पर कह सकते हैं कि भाषा, समाज और साहित्य एक दूसरे में अंतर्युक्त और सहसंयोजित हैं।

भाषा, समाज और साहित्य से संबंधित उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भाषा के बिना न तो साहित्य संभव है और न ही समाज, बल्कि यह कहें कि इसके

बिना जीवन और जगत् का कोई चिंतन-व्यापार और विनिमय असंभव है, तो भी अतिरेक नहीं होगा। भाषा में ही साहित्य संभव होता है। और भाषा से ही समाज बनता है। समाज और सामाजिकता के लिए दो या अधिक लोगों के बीच संवाद का होना जरूरी है जो केवल और केवल भाषा के माध्यम से ही संभव है। साहित्य में अभिव्यक्त समाज भाषा के माध्यम से ही अपने अस्तित्व और अस्मिता की पहचान कराता है। अत: साहित्य और समाज तथा समाजिकता संभव हो इसके लिए भाषा का होना अनिवार्य है। यही वह स्रोत है जिसके द्वारा लगातार साहित्य से समाज में और समाज से साहित्य में आवाजाही का मार्ग बनता रहता है। इस मार्ग को बनाने वाले अभियंता या शिल्पी को रचनाकार कहा जाता है। क्रिस्टोफर कॉर्डवेल ने भाषा, समाज और साहित्य के अंत:संबंधों पर बात करते हुए लिखा है कि 'भाषा एक सामाजिक उत्पाद है। यह एक ऐसा उपकरण है जिसके माध्यम से मनुष्य एक दूसरे से संवाद स्थापित करता है। अत: साहित्य का अध्ययन समाज के अध्ययन से भिन्न नहीं है।'[12] अर्थात् भाषा एक सामाजिक उत्पाद है जिसके माध्यम से मनुष्य आपस में संपर्क साधता है, सामाजिकता का निर्माण करता है। इसी सामाजिकता की अभिव्यक्ति साहित्य (poetry) में होती है अत: साहित्य का अध्ययन समाज के अध्ययन से इतर नहीं है। और यह अध्ययन भाषा के माध्यम से ही संभव है |

रचनाकार

भारतीय वाङमय परंपरा में साहित्यकार को मानवों में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। वेदों में रचनाकार को परिभू: एवं स्वयंभू: कहा गया है। वर्तमान समय में भी इसे सम्माननीय स्थान प्राप्त है। रचनाकार साहित्य में समाज को, जीवन को रचता है, पुनर्सृजित करता है। यह पुनर्सृजन उसके जीवन अनुभव एवं कल्पना का सम्मिलित रूप होता है। मैनेजर पाण्डेय के शब्दों में -"लेखक सामाजिक यथार्थ को रचना में प्रतिबिंबित ही नहीं करता वह उसकी पुनर्रचना भी करता है। रचना में उसकी कल्पनाएँ और आकांक्षाएँ भी व्यक्त होती

है।"[13] एक बात और जो समाजभाषाविज्ञान के लिए जरूरी है वह यह कि रचनाकार उन्हीं सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति सहज और प्रमाणिक ढंग से कर पाता है; जिसकी उसे अनुभूति हो। यह अनुभूति भोगी हुई या देखी हुई हो सकती है। साथ ही घटना विशेष या समाज विशेष की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त भाषा पर रचनाकार का अधिकार हो। अगर लेखक में इस प्रकार के गुणों का अभाव हो तो संप्रेषण तो बाधित होगा ही होगा, रसाभास की स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है। इस संबंध में अज्ञेय कहते हैं कि "विशेष बात यही है कि साहित्यकार जो कर रहा है उसके प्रति उसका स्वयं का समर्पण, उसकी स्वयं की निष्ठा किस स्तर की है, वह जिस समाज से बातचीत करना चाहता है उसकी भाषा प्रकृति और उसके मनोविज्ञान से उसकी कितनी गहन पहचान है।"[14]

मैनेजर पाण्डेय और अज्ञेय के कथनों का अभिप्राय यह है कि रचनाकार भाषा के माध्यम से समाज रचता है, पर इसकी प्रामाणिकता लेखक के जीवन अनुभव से गहरे स्तर से जुड़ी होती है। साहित्यकार अपनी संपूर्ण संभावनाओं की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से करता है अत: रचना में व्यक्त सम्पूर्ण समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, कल्पना, यथार्थ, जीवन दर्शन इत्यादि का इसमें प्रयुक्त भाषा से गहन तादात्म्य होता है।

साहित्य के समाजभाषावैज्ञानिक अध्ययन में साहित्यकार की भाषिक क्षमता एवं भाषिक विशेषता का अध्ययन अत्यंत जरूरी होता है। कोई रचनाकार किसी पात्र या प्रसंग के लिए किस प्रकार की भाषा का प्रयोग कर रहा है इसका मूल्यांकन इस प्रकार के अध्ययन का केन्द्रीय प्रश्न है। साहित्य और विशेषकर उपन्यास में रचनाकार किसी खास तरह की पृष्ठभूमि में कुछ पात्रों के माध्यम से किसी घटना, संवेदना एवं विचारों का चित्रण करता है। इसे रचने या पुनर्सृजित करने की प्रक्रिया में उसके पास भाषा ही एकमात्र साधन होती है। रचनाकार उस समाज और पात्र को कितनी सफलता से रच सका है इसकी सार्थकता उसके द्वारा प्रयुक्त भाषा पर निर्भर करती है। भाषा प्रयोग का सीधा संबंध

रचनाकार के जीवन अनुभव एवं उसके अपने पात्र और चरित्र से तादात्म्य पर निर्भर करता है। यहाँ यह दुहराना जरूरी है कि साहित्यकार भी समाज से ही भाषा अर्जित करता है पर साथ ही साथ उसके सामने साहित्य की लम्बी परंपरा भी होती है। इन दोनों माध्यमों से वह सामाजिक बोध, अनुभव और ज्ञान प्राप्त करता है। यह एक सफल संवेदनशील सर्जक की भूमिका होती है कि वह जो भाषा, समाज एवं साहित्यिक परंपरा से लेता है उसे वह पुन: नए सिरे से सृजित, निर्मित भी करे। उसे सृजित करने में साहित्य की परंपरा रचनाकार का मार्गदर्शन करती है। अत: कहा जा सकता है कि जिस रचनाकार का भाषिक प्रयोग जितना सधा होगा, उसकी रचनाधर्मिता उतनी ही जीवंत एवं प्रभावशाली होगी। यही कारण है कि किसी साहित्य के समाजभाषावैज्ञानिक अध्ययन में रचनाकार की भाषा, सामाजिक परिवेश, रहन-सहन, पेशा, पारिवारिक संस्कार, सामाजिक संघर्ष आदि का अध्ययन जरूरी है, क्योंकि इनके रचनाओं की पृष्ठभूमि, चरित्र और भाषा का रचनाकार के निजी जीवन अनुभव से गहरा संबंध होता है।

अब तक के अध्ययन से यह स्पष्ट हो चुका है कि ज्ञान की प्रत्येक शाखा एक दूसरे से किसी न किसी रूप में जुड़ी होती है और परस्पर प्रेरित प्रभावित करती रहती है। समाजभाषाविज्ञान भी इस प्रकार की धारणाओं का अपवाद नहीं है। यह अपने आप में एक स्वतंत्र अनुशासन तो है परंतु इसके अस्तित्व में समाजविज्ञान, मनोविज्ञान एवं नृविज्ञान अंतर्निहित है। 'समाजभाषाविज्ञान' संज्ञा, नृविज्ञानी Richard C. Hadson द्वारा दी गई है। गौरतलब यह है कि इस शब्द का प्रथम प्रयोग भारतीय संदर्भ में किया गया था।

मनोविज्ञानियों का मानना है और यह अत्यंत प्रासंगिक भी है कि जीवन, जगत् का समस्त क्रिया-व्यापार भाषा के माध्यम से ही संभव होता है। भाषा का समष्टिगत रूप ही समाज है। साहित्य में देखा जाए तो यहाँ भी सारी संभावना, संवेदना और कलाबाजी का

प्रदर्शन भाषा के माध्यम से ही होता है। यहाँ तक कि 'मौन' की अभिव्यंजना भी भाषा के माध्यम से होती है। अत: समस्त चिंतन, जीवन और साहित्य में भाषा व्याप्त है।

ऊपर कहा गया है कि ज्ञान की सभी शाखाएँ, मसलन कला, विज्ञान, मानवशास्त्र, चिकित्साशास्त्र, समाजशास्त्र, भाषा विज्ञान आदि एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। इन सभी का किसी न किसी रूप में एक दूसरे से और जीवन से प्रत्यक्ष या परोक्ष संबंध है। साहित्य और समाजभाषाविज्ञान का भी एक दूसरे से घनिष्ठ संबंध है। यह संबंध कई स्तरों पर स्पष्ट और कई स्तरों पर अस्पष्ट प्रतीत होता है। अध्याय के प्रारंभ में कहा जा चुका है कि साहित्य और समाजभाषाविज्ञान, दोनों के केन्द्र में समाज एवं भाषा है। समाजभाषाविज्ञान भाषा को समाज सापेक्षिक प्रतीक व्यवस्था के रूप में देखता है और साहित्य में यह सामाजिक अस्मिता एवं रचनाधर्मिता को अभिव्यक्त करने वाला एकमात्र माध्यम है। इस प्रकार से देखा जाए तो दोनों के यहाँ अध्ययन का मूल स्रोत भाषा ही है। दोनों में सामग्री के रूप में भाषा का ही विश्लेषण किया जाता है तो यह कहना उपयुक्त होगा कि साहित्य का समाजभाषावैज्ञानिक अध्ययन मूल रूप में साहित्य की भाषा का समाजभाषावैज्ञानिक विश्लेषण है और इस विश्लेषण के लिए सामाजिक संजाल, वाक्-व्यापार, वार्तालाप सहयोग का सिद्धांत इत्यादि ऐसे मानक हैं जिसके द्वारा समाजभाषाविज्ञान और साहित्य दोनों को विश्लेषित किया जा सकता है या यों कहें कि ये मानक दोनों के अंत:संबंध को पूर्णत: उद्घाटित करते हैं।

सामाजिक संजाल (Social Network)

नाम से ही स्पष्ट है कि वैसा जाल जो सामाजिक हो अर्थात् समाज को जोड़ने वाला हो। ऐसा देखा गया है कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह किसान हो या शिक्षक, मजदूर हो या मालिक, जमींदार हो या डॉक्टर, छात्र हो या दूकानदार सभी एक दूसरे से जुड़े होते हैं। इसी जुड़ाव को 'सामाजिक संजाल' कहा जाता है। यह अवधारणा मूल रूप से

नृविज्ञान की है। राजेन्द मेस्त्री इसका परिचय देते हुए लिखते हैं कि 'सामाजिक संजाल की अवधारणा का सफलतम प्रयोग मानवविज्ञानी शोध में औपचारिक और अनौपचारिक सामाजिक संबंधों का उल्लेख करने में किया जाता है।'[15]

सामाजिक संजाल के माध्यम से समाज में रह रहे लोग आपस में औपचारिक और अनौपचारिक रूप से जुड़े होते हैं इस जुड़ाव की भी अनेक प्रक्रियाएँ और स्तर होते हैं। ऐसा देखा जाता है कि किसी समाज में प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से जुड़ा होता है। आपसी लेन-देन एवं विचार विनिमय करता है। परंतु ऐसा भी देखा गया है कि समाज में कुछ ऐसे भी लोग हैं जो एक दूसरे से समान रूप से नहीं जुड़े होते हैं। एक समाज में तो रहते हैं परंतु संपर्क शून्यता की स्थिति बनी रहती है। इस आधार पर नृविज्ञानी James और Lesley Milroy ने सामाजिक संजाल को विश्लेषित करने के लिए दो मानक निर्धारित किये हैं -

1. **घनत्व (Density)**
2. **वार्तालाप वैविध्य (Multiplexity)**

1. घनत्व (Density) - घनत्व किसी समाज में रह रहे लोगों के बीच के आपसी सम्पर्क को दर्शाता है। यह आपसी सम्पर्क सामाजिक संजाल के परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है। प्रत्येक सामाजिक संरचना में कोई न कोई केन्द्रीय व्यक्ति होता है जो समाज को सर्वसम्मति से नियंत्रित करता है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में ग्राम पंचायत को इस रूप में देखा जा सकता है। इस प्रकार की सामाजिक संरचना में ऐसा संभव है कि सामान्यत: समाज का प्रत्येक व्यक्ति केन्द्रीय व्यक्ति (ग्राम पंचायत के सदस्य) को जानता हो पर एक दूसरे को बहुत ज्यादा नहीं या बिल्कुल नहीं जानता हो। सामाजिक संजाल में इस तरह के सम्पर्क सूत्र को निम्न घनत्व वाला संजाल (low density network) कहा जाता है। दूसरी स्थिति यह भी हो सकती है कि एक सामाजिक संजाल के सभी लोग एक दूसरे को जानते हों और प्राय: एक दूसरे से मिलते हों और बातचीत भी करते रहते हों। इस प्रकार के सामाजिक संजाल

को high density network कहते हैं। इसे और भी स्पष्ट करने के लिए राजेन्द्र मेस्त्री के इस कथन को उद्धृत कर सकते हैं कि 'घनत्व किसी समाज के बीच लोगों के आपसी संपर्क को सूचित करता है। न्यूनतम घनत्व वाले सामाजिक संजाल में लोग प्राय: केन्द्रीय पात्र को ही जानते हैं किन्तु उच्च घनत्व वाले सामाजिक संजाल में लोग एक दूसरे को जानते हैं और लगातार संपर्क में रहते हैं।'[16]

2. वार्तालाप वैविध्य (Multiplexity) - प्राय: ऐसा देखा जाता है कि किसी एक समाज के लोग आपस में कई-कई स्तरों से जुड़े होते हैं। कोई दो व्यक्ति भाई भी हो सकते हैं, सहकर्मी भी हो सकते हैं, मित्र भी हो सकते हैं, रिश्तेदारी में भी आ सकते हैं। अर्थात् आपसी संबंध के अनेक स्तर हो सकते हैं। किसी सामाजिक संजाल में इस तरह के संपर्क को multiplex कहा जाता है। ऐसा संभव है कि समाज के लोग आपस में कई स्तर से जुड़े हों और कुछ ऐसे भी हों जो केवल एक ही स्तर या संबंध के लिए आपस में जुड़े हों। नृविज्ञानी में एक स्तर से जुड़े लोगों के आपसी संबंध को Uniplex कहते हैं। 'राजेन्द्र मेस्त्री ने जेम्स एवं लेस्लेय मिलरॉय'[17] के हवाले से Multiplexity के बारे में अपनी पुस्तक Introducing Sociolinguistics में विस्तार से चर्चा की है। नृविज्ञान के इस सिद्धांत को सीधे-सीधे समाजभाषाविज्ञान ने स्वीकार किया है। साहित्य में भी इस तरह के सामाजिक संजाल को देखा जा सकता है क्योंकि अंतत: साहित्य में हम किसी न किसी समाज एवं सामाजिक संजाल की ही बात करते हैं।

वाक् व्यापार (Speech Act)

भाषा व्यवहार में कथन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसके बिना किसी भी संवाद की अर्थवत्ता निश्चित रूप से संभव नहीं है। सर्वज्ञात है कि भाषा व्यवहार प्राय: दो या दो से अधिक लोगों के बीच ही संभव है। इस संवाद के दौरान जो बातचीत होती है उसका कोई न कोई विषय होता है। विषयानुकूल बातचीत के आयाम (Dimension) बदलते

रहते हैं। कभी बातचीत सामान्य तरीके से तो कभी प्रश्नवाचक शैली में और कभी आग्रह, आदेश, विस्मय इत्यादि के रूप में संपादित होती है। भाषा के इस विविध स्तर को *वाक् व्यापार* (Speech Act) कहा जाता है। 'इस सिद्धांत के जनक जे.एल. ऑस्टिन हैं।'[18]

वाक् व्यवहार मूलत: एक सम्प्रेषण प्रक्रिया है। इसमें कथन में छिपे वक्ता के निहितार्थ और कारण तथा कथन के अनुसार श्रोता पर पड़े प्रभाव का विश्लेषण किया जाता है। 'ऑस्टिन के अनुसार यह सम्प्रेषण प्रक्रिया पाँच प्रकार की होती है'[19] निर्देशात्मक, प्रतिबद्ध, भावात्मक, कथनात्मक, प्रतिनिधानात्मक। इसको वाक्य में निम्नलिखित रूपों में देख सकते हैं -

1. आप वहाँ जाइए । (निदेशात्मक)
2. मैं आपको पुस्तक लाकर दूँगा। (प्रतिबद्ध)
3. मैं आपका स्वागत करता हूँ। (भावात्मक)
4. मैंने आज से तुम्हारा नाम हनुमान रख दिया। (कथनात्मक)
5. मैं समझता हूँ कि आज वर्षा होगी। (प्रतिनिधानात्मक)

वाक् व्यापार को परिभाषित करते हुए R.L. Trask ने लिखा है कि वाक्-व्यापार ऐसी शब्दावली है जो एक साथ कई अर्थों में प्रयोग की जाती है। पर आज मूल रूप से यह वाच्य वृत्ति (Illocutionary) के लिए प्रयुक्त की जाती है।'[20] रोनाल्ड वर्धो ने 'बातचीत के संपूर्ण व्यापार को वाक् व्यापार कहा है।'[21]

वाक् व्यापार में मूलत: तीन प्रक्रियाएँ होती हैं। पहली यह कि वक्ता किसी वाक्य का उच्चारण करता है। दूसरी, इस उच्चारण में वक्ता का जो उद्देश्य होता है उसके अनुरूप उस कथन के उच्चारण पर जोर देता है या ध्वनि में उतार चढ़ाव करता है। तीसरी यह कि वक्ता के उच्चरित वाक्य का श्रोता पर जो प्रभाव पड़ता है उसके अनुसार वह प्रतिक्रिया

व्यक्त करता है। इन तीनों प्रक्रियाओं को स्पष्ट करने के लिए "जे.एल. ऑस्टिन ने निम्नलिखित शब्दावली का प्रयोग किया।"[22]

1. वाच्य सामान्य (Locutionary)
2. वाच्य वृत्ति (Illocutionary)
3. वाच्य प्रभाव (Perlocutionary)

इसे स्पष्ट करते हुए ऑस्टिन ने बताया कि प्रत्येक कथन के तीन रूप होते हैं। एक उसका सामान्य रूप जैसे बस या अन्य वाहन में यात्रा के दौरान एक यात्री दूसरे से पूछता है - *"यह सीट खाली है?"* यह सामान्य वाक्य है परंतु वक्ता इसमें एक साथ दो प्रकार के कथन को संप्रेषित कर रहा होता है। एक तो सामान्य सा प्रश्न है कि यहाँ कोई और बैठा है या नहीं तथा दूसरा उसमें एक आग्रह या निवेदन भी है। यह प्रश्नवाचक और आग्रह ही इसका मूल कथ्य है। कथ्य के इसी व्यापार को ऑस्टिन ने वाच्य वृत्ति (Illocutionary) कहा है। वक्ता के कथन के प्रभाव पर ही श्रोता सीट देगा या नहीं देगा यह निर्भर करता है। अत: श्रोता पर जो प्रभाव पड़ा वह वाच्य प्रभाव (Perlocutionary) है। समाजभाषाविज्ञान और साहित्य दोनों में इसका अध्ययन किया जाता है। अतः वाक् व्यापार दोनों के लिए अत्यंत जरूरी और महत्वपूर्ण है।

वार्तालाप सहयोग का सिद्धांत (Principle of conversational cooperation)

जब दो या दो से अधिक लोगों के बीच वार्तालाप होता है तो उसमें मूल रूप से वाक् व्यापार (speech act) का आदान-प्रदान होता है। 'वाक् व्यापार के इस आदान-प्रदान का अध्ययन H.P. Grice ने 1975 से 1981 तक किया और सफल और सार्थक वार्तालाप के लिए कुछ नियम बनाए। इसे ही Maxim of Grice कहा जाता है।'[23] इन्होंने वार्तालाप में चार गुणों परिमाणात्मक, गुणात्मक, प्रासंगिक और तरीका का होना अनिवार्य माना।

इस सिद्धांत में ग्राइस ने यह बताने की कोशिश की है कि उतना ही जवाब दिया जाए जितना पूछा जाए, वही कहें जो संदर्भ से जुड़ा हो। जो गलत या संदिग्ध हो ऐसी बातें या प्रमाण न दे। बातों को क्रमवार तरीके से कही जाए। ग्राइस ने रोजमर्रा के व्यवहार में इन्हें महत्वपूर्ण माना, बल्कि इसके बिना संवाद की सम्प्रेषणीयता को संदिग्ध भी करार दिया। इन्होंने माना कि वक्ता के जिस कथन में इन चारों का समावेश होता है वह कथन पूर्णत: सम्प्रेषित होता है अगर चारों में से किसी का भी अभाव हो तो सम्प्रेषण अपूर्ण और असफल हो जाता है। परंतु रोजमर्रा के जीवन में और साहित्य में प्राय: अनेक ऐसे संदर्भ आते हैं जिसमें एक वाक्य का दूसरे से तारतम्य बैठाना बहुत कठिन होता है परंतु सम्प्रेषण बाधित नहीं होता। उदाहरणार्थ :

पति : मैं ऑफिस जा रहा हूँ।

पत्नी : खाना तैयार है।

पति : दस बज गए।

संवाद के स्तर पर देखा जाए तो एक का दूसरे से तारतम्य बिल्कुल नहीं बैठ रहा है। वक्ता जो कह रहा है श्रोता बिल्कुल वही जवाब नहीं दे रहा परंतु जवाब दे रहा है। उत्तर और प्रति उत्तर का क्रम जारी है। इस तरह की वाक् घटना को ग्राइस ने वार्तालाप सहयोग का सिद्धांत (Principle of Conversational Cooperation) कहा है।

इस तरह की वाक्-घटना के पीछे ग्राइस का तर्क है कि प्राय: ऐसा होता है कि जब वक्ता और श्रोता दोनों एक ही विषय या लक्ष्य के संदर्भ में बात करते हैं तो वार्तालाप के उपरोक्त चारों नियमों के उल्लंघन के बावजूद सम्प्रेषणीयता बाधित नहीं होती है। इसे और भी स्पष्ट करते हुए रोनाल्ड वार्थो ने लिखा है कि 'दर्शनशास्त्री ग्राइस के अनुसार हम बातचीत करने में सक्षम होते हैं क्योंकि एक कॉमन लक्ष्य को पहचानने और इसे पाने में सफल होते हैं, अर्थात् हम एक समान संदर्भ को साझा कर रहे होते हैं।'[24]

इस कथन में रोनाल्ड वार्धों ने वार्तालाप में उसके लक्ष्य को ज्यादा महत्व दिया और यह आवश्यक भी है। इस तरह के वार्तालाप का सामना हम रोज करते हैं। जीवन और समाज में इसकी अनेक झाँकियाँ देखने को मिलती है। साहित्य में भी इसके अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए निर्मल वर्मा की कहानी 'पिक्चर पोस्टकार्ड' का यह अंश देख सकते हैं :-

" ''पेपर कैसा हुआ"

"शायद अगली बार फिर आना पड़ेगा"

"डोंट बि सिली" ''[25]

वार्तालाप के इस क्रम में वाक्यों की तारतम्यता संदिग्ध है परंतु वक्ता और श्रोता एक दूसरे के कथन से स्वयं अर्थ निकाल रहे हैं और उसका प्रति उत्तर भी दे रहे हैं। यहाँ परीक्षा होने से जुड़े सवाल में पास होने या न होने का उत्तर दिया जा रहा है परंतु बात सीधे-सीधे नहीं बल्कि परोक्ष रूप से कही जा रही है। यहाँ Quality, Quantity, Relation और Manner के अभाव के बावजूद संवाद सम्प्रेषित हो रहा है।

जीवन और साहित्य के ऐसे अनेक संदर्भों को इस सिद्धांत के द्वारा विश्लेषित किया जा सकता है। समाजभाषाविज्ञान और साहित्य दोनों में इन तीनों सिद्धांतों की परतल कर सकते हैं। क्योंकि तीनों में भाषा और समाज के घात-प्रतिघात का अध्ययन-विश्लेषण किया जाता है और साहित्य एवं समाज इसका प्रयोगशाला हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जाए तो कह सकते हैं कि साहित्य, समाज और भाष तीनों एक दूसरे में अंतर्निहित हैं। साहित्य में भाषा के माध्यम से किसी समाज का चित्रण किया जाता है। समाज की संपूर्ण अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से होती है और भाषा के लिए समाज एक प्रयोगशाला है। सार रूप में कहें तो तीनों एक-दूसरे के बिना अपूर्ण हैं। संस्कृति इन तीनों की योजक कड़ी है। समाजभाषाविज्ञान भाषा के सामाजिक संदर्भों की व्याख्या

रता है। इस प्रकार देखा जाए तो साहित्य और समाजभाषाविज्ञान भी एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। दोनों के बीच की योजक कड़ी भाषा और समाज है। साहित्य में रचनाकार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। रचनाकार अपने जीवन के अनुभवों को अपने साहित्य में रचता है। इसलिए उसकी भाषा और सामाजिक परिवेश, साहित्य के समाजभाषाविज्ञान के विश्लेषण में महत्व रखते हैं।

साहित्य और समाजभाषाविज्ञान के बीच इन साम्यताओं के अतिरिक्त भाषायी संजाल, वाक् व्यापार और वार्तालाप सहयोग का सिद्धांत ऐसे मानक हैं जो इनके अंत:संबंधों को प्रदर्शित करते हैं। सामाजिक संजाल जिस तरह समाज के प्रत्येक व्यक्ति को भाषा के माध्यम से जोड़ता है उसी तरह साहित्य में एक पात्र को दूसरे पात्र से जोड़ता है। वाक् व्यापार और वार्तालाप सहयोग का सिद्धांत भी समान रूप में साहित्य और समाज में प्रयुक्त भाषा का विश्लेषण करता है।

इसलिए कह सकतें हैं कि साहित्य समाजभाषाविज्ञान विज्ञान के लिए तथ्य उपलब्ध करता है और समाजभाषाविज्ञान साहित्य को विश्लेषित करता है। दोनों एक दूसरे को समझने और प्रामाणित करने की प्रक्रिया में साधन और साध्य का काम करते हैं। दोनों के नियामक भाषा और समाज हैं और इन्हीं के आधार पर इनके अन्तःसंबंधों को समझा और समझाया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

---

[1] Language is a complicated business in everyday, we use the word language in many different ways. It isn't clear how language should be defined or what the person on the street think it actually is.
Downes William, *Language and Society,* Cambridge University Press, The Edinburgh Building, Cambridge CB2 2RU, UK, Second Edition : 1986, Pg.1

[2] वात्स्यायन सच्चिदानंद, "भाषा और अस्मिता", *अद्यतन,* सरस्वती विहार, 21 दयानंद मार्ग, दरियागंज,नई दिल्ली 110002, प्रथम संस्करण :1977, पृ.सं. 15

[3] मिश्र विद्यानिवास, "भाषा, गणितात्मक भाषा, सूचनात्मक भाषा और काव्य भाषा" *आलोचना, अप्रैल-जून 1974,* राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, पृ.सं. 65

[4] There cannot be no relation between language and culture more than there be a total correlation.
Mehrotra Raja Ram, *Sociolinguistics in Hindi Context,* Walter de Gruyter & Co., Berlin, Published :1986, pg. viii

[5] श्रीवास्तव रवीन्द्रनाथ, *हिंदी भाषा का समाजशास्त्र,* राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, जी-17, जगतपूरी, दिल्ली 110051, प्रथम संस्करण : 1994, दूसरी आवृति : 2001, पृ.सं.17

[6] Mesthrie Rajend Swann John, Deumert Ana & Leap William L. (ed.), *Introducing Sociolinguistics,* Edinburgh University Press, 22 George Square, Edinburgh, First Edition : 2000, Pg. 35

[7] The relation between language and society has loomed lange over the present day sociolinguistic deliberation. This relationship is two fold functional and existential. Considered functionally, language and society are autonomous, while existentially, they are independent and inseparable. They are the two sides of the same coin. A society without language or a language without is quite as In conceivable as a coin with one side blank.
Mehrotra Raja Ram, *Sociolinguistics in Hindi Context,* pg. vii (Introduction)

[8] Labov William, *Sociolinguistic Patterns,* University of Pennsylvania Press, Philadelphia, First Edition : 1972, Pg. 267

[9] Speech is a not personal possession, but a social it belongs, not the two individual, but to the member of society. No item of existing language is the work of individual; for what we may severally chose to say in not language until it be accepted and employed by our fellow. The whole development of speech, though initiated by the act of individuals, wrought out by the community.

Koerner Konrad, "History of Modern Sociolinguistics" *American Speech,* Vol. 66, No. 1, Duke University Press, Published (Spring) : 1991, pg. 59

[10] पाण्डेय मैनेजर, *साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका,* हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, तृतीय संस्करण : 2006, पृ.सं. 18

[11] वात्स्यायन सच्चिदानंद, "भाषा और साहित्य", *अद्यतन, पृ.सं.* 19

[12] "Language is a social product, the instrument where by men communicate and persuade each other; thus the study of poetry's sources cannot be separated from the study of society.

Coudwell Christopher, *Illusion And Reality,* People's Publishing House, New Delhi, Edition : 1945, Reprinted : 1976, pg. ix (Introduction)

[13] पाण्डेय मैनेजर, *साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका*, पृ.सं. 14

[14] वात्स्यायन सच्चिदानंद (सं०/ले०), "साहित्य और समाज का अन्तःसम्बन्ध", *साहित्य और समाज परिवर्तन की प्रक्रिया,* नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नई दिल्ली : 110002, प्रथम संस्करण : 1985, पृ.सं. 88

[15] The concept of social network has been used successfully in Anthropological research. And refers to the informal and formal social relationship that individuals maintain with one another.

Mesthrie Rajend Swann John, Deumert Ana & Leap William L. (ed.), *Introducing Sociolinguistics,* 123

[16] Density refer to the number of connections or link in a network. In a low density network individuals usually know the central member but not each other. In a high density network the member of the network are know to each other and intract with each others regularly.

Mesthrie Rajend, Swann John, Deumert Ana & Leap William L. (ed.), *Introducing Sociolinguistics,* 123

[17] Multiplexity refer to the content of the network links. When individuals in a network are linked to each other in more than one fungtion (co-employee, relative, friend, neighbor, member of the some sport club, and so on) anthropologist speak of a multiplex network. A network in which the member are linked to each other in only one capacity (for example, co-employee) is called a uniplex network.
Mesthrie Rajend Swann John, Deumert Ana & Leap William L. (ed.), *Introducing Sociolinguistics,* 124

[18] Matthews P.H., *Concise Dictionary of Linguistics,* Oxford University Press, Great Clarendon Street, Oxford OX26DP, Second Edition : 2007, pg. 198

[19] मिश्र दुर्गा प्रसाद (सं०), *भाषाविज्ञान कोश (द्वितीय खंड)*, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, शिक्षा विभाग, भारत सरकार, संस्करण : 1998, पृ.सं. 17

[20] A term which has been used in more than one sense. most commonly today this term simply mean an illocutionary act. Training to do something by speaking, such as promising, threating, persuading, ordering, apologizing, naming a ship so on.
Trask R L, *A Student Dictionary of Language and Linguistics,* Arnold, 338 Euston Road, London NW1 3BH, Edition : 1997, pg. 204

[21] The speaking part of the total act, the actual speech act.
Wardhaugh Ronald, *An Introduction to Sociolinguistics,* Blackwell Publishers Inc 350 Main Street, Malden, Massachusetts 02148, USA, Third Edition : 1998, pg. 281

[22] Mesthrie Rajend, (ed.), *Concise Encyclopedia of Sociolinguistics,* Elsevier Science Ltd., The Boulevard, Langford Lane, Kidlington, Oxford OX5 IGB, UK, 2001, pg. 202

[23] Quantity : Make your contribution as informative as is required (for the current purpose of the exchange) Do not make your contribution more informative than is required.

Quality : Do not say what you believe to be false. Do not say that for which you lack adequate evidence.

Relation : Be relevant.

Manner : A void ambiguity. Avoid obscurity of expression. Be brief (Avoid unnecessary prolixity) be orderly.

Mesthrie Rajend, (ed.), *Concise Encyclopedia of Sociolinguistics,* pg. 117

[24] According to philosophers such as Grice, we are able to converse with one another because we recognize common goals in conversation and specific ways of achieving these goals. In any conversation, only certain kinds of moves are possible to any particular time because of the constraints that operate to given exchange. These constraint limit speakers as to what they can say and listeners as to what they can infer.

Wardhaugh Ronald, *An Introduction to Sociolinguistics,* pg. 287

[25] वर्मा निर्मल, प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, चौथा संस्करण : 1988, आवृति : 1998 पृ..सं. 171

तृतीय अध्याय

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में चित्रित भाषायी समाज

❖ फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में चित्रित भाषायी समाज

- 'रेणु' के उपन्यासों का भाषायी भूगोल
- 'मैला आँचल' में चित्रित भाषायी समाज
- 'परती : परिकथा' में चित्रित भाषायी समाज
- 'पल्टू बाबू रोड' में चित्रित भाषायी समाज
- 'कितने चौराहे' में चित्रित भाषायी समाज
- 'जुलूस' में चित्रित भाषायी समाज
- 'दीर्घतपा' में चित्रित भाषायी समाज

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में चित्रित भाषायी समाज

भाषायी समाज (Speech community) का सामान्य परिचय प्रथम अध्याय में दिया जा चुका है। प्रस्तुत अध्याय में 'रेणु' के उपन्यासों में चित्रित भाषायी समाज का विश्लेषण करने का प्रयास किया जा रहा है।

हिंदी प्रदेश का फैलाव बिहार से लेकर राजस्थान तक और हिमाचल प्रदेश से लेकर मध्य प्रदेश तक है। यूँ तो हिंदी का अभिप्राय खड़ी बोली हिंदी से है परंतु इस विशाल हिंदी पट्टी की सामान्य जनता की भाषा खड़ी बोली हिंदी न होकर हिंदी का क्षेत्रीय रूप है, जिन्हें विभिन्न नामों से जाना जाता है। बिहार में बिहारी बोली जाती है। इसके विभिन्न रूप मैथिली, भोजपुरी, मगही, अंगिका, बज्जिका आदि हैं। उत्तर प्रदेश में भोजपुरी, अवधी, कन्नौजी, ब्रज, बघेली, खड़ी बोली आदि बोलियाँ बोली जाती हैं। राजस्थान में राजस्थानी, मारवाड़ी, आदि बोलियाँ सामान्य व्यवहार में प्रयुक्त होती हैं। इसी तरह मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, झारखंड एवं छत्तीसगढ़ में हिंदी के विविध रूप सामान्य बोलचाल में आम लोगों में प्रचलित हैं।

हिंदी प्रदेश की भाषा एवम् उसके भाषा-रूपों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये आपस में बोधगम्य होती हैं। अभिप्राय यह कि आस-पास या दूर-दूर तक बोली जाने वाली भाषाओं के वक्ता एक दूसरे की भाषा समझ सकते हैं और आपस में संवाद भी स्थापित कर सकते हैं। इसका प्रमुख कारण हिंदी प्रदेश की सामाजिक एवं सांस्कृतिक तत्वों की समानता है। कुछ विकल्पन के साथ सभी भाषा रूपों के शब्द-भंडार लगभग एक जैसे हैं। इस क्षेत्र की सामाजिक संरचना में साम्यता होने के कारण यहाँ की बोलियाँ एक-दूसरे से अलग होती हुए भी आसानी से बोधगम्य हैं।

किसी साहित्य (उपन्यास) के समाजभाषावैज्ञानिक विश्लेषण में भाषा विश्लेषण का सर्वाधिक महत्व है। यहाँ भाषा-विश्लेषण का अर्थ उपन्यास में प्रयुक्त भाषाएँ एवं भाषा-रूपों की पहचान से है। किसी उपन्यास में कितनी भाषाएँ अथवा भाषा-रूप प्रयुक्त हुई हैं यह उसकी कथावस्तु, पात्र एवं रचनाकार की भाषायी सामर्थ्य पर निर्भर करता है। इस दृष्टि से 'रेणु' के उपन्यासों के पात्र, कथानक एवं स्वयं रचनाकार समूचे हिंदी साहित्य में बेजोड़ हैं। इनके पात्र, चरित्र एवं कथानक जितने सहज हैं उतने ही संश्लिष्ट भी; संवेदना, भाव एवं भाषा सभी स्तरों पर। 'रेणु' स्वयं अनेक भाषाएँ, मसलन मानक-हिंदी, मैथिली, मगही, भोजपुरी, अंगिका, बाँगला, नेपाली, अंग्रेजी, संस्कृत अच्छी तरह जानते थे। यही कारण है कि इनके उपन्यासों एवं कहानियों में अनेक भाषायी समाज अत्यंत सहज, स्वाभाविक एवं सफल ढंग से चित्रित हुए हैं। 'रेणु' का कथा-क्षेत्र जितना व्यापक है, इनकी भाषा उतनी ही वैविध्यपूर्ण है। इनका प्रत्येक पात्र अपने व्यक्तित्व को लेकर जितना सजग है उतना ही अपनी भाषायी अस्मिता और पहचान को लेकर सचेत भी।

'रेणु' के उपन्यासों का भाषायी भूगोल

'रेणु' के कुल छह उपन्यास पुस्तक रूप में प्रकाशित हैं। भारत यायावर ने 'रेणु' रचनावली' के तीसरे खंड में इनका एक अधूरा उपन्यास *'रामरतन राय'* के कुछ पृष्ठ प्रकाशित किये हैं। इनके उपन्यास *'मैला आँचल', 'परती: परिकथा', 'कितने चौराहे', 'जुलूस'* एवं *'पल्टू बाबू रोड'* का कथा-क्षेत्र बिहार राज्य का पूर्णिया जिला है। '*दीर्घतपा' (कलंक मुक्ति)* का कथा परिवेश बिहार की राजधानी पटना है। 'रेणु' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये अपने कथा प्रदेश की सीमा को अत्यंत स्पष्टता से रेखांकित करते हैं। *'मैला आँचल'* की भूमिका में कथा-क्षेत्र का सीमांकन करते हुए उन्होंने लिखा है -

> ''यह है 'मैला आँचल', एक आंचलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णिया। पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला है; इसके एक ओर है नेपाल, दूसरी ओर

पाकिस्तान और पश्चिम बंगाल। विभिन्न सीमा रेखाओं से इसकी बनावट मुकम्मल हो जाती है, जब हम दक्खिन में संथाल परगना और पश्चिम में मिथिला की सीमा-रेखाएँ खींच देते हैं।"[1]

इसी प्रकार *'परती : परिकथा'* के शुरुआत में ही इसका भौगोलिक परिचय देते हुए लिखते हैं -

"धूसर, वीरान, अंतहीन प्रान्तर। पतिता भूमि, परती जमीन, वन्ध्या धरती.....। धरती नहीं, धरती की लाश, जिस पर कफन की तरह फैली हुई हैं बालूचरों की पंक्तियां। उत्तर नेपाल से शुरू होकर दक्षिण गंगा तट तक, पूर्णिया जिले के नक्शे को दो असम भागों में विभक्त करता हुआ - फैला-फैला यह विशाल भू-भाग।"[2]

'पल्टू बाबू रोड' की चौहद्दी का विवरण देते हुए लेखक ने लिखा है -

"लट्टू बाबू ने सारे बैरगाछी सब-डिवीजन की चौहद्दी देख ली, मन के पर्दे पर। .....उत्तर नेपाल की सीमा। नेपाल की सीमा का अर्थ नमक, कपड़ा, किरासन तेल, चीनी और सीमेंट की दस गुनी कीमत। पूरब बंगाल की सीमा।"[3]

'कितने चौराहे' का कथा क्षेत्र वर्तमान समय का अररिया जिला है जो 1990 से पहले पूर्णिया जिला का एक सब-डिवीजन था। इस उपन्यास का कथा क्षेत्र इसी सब-डिवीजन तक सीमित है। कभी-कभी कथानायक मनमोहन के पैतृक गाँव सिमरबनी का संदर्भ आता है। *'जुलूस'* का कथा-क्षेत्र पूर्णिया जिले का एक शरणार्थी शिविर नबीनगर है। *'दीर्घतपा' (कलंक मुक्ति)* की कथा पटना के बाँकेपुर के गणपत लेन स्थित खगड़ा-मंजिल की है, जिसमें किसी जमाने में 'वर्किंग विमेन्स हॉस्टल' हुआ करता था।

'रेणु' के उपन्यासों के भाषायी भूगोल को हम बिहार के मानचित्र के सहारे आसानी से समझ सकते हैं।

(मानचित्र संख्या 1, बिहार का मानचित्र)

(मानचित्र संख्या 2, अविभाजित पूर्णिया जिला)

(मानचित्र संख्या 3, बिहार का भाषायी मानचित्र)

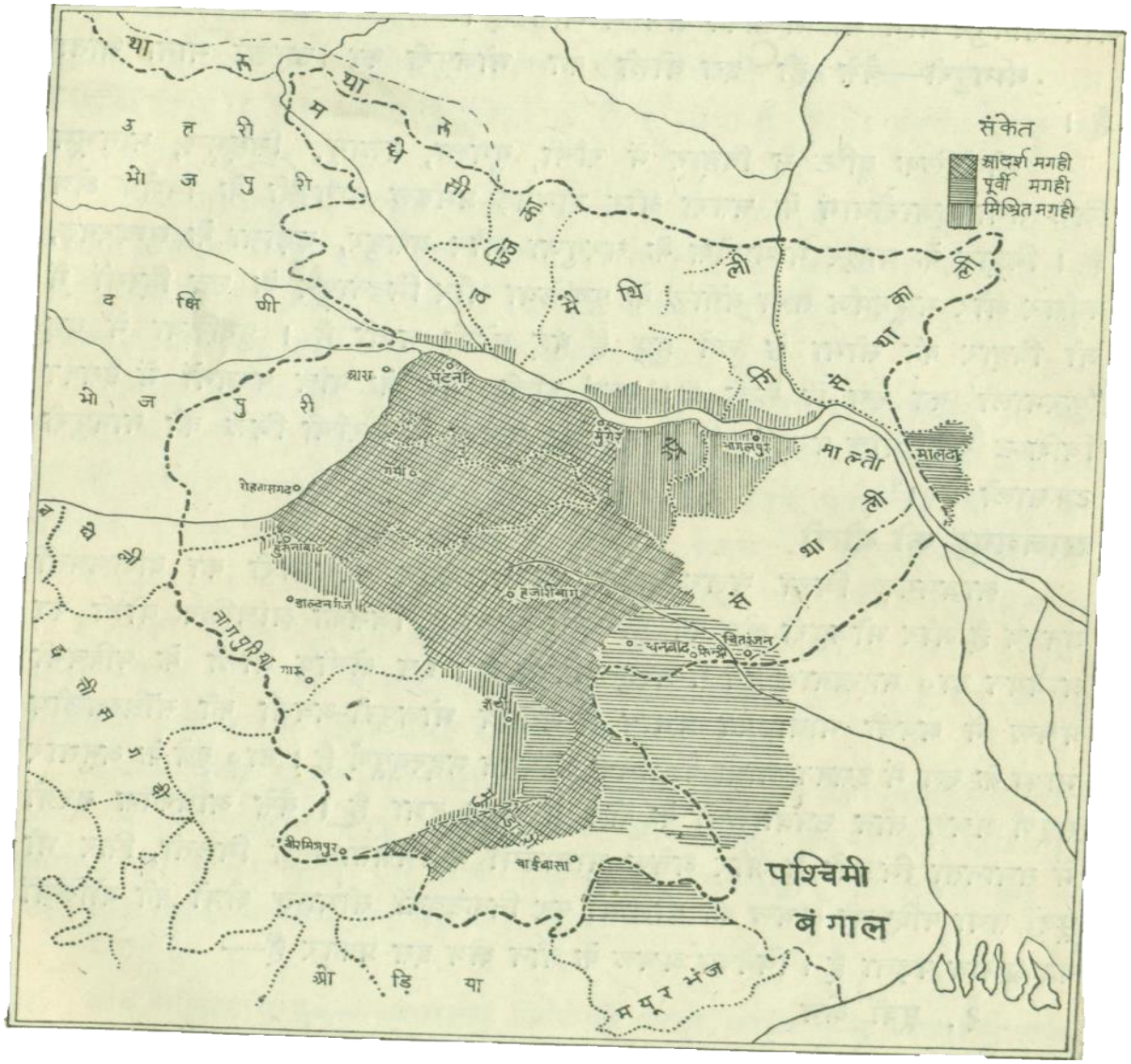

मानचित्र संख्या (1) बिहार राज्य का मानचित्र है। मानचित्र (2) अविभाजित पूर्णिया जिला का है और मानचित्र (3) बिहार का भाषायी मानचित्र है। मानचित्र (1) में पूर्णिया जिला का जो क्षेत्र दिया गया है वह 1990 ई. के बाद का विभाजित पूर्णिया जिला है। 1990 ई. से पहले अररिया और किशनगंज भी पूर्णिया जिला के अंग थे और 1989 से पहले कटिहार भी। अविभाज्य पूर्णिया अर्थात् जिसमें, कटिहार, किशनगंज, अररिया और

पूर्णिया चारों जिले आते हैं (मानचित्र-2); 'रेणु' का कथा-क्षेत्र है। इस प्रकार यदि 'रेणु' के पूर्णिया का नक्शा खींचा जाए तो इसके उत्तर में है नेपाल, दक्षिण में भागलपुर और पश्चिम बंगाल, पूरब में बंगाल एवं बांग्लादेशी (तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान) और पश्चिम की सीमा सुपौल एवं मधेपुरा से जुड़ी हुई है। इन प्रदेशों में बोली जाने वाली बोलियाँ भी अलग अलग हैं, जिन्हें भाषायी मानचित्र (मानचित्र-3) में देख सकते हैं।

बिहार की भाषाओं के बारे में कई विद्वानों ने अपने शोधपरक मंतव्य व्यक्त किये हैं। 'डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया ने भाषा-भूगोल की चर्चा करते हुए बिहारी भाषा के अंतर्गत मैथिली, भोजपुरी, मगही और बज्जिका की चर्चा की है। इन भाषाओं के क्षेत्र की भी पर्याप्त सूचना दी है। मैथिली पर बात करते हुए भागलपुर (अविभाज्य) की भाषा को ***'भागलपुरी', 'अंगिका'*** या ***'छीकाछिकी'*** भाषा नाम देने की वकालत की है। डॉ. ग्रियर्सन ने भी इसे मैथिली का दक्षिणी रूप ही कहा है। वर्तमान समय में इस क्षेत्र की भाषा के लिए अंगिका नाम स्वीकार्य है। बुकानन ने इस तरह की बोली का फैलाव भागलपुर से लेकर पूर्णिया तक बताया है पर यह भी स्वीकार किया है कि इस क्षेत्र की भाषा मैथिली से बहुत ज्यादा अलग नहीं है। उच्चारण में भी साम्यता है। बस कुछ आदिवासियों की भाषा थोड़ी अलग है। इसके शब्द भंडार थोड़े भिन्न हैं।'[4]

सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने 'भारतीय भाषा सर्वेक्षण' के पाँचवें खंड के दूसरे भाग में बिहारी बोलियों का विस्तृत वर्णन दिया है। सामान्य परिचय में बिहारी बोलियों के बारे में लिखते हैं कि 'यहाँ तीन मुख्य बोलियाँ एवं इनकी कई उप-बोलियाँ हैं। इन तीन में मैथिली और मगही को एक श्रेणी में और भोजपुरी को दूसरी श्रेणी में रखा जा सकता है। इसकी व्याख्या के वे कई आधार प्रस्तुत करते हैं। वे इन भाषाओं में प्रयुक्त द्वितीय वचन के लिए आदरसूचक शब्दों का आधार प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि मैथिली और मगही में इसके लिए *'अपने'* का प्रयोग होता है जबकि भोजपुरी में *'रउरे'* का प्रयोग करते हैं।

वर्तमानकालिक क्रिया के लिए मैथिली में *'छै'* या *'अछ'* का प्रयोग होता है, मगही में *'हैय'* का जबकि भोजपुरी में *'बाटे', 'बारा',* या *'हवा'* का प्रयोग किया जाता है।'[5]

ग्रियर्सन ने इस पुस्तक में बिहार के विभिन्न जिलों की भाषा का विवरण दिया है। पूर्णिया की भाषा के संदर्भ में लिखा है कि - 'यहाँ के अधिकांश हिस्सों में दक्षिणी मैथिली बोली जाती है। उत्तर के कुछ हिस्सों में बाँगला बोली जाती है। मध्य और पूर्वी पूर्णिया के कुछ ब्राह्मण परिवार शुद्ध मैथिली का प्रयोग करते हैं जो उत्तरी दरभंगा में बोली जाती है। यहाँ के अशिक्षित लोगों के द्वारा मैथिली के अपभ्रंश रूप का प्रयोग किया जाता है। इस अपभ्रंश मैथिली को गाँवारी (Gaowari) या गवाई बोली कहा जाता है। इसे पूर्वी मैथिली (Eastern Maithili) भी कह सकते हैं।'[6] ग्रियर्सन के इन आधारों से सहमति प्रकट की जाए तो हम कह सकते हैं कि पूर्णिया की भाषा पूर्वी मैथिली है पर कैलाशचन्द्र भाटिया ने 'अंगिका', जिसे ग्रियर्सन 'छिकाछिकी' बोली नाम देते हैं, का विस्तार पूर्णिया तक माना है। वर्तमान समय में देखने से पता चलता है कि यहाँ की भाषा महज मैथिली का अपभ्रंश नहीं बल्कि मैथिली और अंगिका का मिला-जुला रूप है। यही मिला-जुला रूप या अंगिका, मैथिली मिश्रित भाषायी समाज 'रेणु' के कथा-क्षेत्र पूर्णिया का भाषायी समाज है।

मानचित्र के अनुसार पूर्णिया जिला कई भाषाओं की भौगोलिक सीमाओं से जुड़ा है इसलिए प्रारंभ से ही यहाँ किसी एक भाषा की प्रधानता नहीं रही है। अंग्रेजों के समय में और उससे पहले से ही यह व्यवसाय का केन्द्र रहा है। आज भी पूर्णिया की गुलाबबाग मंडी बिहार की सबसे बड़ी मंडी मानी जाती है। ऐसे में यहाँ देश के अनेक भाषा भाषी समाज के लोगों का व्यावसायिक उद्देश्य से आना स्वाभाविक है। नेपाल और (बंगलादेश) पूर्वी पाकिस्तान की सीमा से सटे होने के कारण यहाँ के लोगों में इन दोनों देशों की भाषा, नेपाली और बाँगला का प्रभाव है। मैथिली उत्तर बिहार की प्रतिष्ठित सम्पर्क भाषा रही है।

इसका प्रसार सीतामढ़ी से लेकर सुपौल एवं मधेपुरा तक है। सुपौल एवं मधेपुरा पूर्णिया की पश्चिमी सीमा से जुड़े हैं इसलिए इसका प्रभाव यहाँ की भाषा पर है। अभिजात्य वर्ग के लोग आपसी बातचीत में मैथिली का प्रयोग करते हैं इस बात को ग्रियर्सन ने भी *'भारत का भाषा सर्वेक्षण'* में स्वीकार किया है। दक्षिणी सीमा भागलपुर एवं बंगाल से जुड़ी हुई है। भागलपुर की सामान्य बोलचाल की भाषा अंगिका है तथा बंगाल में बाँगला बोली जाती है अत: इन भाषाओं का प्रभाव एवं प्रयोग पूर्णिया के अनेक समाजों के सामान्य बोलचाल में दिखाई पड़ता है। पूर्णिया में रहनेवाले बंगाली परिवार अपने घरों में बाँगला का ही प्रयोग करते हैं और नेपाली परिवार नेपाली का।

बिहार में मुख्य रूप से पाँच भाषाएँ पाई जाती हैं, मैथिली, मगही, भोजपुरी, अंगिका और बज्जिका। परन्तु चूँकि बाँगला और नेपाली इसकी सीमावर्ती भाषाएँ हैं इसलिए इनका भी भाषायी समाज बिहार के इन क्षेत्रों में पाये जाते हैं। साथ ही यहाँ अनेक आदिवासी समुदाय रहते हैं, जिनकी मातृभाषा अलग-अलग आदिवासी भाषाएँ हैं। संथाली भी इन्हीं में से एक है।

'रेणु' के उपन्यासों में अनेक भाषायी समुदाय की उपस्थिति है जिसके कारणों को उन्होंने संकेत रूप में अपने उपन्यासों में बताया भी है। बंगाली समाज पूर्णिया में और बिहार में कैसे फैला इसका संकेत 'पल्टू बाबू रोड' में उन्होंने दिया है। अंग्रेजों के शासनकाल में प्राय: मुंशी और कारिंदे बंगाली हुआ करते थे। इस कारण बहुत से बंगाली परिवार बिहार के कई प्रांतों में बसे। अंग्रेजों के समय में और विभाजन के बाद बहुत से बंगाली परिवार आजीविका हेतु या विस्थापन के कारण पूर्णिया आकर बसे। इस वजह से बाँगला का संबंध पूर्णिया से सिद्ध होता है। 'रेणु' के गाँव से नेपाल की सीमा महज दस मील की दूरी पर है। यहाँ आज भी आजीविका के लिए नेपाल की तराई से लोग आते रहते

हैं। दूरी बहुत ज्यादा नहीं है इसलिए कई ऐसे परिवार हैं जिनके वैवाहिक संबंध दोनों देशों में हैं। ऐसे में वहाँ के समाज में नेपाली और बाँगला भाषा के शब्दों का रचना बसना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उत्तर बिहार के एक बड़े भू-भाग की भाषा मैथिली और अंगिका है। परंतु पूर्णिया की भाषा को कोई एक नाम नहीं दिया जा सका है। हालाँकि ग्रियर्सन ने इसे गंवाई भाषा कहने की वकालत की है पर यहाँ की भाषा में मैथिली और अंगिका के मिश्रित रूप होने के संकेत मिलते हैं। बताया जा चुका है कि 'रेणु' कई भाषाओं के जानकार थे, यह भी एक कारण है कि इनके उपन्यासों में अनेक भाषायी समुदायों की उपस्थिति है।

'मैला आँचल' में चित्रित भाषायी समाज

'मैला आँचल' हिंदी का पहला उपन्यास है जिसकी भूमिका में लेखक यह घोषणा करता है कि यह एक आंचलिक उपन्यास है। इसमें पूर्णिया अंचल के एक गाँव 'मेरीगंज' को केन्द्र में रखकर इस अंचल के जनजीवन, संस्कृति एवं भाषा का सजीव चित्रांकन किया गया है। इस उपन्यास का नायक कोई एक पात्र नहीं बल्कि वहाँ का संपूर्ण आंचलिक परिवेश है। हिंदी जगत में इसकी सबसे ज्यादा प्रशंसा और आलोचना भाषा को लेकर हुई है। रचनाकार ने इसमें पूर्णिया के अंचल की कथा कही है। किसी अंचल की कथा में तभी सजीवता आ सकती है जब वहाँ की आत्मा की अभिव्यक्ति हो और वहाँ की आत्मा की अभिव्यक्ति केवल और केवल वहाँ की भाषा में ही हो सकती है। दूसरी तरफ जब कोई रचनाकार कुछ लिख रहा होता है तो उसकी दृष्टि में उसके अपने पाठक वर्ग भी होते हैं, क्योंकि साहित्य महज स्वान्त: सुखाय नहीं है। ऐसे में 'रेणु' ने एक मध्यम मार्ग अपनाया है। इन्होंने अपने उपन्यासों की भाषा न ही वह रखी जो वहाँ के सामान्य जनजीवन में प्रचलित है और न ही मानक हिंदी। दोनों को मिलाकर भाषा का एक ऐसा लचीला रूप तैयार किया है जिसमें वहाँ का अंचल भी सजीव हो उठा है और हिंदी समाज की भाषायी

अभिरूचि भी सफलतापूर्वक रस-निष्पत्ति युक्त बनी रही। इस बात की स्वीकृति इनकी रचनाओं के विदेशी मर्मज्ञ कैथरीन हेंसन और स्वयं लेखक ने की है। इनके पात्र प्राय: हिंदी बोलते हैं पर वह मानक हिंदी नहीं है बल्कि पात्र की शैक्षणिक योग्यता, सामाजिक प्रतिष्ठा और पारिवारिक संस्कारानुकूल हिंदी है। प्रमाणस्वरूप निम्नलिखित उदाहरणों को देख सकते हैं -

विश्वनाथ बाबू : अच्छा तो बालदेव, तुम जाकर **ततमा टोली** और **पोलिया टोले** वालों को कहो, मैंने पचास रुपया माफ कर दिया। उस दिन आफसियर बाबू को जो **डाली** दी गई थी सो तो तुम्हारे ही सामने की बात है। बिरंची भी था। .....अब जरा **सिपैहिया टोला** जाओ, देखो वे लोग क्या कहते हैं। कोई कुछ करे, हमारा जो **धरम** है हम करेंगे?''[7]

लरसिंघ दास : ''हम पूछना चाहते हैं कि कोठारिन ने हमारा अपमान काहे किया? हमको बिलटा काहे बोली? हमारे आचारज गुरु को काहे गाली दिया?''[8]

संयोजक जी : ''जिस तरह यह तहसीलदारी कायस्तों के हाथ से राजपूतों के हाथ में आई है, उसी तरह सारे आर्यावर्त के राजकाज का भार हिंदुओं के हाथ में आएगा। और उस दिन आर्यावर्त के कोने-कोने में हिंदू-राज की पताका लहराएगी।''[9]

ममता : ''पढ़ गए.....महात्मा जी की आखरी लालसा? मैं तो कहती हूँ, यह वह महाप्रकाश है जिसकी रौशनी में दुनियाँ हजारों बरस का सफर तय कर सकती है।''[10]

प्रशांत : ''ममता! मैं फिर काम शुरू करूँगा - यहीं, इसी गाँव में। मैं प्यार की खेती करना चाहता हूँ। आँसू से भीगी हुई धरती पर प्यार के पौधे लहलहाएँगे। मैं साधना करूँगा, ग्रामवासिनी भारतमाता के मैले आँचल

तले। कम से कम एक ही गाँव के कुछ प्राणियों के मुरझाए ओठों पर मुस्कुराहट लौटा सकूँ, उनके हृदय में आशा और विश्वास को प्रतिष्ठित कर सकूँ.....।"[11]

सहदेव मिसर: "रात में हमारे पेट में जरा दर्द हुआ। **लोटा** लेकर बाहर निकले। जब **दिसा-मैदान** से लौट रहे थे तो देखा कि कमला किनारे वाले खेत में किसी का बैल **गहूँम** चर रहा है। इसलिए मँहगू को जगाने गया था।"[12]

इन पाँचों कथनों को सूक्ष्मता से देखा जाए तो इसमें वक्ता की सामाजिक स्थिति, प्रतिष्ठा और शैक्षणिक योग्यता का प्रमाण मिल जाता है। साथ ही रचनाकार की भाषायी सृजनशीलता भी स्पष्ट होती है। पहला कथन तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद का है। ये एक शिक्षित पात्र हैं और गाँव के सम्मानित व्यक्तियों में सबसे मूर्धन्य। इनके कथन में इनका आभिजात्यपन स्पष्ट होता है। कथन की शुरूआत ही आदेश से होती है और अंत में अपने कर्तव्य का बखान धर्म से जोड़कर करते हैं। इस वाक्य में ***'ततमाटोली', 'पोलियो टोले', 'अफसियर बाबू', 'सिपहिया टोला'*** जैसे शब्दों का प्रयोग कर वहाँ के आंचलिक संस्कृति और भाषायी पहचान को फलीभूत करने का प्रयास किया गया है। दूसरे वाक्य में एक मठ के साधु के द्वारा लक्ष्मी कोठारिन पर अभियोग लगाया जा रहा है। यह एक अशिक्षित किन्तु मठ से जुड़े होने के कारण प्रतिष्ठित व्यक्तियों की श्रेणी में आता है, परंतु भाषा प्रयोग बिल्कुल उस अंचल की ग्रामीण शैली में है। ***'काहे किया', 'बिलटा काहे'*** जैसे शब्द वहाँ की आंचलिक अस्मिता और पात्र की सामाजिक पहचान को पुष्ट और जीवंत करते हैं। तीसरा कथन 'संयोजक जी' का है। यह एक हिंदूवादी संगठन का सदस्य है। हिंदूवादी हमेशा से संस्कृतनिष्ठ हिंदी के पक्ष में रहा है। इसकी पुष्टि संयोजक जी के कथन से होता है। यहाँ ***'पताका'*** शब्द का प्रयोग उस अंचल में प्रचलित होने के कारण किया गया है। चौथा कथन डॉ. ममता तथा पाँचवां डॉ. प्रशांत का है। ये दोनों शिक्षित एवं सामाजिक वरीयता श्रेणी में

काफी ऊपर हैं। ये दोनों इस उपन्यास के सम्मानित पात्रों में से है। अत: इनकी भाषा परिनिष्ठित हिंदी है। डॉ. प्रशान्त की भाषा काव्यात्मक है क्योंकि उसका हृदय एक प्रेमी का हृदय है। छठा वाक्य गाँव का ब्राह्मण किसान सहदेव का है। वह एक ग्रामीण पंचायत में अपनी सफाई दे रहा है। इसके वाक्य में आए शब्द ***'हमारे', 'लोटा', दिसा-मैदान', 'गहूँम', 'घर'*** उसकी शैक्षणिक योग्यता एवं सामाजिक स्तर को दर्शाते हैं। ये सभी शब्द अपने ठेठ देसज रूप में प्रयुक्त हुए हैं। एक बात जो विशेष रूप से उल्लेखनीय है, वह यह कि यहाँ के लोग प्रथम पुरुष एक वचन *(मैं)* के लिए (*हम)* प्रथम पुरुष बहुवचन का प्रयोग करते हैं। सहदेब मिसिर का कथन इसका प्रमाण है। उपन्यास में ऐसे अनेक पात्र है जिनके द्वारा इस तरह का प्रयोग किया गया है।

इन नमूनों में अगर ममता, प्रशांत और संयोजक जी के कथनों को देखें तो पाएँगे कि इन तीनों की व्याकरण और सम्प्रेषण शैली परिनिष्ठित हिंदी की है। क्योंकि ये पढ़े-लिखे होने के साथ-साथ आभिजात्य वर्ग से संबंध रखते हैं। अतः कहा जा सकता है कि ये इस उपन्यास में हिंदी भाषायी समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनके अलावा और भी पात्र जो राजनीति से जुड़े हैं, सरकारी सेवा में हैं या शिक्षित हैं, वे प्रायः मानक-हिंदी का प्रयोग करते हैं। शेष पात्रों के कथनों में विश्वनाथ प्रसाद आभिजात्य वर्ग के होते हुए भी इस अंचल में रचे-बसे चरित्र हैं। इनका यहाँ के आम लोगों से घनिष्ठ संबंध है। इसलिए इनके संवादों में यहाँ के अंचल की महक है। अन्य पात्रों की भाषा भी यहीं की माटी से जुड़ी हुई है। इनकी भाषा का व्याकरण भले ही मानक हिंदी का है पर संप्रेषण शैली में इस अंचल की सोंधी गंध समाई हुई है। इसलिए कह सकते हैं कि यह भाषा न तो मानक-हिंदी है और न ही इस अंचल में हू-ब-हू बोली जाने वाली भाषा।

कहा जा चुका है कि इस उपन्यास में पात्रों की संख्या बहुत ज्यादा है। पूरा उपन्यास एक गाँव का रेखाचित्र है जिसमें अनेकानेक पात्र अपनी रेखाएँ अपनी भाषा के

माध्यम से खींचते हैं। और ये रेखाएँ अपने आप में एक दूसरे से गुँथी हुई होने पर भी अपनी निजता बनाये और बचाए रखने में सक्षम हैं। इस कारण इसमें कई भाषायी समाजों की अभिव्यक्ति हुई है। इनका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

भोजपुरी भाषायी समाज

भगवान भगत : *"अरे! ई तो दस आदमी के काम बा, जे-बा-से एकरा में सबके मिल के मतत करे के चाही। का हो सी प्रसाद?"*[13]

हवलदार : *"साला बोलता काहे नहीं? .....नाम गिनावss अपन बाप के जे साथ रहलन। हौने मुँह का देखss ताड़ss चच्चा के तरफ देख के बोलाऽ! साला हतियारा कहीं का। .....नरक में भी जगह न मिली सुसरे!"*[14]

भगवान भगत : "*आहि रे दादा रे दादा! ई त हमरे नाम लेके .....।"*[15]

भगताईन : *'अरे जा न! कोनो बाघ थोड़ो बा! .....बाप रे बाप! ई कौन देश के आदमी बा रे देबा? हुँड़ार जैसन मुँह बा! .....दास जी अंदर आके जे लेब से ले जा...बुढ़वा के बुखार बा, हमरो सिर बथता.....।"*[16]

रामबुझावन सिंह : *"गाड़ी त ना लौटी।"*[17]

बावनदास : *"लौटी ना त ठाढ़ रही।"*[18]

'रेणु' के उपन्यासों के भाषायी भूगोल पर बात करते हुए कहा गया है कि यहाँ की भाषा मैथिली और अंगिका का मिला-जुला रूप है। इस क्षेत्र की भौगोलिक सीमाओं का संबंध भोजपुरी भाषी प्रदेश से नहीं है परंतु कुछ पात्र भोजपुरी भाषाषी समाज के हैं। भाषा-भूगोल की दृष्टि से यह बात अटपटी लग सकती है। रामविलास शर्मा ने इन्हीं कथनों को आधार बना कर 'रेणु' की भाषायी अनभिज्ञता को रेखांकित करने की कोशिश की है। परंतु पात्रों की दृष्टि से यह प्रयोग अत्यंत स्वाभाविक और सजीव है। पूरे उपन्यास में कुल पाँच पात्रों द्वारा भोजपुरी में संवाद कहलाए गए हैं। ये पात्र हैं - भगवान भगत, इनकी पत्नी

भगताईन, सिपाही रामबुझावन सिंह, हवलदार और बावनदास। उपन्यास में ये सभी पात्र यहाँ के मूल निवासी नहीं हैं। ऐसा उनके व्यवसाय और भाषा के आधार पर कहा जा सकता है। भगत और भगताईन इस गाँव के दूकानदार हैं। पर ऐसा लगता है कि ये बाहर से किसी वजह से विस्थापित होकर यहाँ आए हैं। क्योंकि गाँव की किसी भी जातीय सभा, सम्मेलन, पंचायत में इनको नहीं दिखाया गया है। इनका भाषाई प्रयोग भी गाँव वालों की भाषा से भिन्न है। ये दोनों पति-पत्नी जब आपस में बात करते हैं तो माध्यम के रूप में भोजपुरी का प्रयोग करते हैं। इन तथ्यों के आधार पर कह सकते हैं की ये भोजपुरी भाषायी समाज के सदस्य हैं। भगवान भगत के पहले संवाद में गाँव वालों को सलाह देते हुए दिखाया गया है। यह भी दिखाया गया है कि भगवान भगत के कथन का कोई प्रतिउत्तर नहीं देता है। इस बात से भी यह साबित होता है कि गाँव के आपसी मामलों में इसकी सहमति-असहमति का कोई खास महत्व नहीं है। अगर वह इस गाँव का होता तो लोग अवश्य उसकी राय जानना चाहते कि किसी सामूहिक कार्य में उसका योगदान किस रूप में होगा? सामाजिक संजाल (Social Network) की दृष्टि से यह संबंध काफी महत्वपूर्ण है। भगवान भगत एक ऐसा पात्र है जिससे गाँव के लगभग प्रत्येक परिवार का मिलना-जुलना है इसलिए वह इस तरह की उपदेशात्मक बात अपनी भाषा में बोल रहा है और उसकी प्रतिक्रिया न होना यह दर्शाता है कि या तो श्रोता उसकी बातों से सहमत है या उसे नजरअंदाज कर रहा है। अन्य भोजपुरी भाषा-भाषी पात्रों में हवलदार, सिपाही रामबुझावन सिंह और सामाजिक कार्यकर्ता, काँग्रेसी बावनदास हैं। पुराने समय से ही बिहार में पुलिस की नौकरी करने वालों के लिए भोजपुरी भाषा का प्रयोग गर्व का विषय रहा है। इसका एक कारण वीर कुँवर सिंह का ओजस्वी चरित्र हो सकता है। अंग्रेज के ज़माने में पुलिस की नौकरी में ज्यादातर भोजपुर के राजपूत हुआ करते थे। आज भी प्राय: थानों में सिपाही आपस में भोजपुरी या भोजपुरी के क्षेत्रीय रूप का प्रयोग करते हैं। इसलिए 'मैला आँचल' में

सिपाहियों के द्वारा भोजपुरी भाषा का प्रयोग, रचनाकार का भाषा के माध्यम से चरित्र निर्माण का एक सृजनात्मक प्रयास हो सकता है। दूसरा यह कि हवलदार सरकारी नौकरी में है अतः हो सकता है कि वह भोजपुर से हो और यहाँ नौकरी कर रहा हो। बावनदास की भाषा सधुक्कड़ी है। चूँकि यह एक सामाजिक कार्यकर्ता है इसलिए इनके संवाद श्रोता और परिवेशानुकूल अलग-अलग भाषाओं में हैं। इस नमूने में बावनदास ने सिपाही रामबुझावन सिंह के प्रतिउत्तर में भोजपुरी का प्रयोग किया है। इसलिए ये भोजपुरी भाषायी समाज के हो भी सकते हैं और नहीं भी। परंतु अन्य चारों पात्र इस उपन्यास में भोजपुरी भाषायी समाज के सदस्य का प्रतिनिधित्व करते हैं।

मैथिली भाषायी समाज

सोबिया : *"चाह पीयै ले बजबै छथिन दाय.....नीचाँ! चलो"*[19]

कमली : *"सोबिया माई ! ए सोबिया माई!"*[20]

सोबिया : *"ऊँ! बतहा! नाती भेलहौं!" .....उँह! गुजुर-गुजुर हेरैछै!"*[21]

पूरे उपन्यास में मैथिली से प्रभावित कई कथन हैं। परंतु कुछ ही ऐसे वाक्यों के नमूने हैं जो पूरे के पूरे मैथिली में हैं। उपरोक्त नमूने दो वक्ताओं सोबिया और कमली के द्वारा कहे गये हैं। सोबिया कमली की माँ की दासी है जो बचपन से ही उसके साथ है। कमली की माँ का मायका कहाँ है इसका जिक्र उपन्यास में नहीं है परंतु सोबिया के कथन से स्पष्ट होता है कि वह मैथिली भाषाई समाज की सदस्या है। कमली एक शिक्षित पात्र है। इसके द्वारा उपन्यास में कई जगह मानक-हिंदी का प्रयोग किया गया है। परंतु यह मूल रूप से कथाक्षेत्र की रहने वाली है। चूँकि इसके मैथिली संवाद सिर्फ सोबिया के साथ ही हैं इसलिए यह कहना कठिन होगा कि वह भी मैथिली भाषायी समाज की सदस्या है। केवल सोबिया इस उपन्यास में मैथिली भाषायी समाज का प्रतिनिधित्व करती है।

अंगिका भाषायी समाज

कहा जा चुका है कि उपन्यास जिस भौगोलिक पृष्ठभूमि को लेकर लिखा गया है वहाँ अंगिका और मैथिली का मिला-जुला रूप सामान्य व्यवहार में प्रयुक्त होता है। उपन्यास के किसी भी पात्र द्वारा ठेठ अंगिका का प्रयोग नहीं किया गया है परंतु कुछ ऐसे नमूने प्राप्त होते हैं जिससे पता चलता है कि इसका प्रयोक्ता अंगिका भाषायी समाज से है।

फुलिया की माँ : *"अरे हाँ-हाँ बेटा-बेटी केकरो, घीढ़ारी करे मंगरो। चलनी कहे सुई से कि तेरी पेंदी में छेद!"*[22]

अधिकारी : *"पुरैनियाँ जिला में कंबल के नीचे भी घुसकर ससुरे मच्छर कटे हैं हो!"*[23]

ग्रामीण महिला : *"माई गे! माई! हे बेटा काली!*[241]

कालीचरण की माँ : *"हजूर .....हमरा कुछ नै मालूम।"*[25]

ऊपर के नमूने पूर्णिया के आम जन की भाषा का प्रतिनिधित्व करते हैं। फुलिया की माँ, कालीचरण की माँ और ग्रामीण महिला मेरीगंज की आम जनता का प्रतिनिधित्व करती हैं। अधिकारी जी कहीं बाहर से पूर्णिया जिले के मेरीगंज में आए हैं। कहा जा चुका है कि इस क्षेत्र की भाषा मैथिली और अंगिका का मिश्रण है पर सामान्य जनों में अंगिका का ही प्रभाव ज्यादा है। डॉ. ग्रियर्सन ने इस तरह की भाषा को मैथिली का पूर्वी रूप कहा है। आगे के विद्वानों ने इसे अंगिका नाम दिया है। इनके कथनों में हिंदी भाषा का वह सामान्य रूप प्रयुक्त हुआ है जो उस क्षेत्र के आम जनों की बोली है। ये नमूने अंगिका के हैं और उपन्यास के वे पात्र इसका प्रयोग कर रहे हैं जो इस गाँव के सामान्य जन हैं, अर्थात् जिनका रहन-सहन, खान-पान, बोली-वाणी, दु:ख-सुख, शोक-उल्लास इस उपन्यास में चित्रित किया गया है। उपन्यास में अन्यत्र भी इनके संवादों में इस तरह के फ्लेवर देखने

को मिलते हैं। कहा जा सकता है कि इन्हीं पात्रों के माध्यम से उपन्यास में अंगिका भाषायी समाज की अभिव्यक्ति हुई है।

मगही भाषायी समाज

पूरे उपन्यास में कहीं भी मगही भाषी क्षेत्र या किसी पात्र का जिक्र नहीं किया गया है। इस आधार पर कहें तो उपन्यास में मगही भाषायी समाज अनुपस्थित है परंतु मठ के भंडारी के भाषा के विश्लेषण से यह प्रमाणित होता है कि उसकी भाषा मगही है इसलिए उपन्यास में मगही भाषायी समाज की उपस्थिति भी दर्ज है।

भंडारी : *"रानीगंज के तीन गो मुरती तो आज सात दिन से धरना देले हथुन। जाए ला कहै हियेन्त त कहै हथिन बलु सरकार से आज्ञां ले ली है। बेला मठ के एक मुरती के बुखार लगलैन्ह है, दोकान में सबुरदाना न भेटाई है.....।"*[26]

भंडारी मठ में खाना बनाने का काम करता है। उपन्यास में ऐसा कहीं संकेत नहीं है कि यह इस गाँव का सदस्य है या नहीं। इसका एक और संवाद है जिसमें वह सामान्य हिंदी का प्रयोग करता है। पर इस संवाद में मगही के लक्षण जैसे ***'धरना देले हथुन', जाए ला कहै हियेन्त....*** आदि बिहार में मगही भाषी समुदाय ही प्रयोग करते हैं। अत: इस कथन के आधार पर इस भाषायी समुदाय की उपस्थिति मानी जानी चाहिए।

बाँगला भाषायी समाज

आभारानी : *"तुमि जाओ ! आमार जन्ये भेबो ना। ओई द्याखो, भगवान आमार काछे निजेय ऐसे गेछेन।"*[27]

गांगुली : *"भगवानेर व्रत भंग होबा असंभव। कारण गुरुतर। तबे आपनार भाग्य भालो जे बेचारा के सूरदासेर कथा मने पड़े नि, नईले एतखन आर भगवानेर चोख थाकतो ना।"*[28]

बंगाली काँग्रसी : *"आदमियत तुले आर कोथा बोलबेन ना मोशाय। आसून आपनार तो देखची ऐके बारे त्रिमूर्ति।"*[29]

उपर्युक्त सभी कथन उपन्यास में बाँगला भाषायी समाज की उपस्थिति को दर्शाते हैं। उपन्यास में गांगुली साहब और आभारानी को कांग्रेस के कर्मठ कार्यकर्ता के रूप में दिखाया गया है। अन्य सभी बाँगला भाषी काँग्रेस के सदस्य हैं। आभारानी और गांगुली साहब प्राय: आपस में बाँगला का प्रयोग करते हैं किन्तु अन्य लोगों से बात करते हुए आवश्यकतानुसार अलग-अलग भाषा का प्रयोग करते हैं। उपन्यास में इन पात्रों के द्वारा हिंदी और बाँगला प्रभावित हिंदी का भी प्रयोग कराया गया है। इस तरह के प्रयोग उपन्यास में बाँगला भाषायी समाज की उपस्थिति को दर्शाते हैं।

अंग्रेजी भाषायी समाज

उपन्यास में नेहरु और गांगुली के संवाद अंग्रेजी में है। गांगुली के कई संवाद बाँगला और हिंदी में हैं। इससे स्पष्ट है कि गांगुली बहुभाषी है। नेहरू कांग्रेस के शीर्ष नेता हैं। इसलिए उनके एक कथन के आधार पर अंग्रेजी भाषायी समाज का नहीं माना जा सकता है। उपन्यास में एक जगह डफ साहब का संदर्भ आया है, जहाँ वे हिंदी बोल रहे हैं परंतु उनके बोलने की शैली उन्हें अंग्रेजी भाषायी समाज का सदस्य प्रमाणित करती है।

डफ साहब : *"अमारा स्टेट में एक भी बडमाश को अम नहीं देखने माँगटा। तुम अमारा टेसीलडार को जूठा बोला। अमारा अमला जूठा? तुम साला का बच्चा सच्चा?"*[30]

इस कथन के आधार पर डफ साहब को अंग्रेजी भाषायी समाज का मान सकते हैं। ब्रिटिश पात्र 'हमारा' को 'अमारा' बोलते हैं। 'हम' के बदले 'अम' का उच्चारण करते हैं। अंग्रेजी में ऐसी बहुत सारी ध्वनियाँ हैं जो हिंदी में नहीं हैं और हिंदी में ऐसी बहुत सी ध्वनियाँ हैं जो अंग्रेजी में नहीं हैं। ऐसे में उनके यहाँ जो ध्वनि मौजूद है उसी का

एप्रोक्सिमेशन कर इस भाषायी समाज के सदस्य अपना संवाद संप्रेषित करते हैं। उस जमाने में अंग्रेज भारत में अपना व्यवसाय करते थे। इस दौरान वे लगातार यहाँ के लोगों के संपर्क में रहते थे। संपर्क के कारण और अपने अध्ययन के बल पर यहाँ की भाषा सीख लेते थे। अत: कहा जा सकता है कि डफ साहब इस उपन्यास में अंग्रेजी भाषायी समाज के प्रतिनिधि हैं। इनके माध्यम से अंग्रेजी भाषायी समुदाय उपन्यास में उपस्थित है।

नेपाली भाषायी समाज

उपन्यास में कोई भी पात्र नेपाली में कोई भी वाक्य नहीं बोलता है पर एक पात्र जो गोरखा सिपाही है, भगताईन से सिगरेट खरीदते हुए नेपाली और हिंदी के मिले जुले रूप का व्यवहार करता है।

गोरखा : *"हम पैसा **तीरकर चुरुट** लेगा....."*[31]

इस वाक्य में **'तीरकर'** (चुकाकर) और **चुरूट** (सिगरेट) दोनों नेपाली शब्द हैं। प्रयोक्ता भी नेपाली है परंतु भारत की फौज का हिस्सा है इसलिए वह हिंदी थोड़ी बहुत बोल लेता है। इन शब्दों के प्रयोग तथा भगताईन द्वारा किसी और देश का होने के अनुमान के आधार पर गोरखा फौज को नेपाली भाषायी समाज का सदस्य कहा जा सकता है।

संथाली भाषायी समाज

उपन्यास की भूमिका में ही 'रेणु' ने अपने कथा क्षेत्र की सीमा को संथाल परगना से जोड़ा है। मेरीगंज गाँव की सीमा पर बसे संथाली आदिवासियों का वर्णन उपन्यास में कई जगह आया है। बुकनन ने भी इस क्षेत्र में आदिवासियों एवम् इनकी भाषा का जिक्र किया है, जिसकी चर्चा उपर की जा चुकी है। उपन्यास में कहीं भी संथाली भाषा के वाक्यों का प्रयोग नहीं किया गया है। पर कई जगह इसके कुछ शब्दों का प्रयोग मिलता है। संथालियों और जमींदार हरगोरी सिंह से लड़ाई के प्रसंग में इस भाषायी समाज के कुछ

संकेत मिलते हैं। इस आधार पर हम उपन्यास में संथाली भाषायी समाज की उपस्थिति मान सकते हैं।

टुडू : *"इश्का नाम लेंबरी में नहीं लिखा जाएगा? क्यों? उमेर कम नहीं, देखिए, इश्को मोंच का रेख आ रहा है।"* [32]

समूह संवाद : *"बिरसा माँझी गिर पड़ल रे! डा - डा - डा - डा!"*

"बैठ के तीर चला सोनिया!"

"सुखी मुरमु गिरल रे! डा - डा - डा - डा!

"गिरने दो तुम भी गिरो।" ....रिं-रिं

"जगारी बेटा, ठीक निसाना लगा बेटा। हरगौरी तहसीलदार के कलेजा पर! हाँ!वाह बेटा!"

".....हरगौरी तहसीलदार गिरल रे!"[33]

टुडू एक संथाल है। इसके संवाद हिंदी में हैं पर ***इश्को, मोंच*** जैसे शब्दों के माध्यम से 'रेणु' ने इसके भाषायी समाज की ओर संकेत करने का प्रयास किया है। इसी तरह लड़ाई के प्रसंग में भी इसी तरह के संवाद संथाली समूह के द्वारा प्रयोग किए गए हैं, परंतु संथाली भाषा हू-ब-हू ऐसी नहीं होती। लेखक ने पाठक को दृष्टि में रखकर संथालियों की भाषा को यथावत संथाली में न रख कर उनके भावों एवं विचारों को हिंदी के साँचे में रख कर प्रेषित करने का प्रयास किया है। जहाँ भी संथाली शब्दों का प्रयोग किया गया है वहाँ पाद टिप्पणी में उसका अर्थ दे दिया गया है जिससे पाठक को अर्थबोधन की समस्याओं का सामना न करना पड़े। उपन्यास में संथाली भाषा के दो शब्द ***'दिक्कू'*** और ***'पचाय'*** का प्रयोग किया गया है। ***'दिक्कू'*** का अर्थ है बाहरी लोग तथा ***'पचाय'*** संथालों के घर में बनायी जाने वाली शराब है। लेखक का यह प्रयोग ठीक वैसा ही है जैसा नेपाली

भाषायी समाज को अभिव्यक्त करने के लिए ***चुरुट*** और ***तीरकर*** शब्द का प्रयोग। इसे भाषायी समाज का संकेत माना जा सकता है।

बिहारी भाषाओं में मैथिली और अंगिका में बहुत ज्यादा फर्क नहीं है। दोनों भाषायी समाज के लोग एक दूसरे को आसानी से समझ सकते हैं। इस कारण उपन्यास में ऐसे अनेक संवाद हैं जिसे दोनों भाषायी समाजों का माना जा सकता है। उदाहरणार्थ :

गैनू मिरदंगिया : *"ठुड्डी पाखैर तर चोर घेरलक हो, चोर घेरलक"*[34]

चौधरी : *"एहो गाड़ी छूटतऽ लच्छन लगैछे हो।"*[35]

इन दोनों वाक्यों को थोड़े-बहुत उतार-चढ़ाव के साथ मैथिली और अंगिका दोनों भाषायी समाजों के वक्ता विचार विनिमय में प्रयोग करते हैं। अगर इन दोनों के मिश्रण को कोई भाषायी समाज माना जाय तो वही पूर्णिया का मूल भाषायी समाज होगा।

इन तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि 'मैला आँचल' में खड़ी बोली हिंदी के अतिरिक्त लगभग आठ भाषायी समाजों का प्रतिनिधित्व दिखाई पड़ता है। मैथिली, मगही, भोजपुरी, अंगिका, बाँगला, नेपाली, संथाली और अंग्रेजी। उपन्यास में इतने भाषायी समाजों का होना उस क्षेत्र की बहुभाषिकता और बहुसांस्कृतिकता का प्रतीक है। ऐसा भी नहीं है कि लेखक ने अपने भाषायी ज्ञान का प्रदर्शन किया है, बल्कि पात्रों के चरित्रों की संपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए ये सभी भाषाएँ प्रयोग की हैं और इसी कारण यहाँ इतने भाषायी समाजों की उपस्थिति है। ये भाषायी समाज जहाँ एक ओर कथा-क्षेत्र की सांस्कृतिक समृद्धि को दर्शाते हैं वहीं दूसरी ओर भारतीय भाषायी मेलजोल को भी हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। इतने भाषायी समाजों की उपस्थिति के कारण भाषावैज्ञानिक दृष्टि से इस उपन्यास का महत्व और भी बढ़ गया है। हिंदी में 'रेणु' एकमात्र ऐसे लेखक हैं जिन्होंने अपने उपन्यास में आस्ट्रो-एशियाटिक भाषा परिवार के मुंडा परिवार की भाषा

'संथाली' को अभिव्यक्ति दी है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि यहाँ एक साथ कई भाषायी समाजों और भाषा-परिवारों की अभिव्यक्ति हुई है।

'परती : परिकथा' में चित्रित भाषायी समाज

'परती : परिकथा' कथ्य, शिल्प और भाषा की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट उपन्यास है। इसकी कथावस्तु का केन्द्र पूर्णिया जिले का परानपुर गाँव है। लेखक ने इस गाँव के माध्यम से पूरे देश की कथा कहने का प्रयास किया है एवं तत्कालीन सामाजिक राजनैतिक परिदृश्य को हमारे सामने लाने का प्रयास किया है। प्रारंभ में लेखक ने परानपुर गाँव के समाज के बारे में लिखा है-

> "परानपुर ही नहीं सभी गाँव टूट रहे हैं। गाँव के परिवार टूट रहे हैं, व्यक्ति टूट रहा है-रोज-रोज, काँच के बर्तन की तरह। .....नहीं। ....निर्माण भी हो रहा है। .....नया गाँव, नए परिवार और नए लोग।"[36]

'रेणु' ने जिस गाँव, परिवार और व्यक्ति के टूटने की बात कही है वह भारत का परम्परागत मध्यकालीन गाँव, परिवार और व्यक्ति है, पर जिस गाँव के निर्माण की बात कही है, वह आज का विश्वग्राम है, वह परिवार आज का एकल परिवार है और वे लोग आज के विज्ञान और तकनीक से युक्त मानव हैं जो एक साथ लोकल भी हैं और ग्लोबल भी। ये एक साथ कई ज्ञान-विज्ञान की धाराओं को अपने में समेटे हुए बहुभाषिक लोग हैं। 'रेणु' का समाज आज से साठ साल पहले का समाज है। यह वह समय था जब समाज बहुत तेजी से बदल रहा था। यह बदलाव व्यक्ति की संस्कृति और भाषा को कई स्तरों पर बदल रहा था। मनुष्य का नई भाषाओं, समाजों और संस्कृतियों से परिचय हो रहा था। 'परती : परिकथा' में उपस्थित अनेक भाषायी समाज इसी कथन की सार्थकता को पुष्ट करते हैं।

'मैला आँचल' की तरह ही 'परती : परिकथा' में भी कुछ पात्र इसी गाँव के हैं और कुछ बाहर से आए हैं। इनमें से प्राय: सभी इस गाँव एवं जिले की भाषा बोलते हैं पर कुछ पात्र प्रदेश और दुनियाँ के अन्य भागों से भी आए हैं जिनकी भाषा यहाँ के लोगों से भिन्न है। पर बहुत दिनों तक एक साथ रहने के कारण एक दूसरे की भाषा को कामचलाऊ ढंग से बोल लेते हैं और समझते भी हैं। इस वजह से इस उपन्यास में भी खड़ी बोली हिंदी के अलावा अन्य कई भाषायी समाजों का चित्रण मिलता है।

नेपाली भाषायी समाज

उपन्यास में कई जगह नेपाल का संदर्भ आया है। कई नेपाली पात्रों की व्यथा कथा एवं जीवन को अभिव्यक्त किया गया है जिसे रचनाकार ने उनकी अपनी भाषा में अभिव्यक्ति की छूट दी है।

जितेन्द्रनाथ : *"दिलबहादुर! चिया दियेर आलि राम पखारन सिंध लाय बुलाउतऽऽ । च्याडे।"*[37]

दिलबहादुर : *"पानी मा भ्यागुते हेरेर काँऊ - काँऊ कराउँ छ मीत! मातऽ छक्क पर्ने!"*[38]

दिलबहादुर : *"कस्तो राम्रो"*[39]

कांछी माया : *"दिले ! पलटन मा किन मर्ना हुने?"*[40]

पलटनबाज : *"मन लाग्ने कुरा, छोटी केटी राम्री - राम्री"*[41]

नेपाली गीत : *"मधेश तिरऽ हिंड़े को मांछे*

(झाउरे) *शहर लख्नो कैले जाने - ऐं - ऐं - ऐं*

गारद मा बस्ने मेरो लोग्नि लाई..... !

.....

लाज ले मरन गराई .....।"[42]

दिलबहादुर : *"कांछी मैयाँ सांझनामा तिम्रो हँसाछिन यो जेनेली राती मलाई मामा गर्नी कांछी।"*[43]

दिलबहादुर : *"क्याम्प को त्यो साहेब आए को।"*[44]

उपर्युक्त कथन नेपाली भाषा में हैं। लेखक ने अत्यंत स्वाभाविक ढंग से इसका प्रयोग किया है। पहला कथन जितेन्द्रनाथ का है। इसमें जितेन्द्रनाथ दिलबहादुर से चाय देने के बाद रामपखारन सिंह को बुलाने को कहते हैं। लेखक ने उपन्यास में लिखा है कि जितेन्द्र, दिलबहादुर से नेपाली में ही बात करते हैं। उपन्यास में अन्यत्र जितेन्द्र प्राय: परिनिष्ठित हिंदी में संवाद संप्रेषित करते हुए चित्रित किये गये हैं और कहीं-कहीं आवश्यकतानुसार अंग्रेजी का भी प्रयोग करते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जितेन्द्र भले ही नेपाली बोलते हैं पर नेपाली भाषायी समूह के पात्र नहीं हैं। इसके अतिरिक्त जितने भी कथन उद्धृत किए गए हैं वे सभी पात्र नेपाल के हैं। इनके पूरे के पूरे संवाद नेपाली में ही हैं। दिलबहादुर बहुत दिनों से जितेन्द्र के साथ भारत में रह रहा है इसलिए संप्रेषण योग्य हिंदी भी जानता है पर भावावेश के क्षण में हमेशा नेपाली ही बोलता है। उदाहरणार्थ नट्टिन टोले में लूतों के बातों के प्रतिउत्तर में कहे गये दिलबहादुर के इस संवाद को देख सकते हैं -

"हेरे-s - s - लूतो मुजी! न राम्रो कुरान गर - s - s ! नत्र .....

.....

तुम कुछ नहीं बोला ? नहीं बोला कुछ ? हम नहीं समझा ? लुत्ते मुजी! तुम अब्बी भुच्च नहीं बोला ? तुम कुछ नहीं बोला तो हमपनि कुछ नहीं बोला, लुत्ते मुजी!"[45]

इस कथन से स्पष्ट होता है कि दिलबहादुर हिंदी जानता है पर है मूलत: नेपाली भाषायी समाज का। इसके अलावा दिलबहादुर की प्रेयसी कांछीमाया, पलटनबाज एवं नेपाल

की तराई में काम कर रही औरतों के संवाद और गीत हैं। ये सभी नेपाल के हैं। इनके कथन नेपाली में हैं। इन कथनों के माध्यम से उपन्यास में नेपाली भाषायी समाज को अभिव्यक्त किया गया है।

बाँगला भाषायी समाज

उपन्यास में कहीं भी सीधे-सीधे किसी भी बंगाली पात्र का जिक्र नहीं किया गया है परंतु कुछ पात्र हैं जो बाँगला में बात करते हैं या भावावेश के क्षण में बाँगला का प्रयोग करते हैं।

ताजमनी : *"ओ माँ! माँ गो - ओ - ओ -!"*[46]

गोविन्दो : *"फूल फूटिलो रे राँगा .....ओ गो .....फूल फूटिलो रे जवाँ .....फूटिलो रे!"*[47]

जितेन्द्रनाथ : "आमार चोख बुझी कॉटा?"[48]

डॉ. रायचौधुरी : *आखे कुरी नहीं।..... तुमी पारबे! तुमी पारबे! तुमी जे निजेइ एक बिरल वनस्पति!"*[49]

डॉ. रायचौधुरी : *"बधुआ तोमार मानेर मानुस घाटे-घाटे डाके लो-ओ, नाम धरिया हाँके...।"*[50]

गोविन्दो : *"उई मोरोग टा'र की हबे?*[51]

ऊपर के कथनों में ताजमीन और जितेन्द्र के कथन को छोड़, शेष जितने भी कथन हैं उसके वक्ता बाँगला भाषायी समाज के हैं। ताजमनी नट्टीन है। उसका संबंध बचपन से ही जितेन्द्रनाथ की माँ से रहा है। जितेन्द्र की माँ काली की उपासना करते हुए बाँगला का यह प्रचलित वाक्य दुहराती थी। इसी वजह से अक्सर ताजमनी के मुँह से यह वाक्य निकल जाता है। इसके अलावा अन्यत्र सभी जगह ताजमनी का संवाद हिंदी में है। गोविन्दो बहुत दिनों से जितेन्द्रनाथ के यहाँ रसोई बनाने का काम करता है। इसके संवादों से लगता है कि यह बाँगला भाषायी समाज का है पर हिंदी भी जानता है। परंतु लेखक की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसके जितने भी हिंदी कथन हैं वे बाँगला प्रभावित हिंदी में हैं। इससे

गोविन्दो के भाषायी समाज को पहचानना अत्यंत सरल हो गया है। लेखक की यह विशेषता अन्य उपन्यासों में भी दिखाई पड़ती है। इरावती के मामा डॉ. रायचौधुरी भी बाँगला भाषायी समाज के हैं। वे उच्च शिक्षित हैं, इसलिए हिंदी और अंग्रेजी भी बोलते हैं परंतु हिंदी और अंग्रेजी पर बाँगला का प्रभाव दिखाई पड़ता है जैसे -

*"लेकिन, **लक्खी** माँ! मामा को **छाड़ि** के बन्धु को पाने वाला कोई नहीं।"*[52]

डॉ. रायचौधुरी के इस हिंदी कथन पर बाँगला का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। यहाँ वाक्य साँचा हिंदी का प्रयुक्त हुआ है लेकिन 'लक्खी', 'छाड़ि' शब्द बाँगला का है जिससे पूरे वाक्य में बाँगलापन की गंध समा गई है। इन पात्रों के माध्यम से उपन्यास में बाँगला भाषायी समाज की अभिव्यक्ति हुई है।

मैथिली भाषायी समाज

चूँकि उपन्यास का कथानक ही मैथिली और अंगिका से मिश्रित भाषायी क्षेत्र है इसलिए उपन्यास में इस भाषायी समाज का होना स्वाभाविक है। पंरतु बहुत कम पात्र ऐसे हैं जो अपने पूरे वाक्य मैथिली में बोलते हैं। सभी के वाक्य हिंदी के हैं जिस पर अंगिका या मैथिली का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

रोजउड : *"अहाँ बड़ सुन्द्रड छि:"*[53]

जिवछी नैरी : *"**मालकिन,** दुल्हा बाबू आविगेल! लाउ हमर इलाम बकसिस, हमर बात ठीक भेल।"*[54]

पूरे उपन्यास में यही दो कथन हैं जिसे हम पूर्णत: मैथिली का कह सकते हैं। इसमें जिवछी नौरी का वाक्य मैथिली भाषायी समाज का बेजोड़ नमूना है। वैसे यहाँ भी *'मालकिन'* शब्द मानक हिंदी का है। मैथिली में इसका उच्चारण ***मैलकिन*** होता है। रोजउड मैथिली सीख रही है। अत: इसे मैथिली भाषायी समाज का सदस्य नहीं माना जा सकता। यह मूलत: अंग्रेजी भाषायी समाज की सदस्या है जिसकी चर्चा आगे की जाएगी। रोजउड

को मैथिली उनकी नौकरानी पुतली सिखाती है। अत: पुतली को मैथिली भाषी कह सकते हैं, क्योंकि लेखक ने बताया है कि वह धर्म परिवर्तित कर क्रिश्चन हुई है। अत: संभव हो कि वह इसी भाषायी समाज से हो। पर उपन्यास में इसका कोई संवाद मैथिली में नहीं है। इस प्रकार देखा जाए तो जिवछी ही एकमात्र पात्र है जिसे मैथिली भाषायी समुदाय का प्रतिनिधि-पात्र माना जा सकता है।

अंगिका भाषायी समाज

गंगाबाई : *"देखबो कोयली तोहर अंडा। खूब सेवो अंडा।"*[55]

दंता राक्षस : *"भोर में फेर देखिवो सुन्नरि कन्ना।"*[56]

मलारी : *"बप्पा- आ - आ हो! बप्पा"*[57]

पंच : *"तोहर सब दोख माफ। देव कुमार दुल्हा मिले सुन्दरी नैका को।"*[58]

उपर्युक्त कथनों में गंगाबाई और दंता राक्षस का कथन एवं कथन-शैली दोनों अंगिका के हैं। पंच के कथन में अंगिका की शैली दिखाई पड़ती है परंतु वाक्य संरचना हिंदी की है। फिर भी कह सकते हैं कि ये पात्र उपन्यास में अंगिका भाषायी समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं।

भोजपुरी भाषायी समाज

उपन्यास में सिर्फ एक पात्र रामपखारन सिंह के कई संवाद भोजपुरी में हैं। एक जगह रोजउड की माँ का एक वाक्य भोजपुरी में है। परंतु रेाजउड की माँ सिपाही से भोजपुरी सीख रही है। वह मूलत: अंग्रेजी भाषायी समाज की है।

रामपखारन सिंह : *"परती में का होगा बौवा जी.....एहि बात तो हमहुँ.....।"*[59]

रामपखारन सिंह : *"चुपचाप सुनो। बोलो-भुको मत! फिलिंग रिकाड हो रहल बा।"*[60]

रोजउड की माँ : *"का हो? का बात हऽ:"*[61]

इस उपन्यास में रामपखारन सिंह भोजपुरी भाषायी समाज का प्रतिनिधित्व करता है। इसके जितने भी संवाद हैं उसमें भोजपुरीपन स्पष्ट परिलक्षित होता है।

मगही भाषायी समाज

हिंदी साहित्य में 'रेणु' की सबसे बड़ी ख़ासियत यह है कि ये अपने भाषा-प्रयोग के माध्यम से पात्र और परिवेश का जीवंत चित्रण करने में सक्षम हैं। परती : परिकथा में जब हजारीबाग और दामोदर घाटी का प्रसंग आता है, तब वहाँ के एक क्षेत्रीय पात्र का भी वर्णन किया गया है। वह जितेन्द्र की गाड़ी में कुछ दूरी की यात्रा करता है। उतरते वक़्त जब उसके द्वारा किराया देने पर जितेन्द्र लौटा देता है तो आशीर्वाद मगही भाषा में देता है -

बूढ़ा आदमी : *"कत्ते तनखा मिलै हकौ ! तोहर तनखवा बढ़तउ ! तोहर....."*[62]

बूढ़े आदमी का यह संवाद मगही जैसा है। मगही के बहुत से रूप बिहार के विभिन्न क्षेत्रों में बोले जाते हैं। चूँकि इस कथन का प्रयोक्ता हजारीबाग का है और यह क्षेत्र मगही भाषा का है इसलिए लेखक ने भौगोलिक चित्रण के लिए इस भाषायी समाज का प्रयोग किया है। उपन्यास में मात्र यही एक पात्र और कथन मगही भाषायी समाज की उपस्थिति दर्शाता है।

अंग्रेजी भाषायी समाज

'परती: परिकथा' की लगभग आधी कथा जितेन्द्र की सौतेली माँ मिस रोजउड (गीता) की डायरी और घटनाओं से जुड़ी है। कहानी का काल और परिवेश उस समय का है जब पूर्णिया जिले में रह रहे बहुत से अंग्रेज अपना व्यवसाय और जमींदारी करते थे। इस कारण उपन्यास में लगभग डेढ़ दर्जन अंग्रेजी भाषायी समाज के सदस्य दिखाई पड़ते हैं। कुछ भारतीय भी हैं जो आवश्यकतानुकूल कई जगह अंग्रेजी में ही संवाद स्थापित करते दिखाई पड़ते हैं।

भिम्मल मामा : *"गॉड सेव पंडित नेहरु ....दे'ल सेव दि लांग एंड ग्रीन प्रेस्टिज ऑव दि रुलिंग पार्टी, क्लीनली'*[63]

रोजउड की सहेली : *"टेक केयर ऑफ हिज रिब्ज'*[64]

पुतली :*"झूमर ! झूमर ! हाउ यू सिंग झूमर छोटी मेम? वेरी गुड।'*[65]

मि. ब्लैकस्टॉन :*"दैट सिवेंड्र मिस्सा? मोस्ट बॅडमास ब्राह्मीननोटोरियस, दी ब्राह्मीन क्रिमिनल ही'ज.....।'*[66]

हीरा मंडल : *"भेरी भेरी बैड मैन। ओल्ड ईस्टेट दुश्मन!'*[67]

शिवेन्द्र मिश्र : *"आई एम पंडित शिवेन्द्र मिश्र..... पत्नीदार ऑफ परानपुर स्टेट। वेरी क्लोज टू योर जमींदारी लैंड।'*[68]

रोजउड : *"थैंक यू वेरी मच। इट्स सो काइंड'फ यू। रियली आई एम ग्लैड टू सी यू.....। यू आर सो.....।'*[69]

अंग्रेजों के बच्चे : *"लेट्स प्ले खबड्डा।"*[70]

ली : *"ओनली जेनुइन फोक सांग व्हिच हेब बीन हैंडिड डाउन फ्राम जेनरेशन टु जेनरेशन बाइ बोरल ट्रांसमिशन!''*[71]

कीटी : *"व्हाइ डोंट यू फिश एनी फैट नेटिव राजा।"*[72]

प्लांटर : "*माइंड यू! दैट नोटोरियस मिस्सा'फ पेरानपो.....।"*[73]

बार्कर : *"देयर ! देयर फेमस जिब्च्च पोकरा। थाउजंड ऑफ थाउजंड्स वाइल्ड गीज डायरेक्ट फ्राम हिमालया.....।"*[74]

मोबर्ली : *"गैलेन्स ऑफ गैलेन्स व्हाइट हॅर्स एंड ऑल दैट यू वांट इज ए जंगल।"*[75]

ब्रांटी : *"ए बिग संस्कृत स्कॉलर .....नाउ यू नो बेटर!''*[76]

मि. एंडरसन : *"आइ थिंक ए क्यू राउंड्स....''*[77]

एंथोनी की पत्नी : *"एक्सक्यूज मी मिस्सा, प्लीज"*[78]

मि. सिन्हा : *"हेल्लो जित्तन बाबू! आइ एडमायर योर....."*[79]

जितेन्द्र : "नॉट आनली मी!"[80]

उपर्युक्त कथनों में भिम्मल मामा, पुतली, हीरा मंडल, शिवेन्द्र मिश्र, जितेन्द्र और मिस्टर सिन्हा को छोड़कर अन्य सभी उपन्यास में अंग्रेजी भाषायी समाज के सदस्य हैं। इन सभी पात्रों के अंग्रेजी कथन उपन्यास में बलात् प्रयुक्त नहीं किये गये हैं। भिम्मल मामा एक शिक्षित व्यक्ति हैं। उनका पूरे उपन्यास में अपना एक अलग स्थान है। उनकी अंग्रेजी भी एक अलग तरह की अंग्रेजी है। इनके माध्यम से रचनाकार ने अंग्रेजी का हिंदीकरण कैसे किया जा सकता है इस संभावना को व्यक्त किया है। उपन्यास में 'रेणु' ने बताया है कि भिम्मल मामा ने कैसे ***डेमोक्रेसी*** को ***दिमाकृषि*** बना दिया। इसी तरह के अनेक शब्द हैं जिसका अतिश्योक्तिपूर्ण हिंदीकरण किया गया है। पुतली भारतीय धर्मांतरित इसाई है। बहुत दिनों से अंग्रेजों की हवेली में, मेम साहबों की दासी का काम करती आई है। इसलिए इसने साहचर्य से अंग्रेजी सीखी है। यह इसाई धर्म को मानती है इसलिए भी रचनाकार ने इसके कई कथन शुद्ध अंग्रेजी में दिए हैं। रोजउड एक जगह कहती है कि वह पुतली से मैथिली सीख रही है जिससे हम अनुमान लगा सकते हैं कि यह मैथिली भी अच्छी तरह जानती है। हीरा मंडल भी अंग्रेजी बोलता है पर वह अंग्रेजी के वाक्य नहीं बल्कि शब्द बोलता है, जिसे हम हिंग्रेजी कह सकते हैं। शिवेन्द्र मिश्र, जितेन्द्र और मिस्टर सिन्हा उपन्यास के उच्च शिक्षित पात्र हैं। चूँकि उस समय अध्ययन-अध्यापन अंग्रेजी माध्यम से होता था, अत: इनके द्वारा आवश्यकता पड़ने पर अंग्रेजी बोलना स्वाभाविक है। परंतु ये अंग्रेजी भाषायी समाज के नहीं हैं। किसी खास परिस्थिति की वजह से अंग्रेजी बोलते हैं। अन्य पात्र जैसे रोजउड, उसकी माँ, कीटी, प्लांटर, बाकर, मिस्टर एंथोनी, मोबर्ली, आदि अंग्रेजी भाषायी समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं।

लेखक ने इस उपन्यास में 'मैला आँचल' की तरह ही भाषायी अस्मिता की अभिव्यक्ति को ध्यान में रखते हुए हिंदी भाषायी समाज के साथ-साथ नेपाली, अंग्रेजी, बाँगला, भोजपुरी, मगही, मैथिली और अंगिका भाषायी समाज का चित्रण किया है। यहाँ नेपाली और अंग्रेजी भाषायी समाज को अत्यंत सहज ढंग से अन्य भाषायी समाज की अपेक्षा ज्यादा स्थान दिया गया है। इसके अपने कारण हैं। नेपाली भाषायी समाज का प्रतिनिधि पात्र दिलबहादुर तथा अंग्रेजी भाषायी समाज का केन्द्रीय चरित्र मिस रोजउड, उपन्यास के नायक जितेन्द्रनाथ के सबसे महत्वपूर्ण पारिवारिक सदस्य हैं। इसलिए इनके संवादों की अभिव्यक्ति ज्यादा हुई है। अन्य भाषायी समाज को लेखक ने भौगोलिक एवं सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की पहचान को प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करने के लिए अभिव्यक्त किया है। ये भाषायी समाज उपन्यास के पात्रों की भाषायी विविधता को दर्शाते हैं।

'पल्टू बाबू रोड' में चित्रित भाषायी समाज

इस उपन्यास के केन्द्र में पूर्णिया जिले के बैरगछी गाँव का एक बंगाली परिवार है। यह परिवार जिस महल में रहता है उसे लोग फूलबागान कहते हैं। इस गाँव की चौहद्दी की चर्चा अध्याय के प्रारंभ में की जा चुकी है। इसकी कथाभूमि भी वही है जो 'मैला आँचल' और 'परती: परिकथा' की है। इस उपन्यास की कथावस्तु के केन्द्र में जो परिवार है उसका मुखिया एक बाहरी समाज का व्यक्ति पलटू बाबू है। इन्हीं के इशारे पर यह पूरा परिवार चलता है। बहुभाषिक समाज में संप्रेषण कितने प्रकार से किया जा सकता है इसका चित्रण इस उपन्यास में देखने को मिलता है। कथाक्षेत्र मैथिली और अंगिका का मिश्रण वाला भाषायी परिवेश है। परंतु यहाँ बहुत से बंगाली परिवार कई पीढ़ी से रह रहे हैं। इस वजह से पूरे उपन्यास में भाषायी घालमेल को अत्यंत रोचक ढंग से चित्रित किया गया है। बहुभाषिक समाज में एक साथ संप्रेषण के लिए कई भाषाओं और भाषा रूपों का प्रयोग

करना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। इस दृष्टि से देखा जाए तो इसमें कई भाषायी समाज दिखाई पड़ते हैं।

बाँगला भाषायी समाज

लट्टू बाबू : *"साला जाबे कोथाय'*[81]

फेला : *"असभ्येर मतन पूषछे'*[82]

छोगमल : *"ताई बलाम एक्टा लोतुन रेडिया? .....राम प्रसाद के बोलून, गाड़ी थेके आमार बाक्सा निये आसबे।'*[83]

गृहस्वामिनी : *"केमन आजो मुरली बाबू? मने आछे?'*[84]

घंटा :*"आर तोमर मैनेजिंग डायरेक्टर साहब के बोलो, माछ खाबार अन्य कोन जन्य जाइगा तल्लास करेन हेन।'*[85]

लट्टू : *"एकटा जीप न किनले तोमार काज भालो कोर होबे न।'*[86]

लट्टू : *"काका ! ए माछ तो पाललो !!'*[87]

पल्टू : *"पालिये जाबे कोथाय !'*[88]

अनुप सान्याल : *"आज के एकटु झाल बेसी होय छे।'*[89]

छबि : *"निजे बेला लीला खेला, अमादेर बेला पाप।'*[90]

कना : "देखबि एखन, कान धरे टेने आनबे बाल्टीर"[91]

बिजली : *"पड़ेछी मांगलेर हाथे, खान के ते होबे साथे।'*[92]

धन्नू मशालची :*"की रे एदिके कोथाय? .....थामो तोमार बाबा के बोलते होबे। ....की रे हँसछिस जे बड्ड बेसी हँसले दात पोड़े जाबे।'*[93]

पलटू : *"ओ बौ! आमार मुख पोड़िये मुख पोड़ा कोरे दिले जे।'*[94]

उपर के कथन में पल्टू सिंह इस घर के बाहरी सदस्य हैं पर लगातार इनके संपर्क में हैं इसलिए बाँगला अच्छी तरह जानते हैं। पर इन्हें इस वजह से बाँगला भाषायी समाज

का नहीं माना जा सकता। उपन्यास में पल्टू सिंह को छोड़कर अन्य सभी की मातृभाषा बाँगला है। अतः ये सभी पात्र इस उपन्यास में बाँगला भाषायी समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं।

मैथिली भाषायी समाज

कथानक क्षेत्र पर मैथिली भाषा का गहरा प्रभाव है इसलिए 'रेणु' के पात्रों ने मैथिली का प्रयोग अत्यंत सहजता से पूरे उपन्यास में आवश्यकतानुसार किया है। इस उपन्यास में फूलबागान के दो नौकरों, रामटहल और बौवन झा रसोइया, के द्वारा अनेक प्रसंगों में मैथिली का प्रयोग किया गया है।

रामटहल : *"अंयइयौ बाबाजी ! इ तअ बड़का जमाई बाबू सन आदर सत्कार.....?"*[95]

रामटहल : *"इयो बाबा जी आब ई दुनियाँ सार रसातल.....जुलूम बात। एहनो होइछे भला? हम अप्पन आँखि से देखल बात कहैछी, अप्पन सत्पथ! बाप रे बाप!"*[96]

बौवन झा : *"रोज एकटा के मुर्गी के अंडा जे चलैछे से कतै जेतै हो?"*[97]

बौवन झा : *"हो रामटहल, ई कुपक पानिये खराब"*[98]

उपन्यास में इन दोनों के माध्यम से मैथिली भाषायी समाज की उपस्थिति प्रारंभ से अंत तक दिखाई पड़ती है। यूँ तो कुछ पात्रों ने अंग्रेजी में भी एक दो कथन कहे हैं पर इस आधार पर ही उन्हें अंग्रेजी भाषायी समाज का नहीं माना जा सकता। वे मूल रूप से या तो बाँगला भाषी हैं या फिर बिहारी बोलने वाले।

इस उपन्यास में फूलबागान के लोगों की कहानी को महत्व दिया गया है। इसलिए इस परिवार के सदस्य एवं महल में काम करने वाले नौकरों की भाषा को पूर्ण अभिव्यक्ति मिली है। फूलबागान के लोग मूलत: बंगाली हैं। इसलिए इनकी व्यवहार की भाषा बाँगला है। यह पढ़ा-लिखा संभ्रांत परिवार है; इसलिए बाँगला के अलावा अंग्रेजी एवं हिंदी का प्रयोग

करते हैं, परंतु इनकी पहली भाषा बाँगला है। भावुक और संवेदनशील क्षणों में बाँगला का ही प्रयोग करते हैं। इन पात्रों के अलावा भी बहुत से बंगाली पात्रों की चर्चा उपन्यास में हुई है। यहाँ कुछ गैर बंगाली पात्र जैसे छोगमल, मुरली मनोहर मेहता, पल्टू बाबू आदि भी हैं। इनका बंगाली परिवार से निरंतर संपर्क है इसलिए बाँगला भी अच्छी तरह जानते समझते और बोलते हैं। पर इनकी पहली भाषा बाँगला नहीं है। रामटहल और बैवन झा मूलत: मैथिली भाषायी समाज के हैं। लेखक ने अनेक स्थलों पर इसका संकेत दिया है। अत: इस उपन्यास में मुख्य रूप से बाँगला और मैथिली भाषायी समाज की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है।

'कितने चौराहे' में चित्रित भाषायी समाज

'कितने चौराहे' की कथावस्तु एक बालक के जीवन पर आधारित है। कथाक्षेत्र अररिया है जो उस समय पूर्णिया जिले का एक तहसील हुआ करता था। यहीं के एक सरकारी माध्यमिक विद्यालय के कुछ छात्रों के जीवन को आधार बनाकर यह उपन्यास लिखा गया है। कथा का नायक मनमोहन (मुनी जी) है। मनमोहन का पैतृक गाँव सेमरबनी है। इन्हीं दोनों जगहों के कुछ पात्रों के जीवन से जुड़ी हुई घटनाओं का चित्रण उपन्यास में मिलते हैं। कथाक्षेत्र वही है जो मैला आँचल, परती: परिकथा, पल्टू बाबू रोड का है। इसलिए यहाँ भी बाँगला, मैथिली आदि भाषायी समाज की अभिव्यक्ति हुई है।

मैथिली भाषायी समाज

हेड मास्टर : *"अहिंक बालक थीक?"*[99]

मुनी जी के पिता : *"आब हमर नहि। अपनेहिक बालक"*[100]

सूरज और गाड़ीवान : *"एक टा जे लोटा छल बेटा छल तीन*

पनियाँ पीवेत काल लोटा लेलक छीन

भोला गरीबक दिन

कहीया हरब भोला, गरीबक दीन''[101]

इन पात्रों के कुछ संवाद मैथिली में है। यूँ तो पूरा समाज ही इसी प्रदेश का है पर इनकी भाषा में अन्य उपन्यासों की तुलना में ज्यादा परतें नहीं दिखाई देतीं।

बाँगला भाषायी समाज

हेडमास्टर साहब : *"आपनार छेले अमार चाकरी खाबे, आमि जानताय न!''*[102]

जेलर : *"एखाने केन रे?"*[103]

प्रियोदा : *"देखा कोर्ते।*[1049]

हाफिज सर : *"सवाय बोले अमाय पागल, आमि सबाय जे पागल बोली''*[105]

निलिमा : *"तापू मामा कोथाय? दीपू मामा कोथाय?"*[106]

इन पात्रों के कुछ कथन हिंदी में हैं और कुछ बाँगला में। उपन्यास में कई जगह ऐसे प्रसंग हैं जिसमें प्रियोदा और निलिमा को बंगाली बताया गया है। हेडमास्टर साहब मैथिली भी बोलते हैं और बाँगला भी। संस्कृत के भी अच्छे विद्वान हैं, पर मूलतः किस भाषायी समाज के हैं यह स्पष्ट नहीं है। अतः इस उपन्यास में निलिमा और प्रियोदा को ही बाँगला भाषायी समाज का प्रतिनिधि माना जाना चाहिए।

भोजपुरी भाषायी समाज

मटरु : "अरे मैया रे-ए-ए बँगड़वा के मार डण्डन से मुआ देलकउ रे-ए-ए अरे मैया-या!?''[107]

अंग्रेजी भाषायी समाज

प्रमोर सर : "स्टेण्ड अप ऑन दि बेंच।"[108]

काका : "ही इज माइ सरवेण्ट"[109]

भाषायी समाज की दृष्टि से यह उपन्यास बहुत ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है। बाँगला और मैथिली भाषायी समाज की उपस्थिति अत्यंत सजीवता से चित्रित की गयी है। परंतु

भोजपुरी और अंग्रेजी के संवाद निर्जीव प्रतीत होते हैं। मटरु के घर में कोई भोजपुरी नहीं बोलता इसलिए उसका भोजपुरी प्रयोग पाठक पर चमत्कारी प्रभाव तो डालता है पर उसे भोजपुरी भाषायी समाज का होना प्रमाणित नहीं करता। इसी तरह प्रमोद सर चूँकि शिक्षक हैं इसलिए अंग्रेजी बोलते हैं परंतु काका द्वारा मंडल जी के लड़के के हवाले से शुद्ध अंग्रेजी का वाक्य बोलना भी चमत्कार मात्र ही है। उपन्यास के प्रारंभ में भी 'काका' ने अंग्रेजी के कुछ शब्दों को जोड़कर वाक्य बनाए हैं। वहाँ यह सजीव लगता है।

इस प्रकार अगर भाषायी समाज की दृष्टि से देखा जाए तो 'कितने चौराहे' में हिंदी भाषायी समुदाय के अलावा बाँगला और मैथिली भाषायी समाज उपस्थित है। इन्हीं दोनों का स्वाभाविक चित्रण किया गया है। यहाँ 'रेणु' के अन्य उपन्यासों की भाँति कथावस्तु की आवश्यकता को ध्यान में रखा गया है। पर मटरु और काका की भाषा पात्र के चरित्र-चित्रण में कहीं-कहीं असफल साबित होती दिखाई पड़ती है। मटरु के भोजपुरी प्रयोग की वजह से उसका भाषायी समाज भी संदिग्ध प्रतीत होता है।

'जुलूस' में चित्रित भाषायी समाज

भाषायी समाज और बहुभाषिक समाज की दृष्टि से 'जुलूस' 'रेणु' का अद्वितीय उपन्यास है। यूँ तो इनके हर उपन्यास में प्रत्येक भाषायी समाज अपनी भाषायी अस्मिता को बनाए रखने की कोशिश करता है पर इस उपन्यास में वह इसके लिए संघर्ष करता दिखाई पड़ता है। जातीय अस्मिता और भाषायी पहचान ही पूरे उपन्यास का मूल कथ्य है।

कथानक के केन्द्र में पूर्वी पाकिस्तान से विस्थापित हिन्दुओं का एक समूह है। इसे पूर्णिया जिले के गोड़ियर गाँव के एक छोर पर की जमीन में बसाया गया है। यहाँ आने और बस जाने के बाद इनके साथ क्या-क्या घटित हुआ उसी का आख्यान है यह उपन्यास। ये शरणार्थी मूलत: हिंदू हैं पर यहाँ के लोग इन्हें मुसलमान समझते हैं। इनकी

जातीय पहचान पर हमेशा संदेह करते हैं और इन सारे लांछनाओं को सहने के लिए ये सभी अभिशप्त हैं। इस व्यथा को लेखक ने छिदामदास के माध्यम से व्यक्त किया है-

"ई साला पेट का वास्ते जो कुछ बोलना पड़े - करना पड़े।"[110]

इस कथन में भाषायी और जातीय अस्मिता के मिटने की संभावना और उसे बनाए रखने की कोशिश दिखाई पड़ती है। कथा के केन्द्र में बाँगला भाषी समाज है इसलिए इस भाषायी समाज की अभिव्यक्ति अत्यंत सशक्त तरीके से की गयी है। इसके अलावा हिंदी, अंगिका, मैथिली और संथाली का मिश्रित रूप भी कई पात्रों के द्वारा प्रयोग किया गया है। कुछ संथाली पात्र भी हैं। पर बाँगला के अतिरिक्त अन्य सभी भाषायी समाज बहुत स्पष्टता से उपन्यास में चित्रित नहीं किये जा सके हैं।

बाँगला भाषायी समुदाय

पूर्वी पाकिस्तान से जितने भी लोग विस्थापित होकर आए हैं सभी बाँगला भाषायी समुदाय के सदस्य हैं।

हरलाल साहा : *"सी हुति पारे न।"*[111]

कालाचाँद की माँ : *"दीदी ठाकरुन - देश माने हिन्दुस्तान की करे हम बुझाइया दिन? ....अमार की मोछलमान?"*[112]

ग्रामीण : *"ए देशेर सब किसू आजगूषी!"*[113]

गोपाल पाइन : *"दीदी ठाकरुन! ए की देखाले?"*[114]

कासिम : *"पोत्रा आमि हिन्दू हुते पारि, तुई हाँ बोल.....।"*[115]

पवित्रा के पिता : *".....असल जिनिस होलो भालोवासा। गाँधीजी बोले छेन.....।"*[116]

सन्ध्या : *"मासी माँ .....आमा के खूब जोर चूमू खाय.....।"*[117]

नागेन बागची : *"रेण्डी आर का के बोले?"*[118]

नरेश : "*आमि इंजिन बंद कोर्लाम, नामो!"*[119]

गिरिवाला : *"उई ताले काका निश्चय कोनो मंतर....."*[120]

सभा सदस्य : *"बोलून की करा जाय।"*[121]

खूदो बाबू : "*ओ तोमार बड़ जमाय आसबे ना?*"[122]

योगेश दास : *"मिछे-मिछे रोज झगड़ा।"*[123]

बिश्टू : *"लुकिये करि अभिसार, सामने करि सेवार काज-आमार आबार किसेर लाज?"*[124]

अन्दू : *"दिनेर बेला खॅई भाजि-रातेर बेला रानी साजी।"*[125]

कीर्तन पार्टी : *"भिक्खा दाउ गो, भिक्खा दाउ गो एसेछि भिक्षा कोरिते आज। धन-जन-प्राण जादेर गेछे....."*[126]

ये सभी नबीनगर शरणार्थी शिविर के लोग हैं। इनके कुछ संवाद बाँगला और हिंदी के कूट-मिश्रण और कूट-अंतरण के रूप में तथा कुछ हिंदी में भी व्यक्त हुए हैं। 'रेणु' का यह उपन्यास भाषायी मेलजोल और सामासिक संस्कृति को व्यक्त करने वाला सबसे सशक्त उपन्यास है।

संथाली भाषाई समाज

मोतिया : *"तूहू नाचबे पोबीदी। नरेश भैया भी नाचबे। सब नाचबे !! है..... है.....है.....है.. !!"*[127]

रुपिया : *"बेटी काँदोना .....तोरा नाच सिखाय दे बौ।"*[128]

मोतिया और रुपया के संवादों में संथालीपन का संकेत मात्र मिलता है। लेखक ने इनके लिए उपन्यास के अन्य पात्रों से थोड़ी अलग भाषा का प्रयोग किया है। यह भाषा उस क्षेत्र के निम्न वर्ग एवं संथालियों के द्वारा संपर्क भाषा के रूप में प्रयुक्त भाषा का नमूना मात्र हो सकता है। इसे संथाली नहीं कहेंगे, पर लेखक के द्वारा संथाली पात्र के लिए निर्मित एक अलग भाषा-रूप कही जा सकती है। इस भाषा रूप के प्रयोग के माध्यम

से संथालियों की भाषा को मुख्य समाज की भाषा से अलग रखने का प्रयास किया गया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'जुलूस' में प्रधानता बाँगला भाषायी समाज की है। कहीं-कहीं कुछ अन्य भाषायी पात्रों ने इसे सरलीकृत कर बोलने का प्रयास किया है। इस उपन्यास के प्राय: सभी पात्र बहुभाषिक हैं, पर मूल रूप से बाँगला भाषायी समाज की ही पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है।

'दीर्घतपा' में चित्रित भाषायी समाज

'दीर्घतपा' 'रेणु' के अन्य उपन्यासों से अलग है। इसकी कथाभूमि पूर्णिया न होकर बिहार की राजधानी पटना है। 'रेणु' ने पहली बार ग्राम-अंचल की कथा को छोड़ शहरी-अंचल की कथा को अपनी शैली में अभिव्यक्त किया है। पटना बिहार की राजधानी है, इसलिए यहाँ कई तरह की भाषाएँ बोली जाती हैं। इस कारण उपन्यास में भी इसके रूप यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। परंतु किसी एक भाषायी समाज की पूर्ण अभिव्यक्ति उपन्यास में नहीं हुई है। कई पात्र बंगाली हैं जिसे 'रेणु' ने उपन्यास में कई जगह संवादों या वर्णन के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

उपन्यास की नायिका बेला गुप्त कोसी नदी के किनारे की रहने वाली है, पर इसकी कोई एक भाषायी पहचान नहीं है। इसकी बहुभाषिकता को स्पष्ट करते हुए सुखमय घोष के माध्यम से 'रेणु' ने लिखा है -

"बाँकेपुर के लोगों के साथ खाँटी बाँकीपुरिया बोलती है। भोजपुरे से भी भोजपुरे का माफिक बोलती है। मैथिली तो.....।"[129]

उपन्यास में सुखमय घोष और रामला दीदी के माध्यम से बाँगला भाषायी समाज को दिखाया गया है। कुछ पात्र भोजपुरी में बात करते हैं।

बाँगला भाषायी समाज

रामला दीदी : *"की, कोथा गो पंचकन्या?"*[130]

भोजपुरी भाषाई समाज

दर्शक : *"चिड़ियाखाना बंद हो गइल?"*[131]

शहरी समाज की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वहाँ मातृभाषा से ज्यादा संपर्क भाषा का प्रयोग होता है। यही कारण है कि इस उपन्यास में पात्रों की मातृभाषा से ज्यादा संपर्क भाषा का प्रयोग हुआ है। पटना की या यों कहें कि उत्तर भारत के प्राय: सभी शहरों की संपर्क भाषा खड़ी बोली हिंदी है। अत: इस उपन्यास के सभी पात्रों के संवाद हिंदी में हैं। कहीं-कहीं कुछ पात्र बाँगला, अंग्रेजी एवं भोजपुरी का प्रयोग करते हैं। सुखमय घोष बाँगला भाषायी समाज का है। इसके कई कथन बाँगला प्रभावित हिंदी में हैं। रामला दीदी भी बाँगला भाषायी समुदाय की है। पर इनके एक दो संवाद ही बाँगला में हैं। इन पात्रों के संवादों के कुछ उदाहरण शोध-प्रबंध के चौथे और पाँचवें अध्याय में भी दिए गए हैं। इस उपन्यास में बाँगला के अलावा भोजपुरी में एक संवाद है। पर इससे किसी भाषायी समुदाय का स्पष्ट संकेत नहीं मिलता। अतः कह सकते हैं कि इस उपन्यास में मूल रूप से हिंदी भाषायी समाज को अभिव्यक्त किया गया है। जितने पात्र हैं सभी हिंदी एवं अंग्रेजी में कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण का प्रयोग करते हैं।

इन कथनों एवं संदर्भों के माध्यम से पटना का समाज एवं भाषायी समाज को 'रेणु' ने अपने उपन्यास में चित्रित किया है। उपन्यास के कई पात्र जैसे अंजू, मंजू, विभा, गौरी, ज्योत्सना, मिस्टर आनंद, चंद्रमोहिनी, बागे आदि अपने कथन के माध्यम से अपने सामाजिक, शैक्षणिक और पारिवारिक पहचान दर्ज कराते हैं। इन सबों की भाषा की अपनी पहचान है पर इनके भाषायी समाज को कोई एक नाम दे पाना कठिन है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि फणीश्वरनाथ रेणु का कथा क्षेत्र अविभाज्य पूर्णिया है। यह क्षेत्र कई भाषायी क्षेत्रों से घिरा है जिसकी चर्चा अध्याय के प्रारंभ में की गयी है। भाषा भूगोल के विश्लेषण के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि रेणु के उपन्यासों में क्यों कई भाषायी समाजों की अभिव्यक्ति हुई है। अनेक भाषायी समाजों की उपस्थिति इस परिवेश की बहु सांस्कृतिकता और बहुभाषिकता को जन्म देती है; इसकी भी चर्चा की गयी है।

'रेणु' के उपन्यासों को अगर भाषायी समाज की दृष्टि से देखा जाए तो हिंदी में अन्य कहीं भी इस तरह की विविधता नहीं मिलती। 'रेणु' ने जहाँ भी जिस भाषा का प्रयोग किया है वह अपने आप में पूर्ण एवं पात्रानुकूल है। कहीं भी ऐसा नहीं लगता कि 'रेणु' ने अपनी भाषायी ज्ञान के प्रदर्शन के लिए इन भाषाओं का प्रयोग किया है। 'रेणु' के सभी उपन्यासों में बाँगला भाषायी समाज उपस्थित है। इसका एकमात्र कारण उपन्यासों में इस तरह के पात्रों का उपस्थित होना है। पहले कहा जा चुका है कि 'रेणु' का मूल उद्देश्य उस अंचल को सजीवता में प्रकट करना था इसलिए इन्होंने पात्र एवं परिवेश की आवश्यकता के अनुसार बाँगला, नेपाली, अंग्रेजी, संथाली, मैथिली, अंगिका, मगही, भोजपुरी का प्रयोग किया।

'रेणु' के भाषा प्रयोग का एक महत्वपूर्ण तथ्य जो इनके प्रत्येक उपन्यास में दिखाई पड़ता है, वह यह कि इनका प्रत्येक पुलिस या सिपाही पात्र भोजपुरी में ही संवाद करता है चाहे वह 'मैला आँचल' का सिपाही हो या 'परती:परिकथा' का रामपखारन सिंह। दोनों भोजपुरी ही बोलते हैं। इसी तरह घर के अंदर काम करने वाले नौकर एवं दासी प्राय: मैथिली बोलते हैं। 'मैला आँचल' में सोबिया, 'परती : परिकथा' में जिबछी और पुतली, 'पलटू बाबू रोड' में बौवन झा रसोइया एवं रामटहल। भाषा के द्वारा चरित्र निर्माण की यह विशेषता हिंदी में अन्यत्र दुर्लभ है। ऐसा कर 'रेणु' सिर्फ पात्र ही नहीं रचते बल्कि समाज

की मानसिकता को भी अभिव्यक्त करते हैं। अतः कहा जा सकता है कि 'रेणु' के उपन्यासों में आवश्यकतानुरूप हिंदी, बाँगला, नेपाली, अंग्रेजी, मैथिली, भोजपुरी, मगही, अंगिका, संथाली, आदि भाषायी समाज की अभिव्यक्ति हुई है। किसी भी उपन्यास में प्रयुक्त कोई भी भाषायी समाज चित्रण की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए किया गया है। समाजभाषाविज्ञान की दृष्टि से इनके उपन्यासों में भाषायी समाज की अभिव्यक्ति अत्यंत सहज एवं प्रामाणिक ढंग से हुई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

---

[1] रेणु फणीश्वरनाथ, *मैला आँचल*, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, आठवां संस्करण (पेपरबैक्स) : 1992, नौवीं आवृत्ति : 2004, पृ.सं. 5

[2] रेणु फणीश्वरनाथ, *परती : परिकथा*, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली- 110002, चौथा संस्करण (पेपरबैक्स) : 2009, दूसरी आवृत्ति : 2012, पृ.सं. 11

[3] रेणु फणीश्वरनाथ, *पल्टू बाबू रोड,* (रेणु रचनावली, तीसरा खंड, संपा. भारत यायावर), राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली- 110002, तृतीय संस्करण (पेपरबैक्स) : 2007, पृ.सं. 34

[4] भाटिया कैलाशचन्द्र, *भाषा भूगोल*, उत्तर प्रदेश शासन, राजर्षि पुरषोत्तमदास टंडन हिंदी भवन, महात्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ, प्रथम संस्करण : 1973, पृ.सं. 290-291

[5] Grierson G.A. (ed.), *Linguistic Survey of India, Vol. 5 (Part 2), Indo Aryan Family (Eastern Group) Specimens of the Bihari and Oriya Language,* Low Price Publication, Delhi 110052, Pg. 4

[6] The language of the greater part of the Purnia district closely resembles the south with which we have just dealing. East of the Mahananda. however the bulk of population speak a form of northen Bengali, which has already been described, under the head of the language. we may therefore, say that Maithili is the language of centrel and western Purnea, as contrasted with the Bengali of the east of the district. Over this tract, and specialy in the west people of the Brahman cast speak pure standard Maithili simillar to what is spoken in North Darbhanga, and in the Supaul Subdivision of Bhagalpur.....The corrupt Maithili which is illustrated by the following specimens is spoken by the illiterate classes throughout the center and west of the district, and, even to the east of the River Mahananda by Hindus. The Bengali of the east of the district is principally spoken by Mohammdans. This corrupt form of Maithili is locally known as Gaowari or the village dialect. If it desired to give it a more defined name, we may call it Eastern Maithili, do, pg. 86

[7] रेणु फणीश्वरनाथ, *मैला आँचल*, पृ.सं. 19

[8] वही, पृ.सं. 63
[9] वही, पृ.सं. 136
[10] वही, पृ.सं. 312
[11] वही, पृ.सं. 312
[12] वही, पृ.सं. 110
[13] वही, पृ.सं. 18
[14] वही, पृ.सं. 249
[15] वही, पृ.सं. 282
[16] वही, पृ.सं. 286
[17] वही, पृ.सं. 295
[18] वही, पृ.सं. 295
[19] वही, पृ.सं. 269
[20] वही, पृ.सं. 217
[21] वही, पृ.सं. 304
[22] वही, पृ.सं. 59
[23] वही, पृ.सं. 92
[24] वही, पृ.सं. 141
[25] वही, पृ.सं. 281
[26] वही, पृ.सं. 23
[27] वही, पृ.सं. 130
[28] वही, पृ.सं. 134
[29] वही, पृ.सं. 293
[30] वही, पृ.सं. 136
[31] वही, पृ.सं. 283
[32] वही, पृ.सं. 103
[33] वही, पृ.सं. 192
[34] वही, पृ.सं. 78
[35] वही, पृ.सं. 293
[36] रेणु फणीश्वरनाथ, *परती : परिकथा,* पृ.सं. 21
[37] वही, पृ.सं. 43
[38] वही, पृ.सं. 46

[39] वही, पृ.सं. 61
[40] वही, पृ.सं. 62
[41] वही, पृ.सं. 62
[42] वही, पृ.सं. 63
[43] वही, पृ.सं. 136
[44] वही, पृ.सं. 327
[45] वही, पृ.सं. 137
[46] वही, पृ.सं. 96
[47] वही, पृ.सं. 269
[48] वही, पृ.सं. 274
[49] वही, पृ.सं. 274
[50] वही, पृ.सं. 275
[51] वही, पृ.सं. 291
[52] वही, पृ.सं. 275
[53] वही, पृ.सं. 251
[54] वही, पृ.सं. 314
[55] वही, पृ.सं. 80
[56] वही, पृ.सं. 147
[57] वही, पृ.सं. 148
[58] वही, पृ.सं. 147
[59] वही, पृ.सं. 45
[60] वही, पृ.सं. 143
[61] वही, पृ.सं. 251
[62] वही, पृ.सं. 229
[63] वही, पृ.सं. 77
[64] वही, पृ.सं. 205
[65] वही, पृ.सं. 215
[66] वही, पृ.सं. 217
[67] वही, पृ.सं. 217
[68] वही, पृ.सं. 217
[69] वही, पृ.सं. 218

[70] वही, पृ.सं. 220

[71] वही, पृ.सं. 220

[72] वही, पृ.सं. 220

[73] वही, पृ.सं. 221

[74] वही, पृ.सं. 221

[75] वही, पृ.सं. 280

[76] वही, पृ.सं. 280

[77] वही, पृ.सं. 313

[78] वही, पृ.सं. 316

[79] वही, पृ.सं. 330

[80] वही, पृ.सं. 330

[81] रेणु फणीश्वरनाथ, *पल्टू बाबू रोड* (रेणु रचनावली खंड 3, संपा. भारत यायावर), पृ.सं. 23

[82] वही, पृ.सं. 25

[83] वही, पृ.सं. 31

[84] वही, पृ.सं. 39

[85] वही, पृ.सं. 43

[86] वही, पृ.सं. 47

[87] वही, पृ.सं. 57

[88] वही, पृ.सं. 57

[89] वही, पृ.सं. 68

[90] वही, पृ.सं. 82

[91] वही, पृ.सं. 82

[92] वही, पृ.सं. 49

[93] वही, पृ.सं. 94

[94] वही, पृ.सं. 97

[95] वही, पृ.सं. 40

[96] वही, पृ.सं. 86

[97] वही, पृ.सं. 86

[98] वही, पृ.सं. 88

[99] रेणु फणीश्वरनाथ, *कितने चौराहे* (रेणु रचनावली, खंड 3, संपा. भारत यायावर), पृ.सं. 237

[100] वही, पृ.सं. 237

[101] वही, पृ.सं. 235

[102] वही, पृ.सं. 267

[103] वही, पृ.सं. 279

[104] वही, पृ.सं. 279

[105] वही, पृ.सं. 289, 291

[106] वही, पृ.सं. 314

[107] वही, पृ.सं. 241

[108] वही, पृ.सं. 347

[109] वही, पृ.सं. 263

[110] रेणु फणीश्वरनाथ, *जुलूस*, भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली 110003, आठवाँ संस्करण : 2010, पृ.सं. 11

[111] वही, पृ.सं. 9

[112] वही, पृ.सं. 11

[113] वही, पृ.सं. 13

[114] वही, पृ.सं. 53

[115] वही, पृ.सं. 57

[116] वही, पृ.सं. 60

[117] वही, पृ.सं. 61

[118] वही, पृ.सं. 94

[119] वही, पृ.सं. 95

[120] वही, पृ.सं. 110

[121] वही, पृ.सं. 110

[122] वही, पृ.सं. 113

[123] वही, पृ.सं. 123

[124] वही, पृ.सं. 128

[125] वही, पृ.सं. 128

[126] वही, पृ.सं. 133

[127] वही, पृ.सं. 97

[128] वही, पृ.सं. 99

[129] रेणु फणीश्वरनाथ, दीर्घतपा, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, प्रथम संस्करण (पेपर बैक्स) : 2008, दूसरी आवृत्ति : 2012, पृ.सं. 32

[130] वही, पृ.सं. 80

[131] वही, पृ.सं. 143

चतुर्थ अध्याय

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में चित्रित बहुभाषिकता, कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण

❖ **<u>फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में चित्रित बहुभाषिकता, कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण</u>**

- बहुभाषिकता
- 'मैला आँचल' में चित्रित बहुभाषिकता
- 'परती : परिकथा' में चित्रित बहुभाषिकता
- 'दीर्घतपा' में चित्रित बहुभाषिकता
- 'जुलूस' में चित्रित बहुभाषिकता
- 'कितने चौराहे' में चित्रित बहुभाषिकता
- 'पल्टू बाबू रोड' में चित्रित बहुभाषिकता

❖ **'रेणु' के उपन्यासों में प्रयुक्त कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण**

- आयातित शब्द
- 'मैला आँचल' में प्रयुक्त कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण
- 'परती : परिकथा' में प्रयुक्त कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण
- 'दीर्घतपा' में प्रयुक्त कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण
- 'जुलूस' में प्रयुक्त कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण
- 'कितने चौराहे' में प्रयुक्त कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण
- 'पल्टू बाबू रोड' में प्रयुक्त कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में चित्रित बहुभाषिकता, कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण

बहुभाषिकता, कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण समाजभाषाविज्ञान के महत्वपूर्ण उपकरण हैं। समाजभाषावैज्ञानिकों ने इन उपकरणों के माध्यम से भाषा के अध्ययन-विश्लेषण को एक नया आयाम प्रदान किया है। इन टूल्स (उपकरणों) की सहायता से भाषा अध्ययन के नए आयाम उभर कर सामने आए हैं। समाज, भाषा के लिए प्रयोगशाला का काम करता है। पहले की तुलना में आज व्यक्ति और समाज का आपसी मेल-जोल बढ़ा है। इससे भाषायी संपर्क भी दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है। भाषायी संपर्क के कारण भाषा की वाह्य एवं आंतरिक संरचना में लगातार परिवर्तन हो रहे हैं। इस भाषायी मेलजोल ने भाषा और भाषायी समाज को अनेक प्रकार से प्रभावित किया है। बहुभाषिकता, कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण इन्हीं भाषायी मेलजोल के परिणाम या उत्पाद हैं।

बहुभाषिकता

जनसंचार एवं यातायात के माध्यमों के विकास ने पूरे विश्व को एक गाँव में बदल दिया है। आज मनुष्य किसी गाँव या देश की सीमा में आबद्ध नहीं है। कोई भी कहीं भी जा सकता है, रह सकता है और यह सब बहुत सहजता एवं सरलता से संभव हो रहा है। कोई भी व्यक्ति चाहे वह किसी भी देश, राज्य या भाषायी समाज का हो, वह कहीं भी अपने को आसानी से अभिव्यक्त कर पा रहा है। इस कथन की पुष्टि के लिए हम दुनियाँ के किसी भी विश्वविद्यालय के वातावरण को देख सकते हैं। हैदराबाद विश्वविद्यालय को अगर उदाहरण के रूप में देखें तो पायेंगे कि यहाँ कुछ दिनों तक साथ-साथ रहने के बाद बड़ी आसानी से एक भोजपुरी भाषी किसी तेलुगु भाषी से अपनी भाषा में संवाद स्थापित करने लगता है। कोई मलयालम भाषा-भाषी किसी हिंदी भाषायी समाज के सदस्य से अंग्रेजी में बात कर सकता है और हिंदी भाषा-भाषी उनसे हिंदी में बोलकर अपनी भावनाएँ

अभिव्यक्त कर लेता है। इस तरह, द्विभाषिकता की वजह से इनके बीच सम्प्रेषण में कोई बाधा नहीं पहुँचती। किसी तरह के अर्थबोधन की समस्या का सामना नहीं करना पड़ता है। यहाँ सम्प्रेषण की सुविधा का मूल कारण यह है कि ये सभी भाषायी समुदाय यहाँ पर लगातार सम्पर्क में हैं। लगातार सम्पर्क में होने की वजह से ये आपस में भाषा और संस्कृति का आदान-प्रदान एवं साझा करते रहते हैं। इस साझेदारी के कारण दोनों भाषाओं के शब्दों और अर्थों का आदान-प्रदान निरंतर होता रहता है। किसी उत्तर भारतीय भाषायी समाज को 'अन्ना' समझने में परेशानी नहीं होती और दक्षिण भारतीय भाषायी समाज के सदस्य 'साला' के संदर्भ को समझने में गलती नहीं करते।

समाजभाषाविज्ञान में भाषा व्यवहार की इस प्रवृत्ति को बहुभाषिकता कहते हैं। बहुभाषिकता के सैद्धांतिक पक्षों की चर्चा प्रथम अध्याय में विस्तार से की जा चुकी है। इस अध्याय में 'रेणु' के उपन्यासों में चित्रित बहुभाषिकता का अध्ययन एवं विश्लेषण किया जा रहा है।

तीसरे अध्याय में भाषायी समाज पर चर्चा करते हुए रेणु के उपन्यासों के कथा-क्षेत्र के भाषायी भूगोल का विस्तृत विवरण दिया गया है। भाषायी भूगोल के विश्लेषण से पता चलता है कि इस क्षेत्र में कई भाषायी समुदायों का आपसी संपर्क होता रहता है। कहने का अभिप्राय यह कि लगातार भाषायी संपर्क की स्थिति बनी रहती है। ऐसे में यह संभव है कि एक भाषायी समुदाय के लोग दूसरे भाषायी समुदाय के लोगों की बात को समझते हों, एक दूसरे के समक्ष अपने को सम्प्रेषित करने में सक्षम हों। यहाँ सम्प्रेषण की कई स्थितियाँ हो सकती हैं, मसलन कुछ लोग एक दूसरे की भाषा समझ लेते हैं पर बोल नहीं पाते, कुछ लोग समझते हैं पर धाराप्रवाह बोल नहीं पाते और कुछ लोग आसानी से समझते भी हैं और धाराप्रवाह बोल भी लेते हैं। इन सभी स्थितियों में एक बात सामान्य है

कि ये सभी भाषायी समुदाय एक दूसरे की भाषा को समझते हैं और यह समझना ही बहुभाषिकता की न्यूनतम शर्त है।

प्रथम अध्याय में बहुभाषिकता की चर्चा करते हुए कहा गया है कि बहुसांस्कृतिकता, बहुभाषिकता के प्रमुख कारणों में से एक है। शिक्षा भी एक महत्वपूर्ण कारण है जिसकी चर्चा डी० पी० पटनायक, दिलीप सिंह और रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के हवाले से प्रथम अध्याय में की जा चुकी है। जब हम बहुभाषिकता के निकष पर रखकर 'रेणु' के उपन्यासों की पड़ताल करते हैं तो इसमें चित्रित बहुभाषिकता के दो महत्वपूर्ण कारण हमारे सामने आते हैं; बहुसांस्कृतिकता और शिक्षा। रेणु का कथा-क्षेत्र तीन देशों की सीमा से जुड़ा है। इन तीनों देशों की सीमा के नियम अन्य देशों की सीमा से थोड़ा उदार हैं; जिस वजह से इन सीमाओं से लगे गाँवों में एक दूसरे का आना-जाना एवं परस्पर रिश्तेदारी बहुत ही सामान्य बात है। परिणामत: सांस्कृतिक आदान-प्रदान भी होता रहता है। इस सांस्कृतिक आदान-प्रदान की वजह से भाषायी साझेदारी बनी हुई है। शिक्षा के प्रति जागरूकता के कारण और राजनीतिक कारणों से अंग्रेजी का प्रचलन पूरे देश और दुनियाँ में है। इसके असर से रेणु का समाज भी नहीं बच सका है। इन सभी पक्षों का चित्रण रेणु के उपन्यासों में हुआ है।

'मैला आँचल' में चित्रित बहुभाषिकता

''मैला आँचल'' में विभिन्न पात्रों के संवादों के विश्लेषण से पता चलता है कि हिंदी भाषायी समाज के अलावा करीब आठ भाषायी समुदाय भोजपुरी, मैथिली, अंगिका, मगही, बाँगला, अंग्रेजी, नेपाली और संथाली भाषायी समुदाय पूर्ण या आंशिक रूप से उपस्थित हैं। उदाहरण के लिए इन कथनों पर विचार किया जा सकता है -

भगवान भगत :*" "हँ - हँ - ख्! के सुमरित भाई?" .....अरे! ई बुखार त जान लेके छोड़ी। का बात वा?"*

सुमरितदास : *"बात का बा! .....इसपी साहेब मिटिन बुला रहे हैं, सबों को..... हाँ सिपाही जी को पाँच पाकिट दिया, उसका भी पैसा लोगे?"*

भगवान भगत :*"अरे हम का हुकुम के बाहर बानी! ....चलीं हम आबातानी"*

गोरखा मलेटरी :*ऊँह! नहीं! हम मुफ्त में नहीं लेगा। काहे लेगा? हम पैसा तीरकर चुरुट लेगा.....काहे लेगा?" "*[1]

इस वार्तालाप में तीन भाषायी समुदाय के लोग आपस में बात कर रहे हैं। भगवान भगत भोजपुरी भाषायी समूह का सदस्य है। गोरखा मिलेट्री नेपाली भाषा भाषी है और सुमरितदास मेरीगंज का स्थानीय सदस्य है। भगवान भगत मेरीगंज का एक दूकानदार है। गोरखा मिलेट्री उससे बार-बार कह रहा है कि वह इसी देश का है पर उसके भाषायी व्यवहार में नेपाली के शब्द, ***'चुरुट'*** (सिगरेट) और ***'तीरकर'*** (चुकाकर) का प्रयोग हो रहा है। सुमरितदास की भाषा पूर्णिया अंचल की भाषा है। इस वार्तालाप में सभी एक दूसरे की भाषा समझते हैं और प्रतिउत्तर भी दे रहे हैं पर इसके कई स्तर हैं। भगवान भगत इन दोनों की भाषा समझता है पर वह जवाब भोजपुरी में ही देता है। उपन्यास में अन्यत्र भी वह भोजपुरी में ही बोलता पाया गया है। सुमरितदास की भाषा लगभग सभी जगह खड़ी बोली हिंदी है पर कहीं-कहीं वह गँवई हिंदी का प्रयोग करता है। ऊपर के उदाहरण में सुमरितदास ने हिंदी और भोजपुरी दोनों तरह के संवादों का प्रयोग किया है। सिपाही हिंदी और भोजपुरी समझ रहा है पर व्यवहार में नेपाली और हिंदी दोनों भाषाओं के शब्दों का प्रयोग कर रहा है, पर वाक्य संरचना हिंदी की है। अभिप्राय यह कि कई भाषायी समुदाय संवादों में अपनी क्षेत्रीय या मातृभाषा का प्रयोग कर रहे हैं पर इनके शब्द भंडार में इतनी साम्यता है कि ये एक-दूसरे की भाषा समझते हैं। 'मैला आँचल' की बहुभाषिकता को उपर्युक्त उदाहरण से समझ सकते हैं। इसके अतिरिक्त भी कई पात्र हैं मसलन बावनदास, गांगुली, प्रशांत, विश्वनाथ प्रसाद, आभारानी, रामकिसुन बाबू, राजनीतिक पार्टी के कुछ

कार्यकर्ता और कुछ ग्रामीण जो कई भाषाओं का व्यवहार करते हैं। बामनदास, आभारानी और गांगुली जी के संवादों को भी बाँगला-हिंदी बहुभाषिकता के उदाहरण के रूप में देख सकते हैं -

आभारानी : " *"भगवान आज थेके तोमाय रोज एक गिलास ऐई रस, आर रात्रे दूध खेते हबे।"*

बावनदास : *"गांगुली जी ! आप माँ को समझा दीजिए। मैं व्रत तोड़ नहीं सकता। कल माया ने.....!"*

गांगुली जी : *भगवानेर व्रत-भंग हउबा असंभव। कारण गुरुतर। तबे आपनार भाग्य भालो जे बेचारा के सूरदासेर कथा मने पड़े नि, नईले एतखन भगवानेर चोख थकतो ना।"* [2]

ऊपर के संवादों में आभारानी और गांगुली के संवाद बाँगला में हैं और बावनदास हिंदी में बोल रहा है। गांगुली आभारानी से बाँगला में बात करता है पर बावनदास उनसे हिंदी में बात कर रहा है। इससे स्पष्ट होता है कि गांगुली हिंदी और बाँगला दोनों जानते हैं। उपन्यास में एक जगह नेहरु और गांगुली के बीच अंग्रेजी में भी वार्तालाप हुआ है।

नेहरु : " *"आई रिमेंबर दिन नेम ऑफ दैट बुक।"*

गांगुली : "*किंग ऑफ दि गोल्डन रिवर।"* [3]

इन संवादों से यह प्रमाणित होता है कि गांगुली अंग्रेजी भी जानते हैं। उपन्यास के अंत में एक जगह बावनदास का संवाद भोजपुरी में है -

रामबुझावन सिंह : *"दास जी हमारा क्या कसूर! आप तो जानते ही हैं..... "*

बावनदास : *सिंध जी बातचीत कुछ नहीं। गाड़ियाँ जाएँगी खगड़ा! .....लौटाइए।"*

रामबुझावन सिंह :*"गाड़ी त ना लौटी"*

बावनदास : *"लौटी न ता ठाढ़ रही"*[4]

ऊपर के संवाद में रामबुझावन सिंह और बावनदास के संवाद हिंदी और भोजपुरी दोनों भाषाओं में है। दोनों हिंदी और भोजपुरी का समान रूप से प्रयोग कर रहे हैं।

उपन्यास में सोबिया के सारे कथन लगभग मैथिली में हैं। पर उसके प्रति उत्तर या जिससे संवाद हो रहा है वे मैथिली का प्रयोग नहीं करते। उदाहरण के लिए तहसीलदार और सोबिया के इस वार्तालाप को देख सकते हैं -

तहसीलदार : " "*कौन आ रहा है? कौन? सोबिया? चुप! धीरे से! क्या?"*

सोबिया : *"ऊँ! बतहा! नाती भेलहौं।"*

तहसीलदार : "*चुप! जिंदा है या.....।"*

सोबिया : "*ऊँह! गुजुर गुजुर हेरैछै!" "*[6]

इस पूरे प्रसंग में तहसीलदार हिंदी में बोल रहे हैं और सोबिया के संवाद मैथिली में हैं। सोबिया बचपन से ही तहसीलदार की पत्नी के साथ रहती है एवं शादी के बाद तहसीलदार के यहाँ नौरी बनकर आई है। बहुत दिनों तक साथ रहने की वजह से दोनों अपनी-अपनी भाषा में बात करते हैं पर एक-दूसरे की भाषा को समझते भी हैं।

'मैला आँचल' में कुछ जगहों पर अंगिका, मगही और संथाली का भी प्रयोग हुआ है। ऐसी जगहों पर भी अलग-अलग भाषाओं में सम्प्रेषण हुआ है। इन जगहों पर रचनाकार ने अवश्यकतानुसार पर्याप्त स्वतंत्रता ली है। उदाहरण के लिए गांगुली, बावनदास दास और आभारानी के संवाद को देख सकते हैं। गांगुली जी बाँगला भाषी हैं। बाँगला में ***'व'*** ध्वनि के स्थान पर ***'ब'*** का प्रयोग होता है, क्योंकि इसमें ***'व'*** ध्वनि नहीं होती है। पर गांगुली जी 'भगवानेर' में ***'व'*** का प्रयोग करते हैं । यहाँ रचनाकार ने हिंदी पाठक को ध्यान में रखकर भाषायी प्रकृति की सीमा के परे जाकर सम्प्रेषण को महत्व दिया है। इसी प्रकार भोजपुरी या मगही के ***'त'*** के स्थान पर ***'तौ'*** का प्रयोग किया है -

भगवानदास : *"अरे ! ई **तौ** दस आदमी के काम बा,.....।"*[6]

भंडारी : *"रानीगंज के तीन गो मुरती **तो** आज सात दिन से .....।"*[7]

भोजपुरी और मगही दोनों में ***'तो'*** का प्रायः प्रयोग नहीं होता है परंतु यहाँ भी रेणु ने पाठक की रूचि को ध्यान में रखा है।

इस प्रकार *'मैला आँचल'* में चित्रित समाज को हम बहुभाषिक समाज कह सकते हैं। यहाँ का भाषायी समाज 'हाई डेंसिटी सोशल नेटवर्क' के तहत जुड़ा हुआ है। यहाँ प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे को जानता है और लगातार सम्पर्क में है। सभी अलग-अलग भाषायी समुदाय के सदस्य हैं पर सभी एक दूसरे की भाषा समझते और बोलते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि *'मैला आँचल'* का समाज एक बहुभाषिक समाज है जहाँ लोग बाँगला, हिंदी, भोजपुरी, मैथिली, अंगिका, नेपाली आदि भाषाओं को जानते समझते हैं।

'परती : परिकथा' में चित्रित बहुभाषिकता

'परतीः परिकथा' की पृष्ठभूमि वही है जो मैंला आँचल की है। भाषा की दृष्टि से देखा जाए तो यहाँ 'मैला आँचल' की तुलना में ज्यादा वैविध्यपूर्ण और परिमार्जित भाषा का प्रयोग हुआ है। इस उपन्यास की बहुभाषिकता अत्यंत स्पष्ट और सुलझी हुई है। इस उपन्यास में भी हिंदी, बाँगला, मैथिली, अंग्रेजी, भोजपुरी, नेपाली, मगही आदि भाषायी समाज को अभिव्यक्ति मिली है। यहाँ का समाज भी हाई डेंसिटी सोशल नेटवर्क के तहत जुड़ा है। इसलिए प्रत्येक भाषायी समाज का सदस्य एक दूसरे की भाषा को समझता है। इसके अनेक उदाहरण उपन्यास में बिखरे पड़े हैं। इसकी पुष्टि के लिए कुछ संवादों को देखा जा सकता है।

सुरपति राय : " "*आप क्यों तकलीफ....."*

जितेन्द्र : *"बैठिए। आपने रात में मेरी चाय की तारीफ की है, सुना। इसलिए, अभी आपको एक स्पेशल टी देने आ गया।.....रात में आपकी छींक सुन रहा था। गलती हुई, रात में ही आपको गार्गल के लिए गर्म पानी भेज देना*

उचित होता। खैर, यह स्पेशल टी है। रॉ टी में लेमन है, पाल्युड्रिन है और एक चम्मच रम है। जून की सरदी मैलेरिया की आगमनी समझी जाती है।..... वर्षा में कहीं भीगना पड़ा है। है न?...आइ नो!..... बाइ द वे आप वैष्णव तो नहीं?"

सुरपति राय : "*..जी नहीं, मैं मैथिल ब्रह्मण...../....../*"

जितेन्द्रनाथ : "*दिलबहादुर! चिया दियेर अलि रामपखारन सिंधलाय बुलाउ तऽऽ च्याँडे।*"

दिलबहादुर : *"होस! होस!"* [8]

ऊपर के वार्तालापों में जितेन्द्रनाथ के संवादों को देखा जाए तो इसमें कई परतें दिखाई पड़ती हैं। सुरपति राय एक शोधार्थी है। उसकी भाषा हिंदी है। उपन्यास में कहीं-कहीं इनके संवादों में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग किया गया है। इस वार्तालाप में सबसे ज्यादा विकल्पन जितेन्द्रनाथ की भाषा में दिखाई पड़ता है। ये सुरपतिराय से बात करते हुए हिंदी और अंग्रेजी का प्रयोग करते हैं, जबकि दिलबहादुर के साथ नेपाली और हिंदी का। इससे यह स्पष्ट होता है कि जितेन्द्रनाथ हिंदी, अंग्रेजी और नेपाली तीनों भाषाएँ जानते हैं। सुरपति राय मैथिल ब्रह्मण हैं और उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। चूँकि मैथिल ब्रह्मण हैं तो मैथिली जानता हो ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है। यद्यपि उपन्यास में कहीं भी इनके द्वारा मैथिली भाषा का प्रयोग नहीं किया गया है। बल्कि उद्धरण में और पूरे उपन्यास में भी कहीं-कहीं हिंदी और हिंदी मिश्रित अंग्रेजी का व्यवहार किया गया है। उपन्यास के द्वितीय परिवर्तन में इन्हें एक अनुवादक के रूप में प्रस्तुत किया गया है जहाँ ये मिस रोजउड के द्वारा संकलित लोक कथाओं को तथा उनकी जीवनी को अंग्रेजी से हिंदी में अनूदित कर रहे हैं। दिलबहादुर उपन्यास में कहीं हिंदी और कहीं नेपाली का प्रयोग करता है। नितांत भावुकता के क्षण में प्राय: नेपाली ही बोलता है। इस विवरण के आधार

पर कहा जा सकता है कि ये सभी पात्र बहुभाषिक हैं। जितेन्द्रनाथ बाँगला भी समझता और बोलता है जिसे हम इस प्रसंग में देख सकते हैं -

डॉ. रायचौधुरी : " *"दुलारी दाय नॅदी में गेहूँ का खेती होता है?"*

जितेन्द्रनाथ : *"होती है।"*

डॉ. रायचौधुरी : *"उ होता होती माफ कॅरेगा हॅमारा।"*

जितेन्द्रनाथ : *"आमार चोख बुझि कॅटा।"*

डॉ. रायचौधुरी : *"नेहीं हॅम क्या देखता है, सो बाद में बोलेगा। ..... तुमी पारबे! तुमी पारबे! तुमी जे निजेई एक बिरल वनस्पति!" "*[9]

इस उद्धरण में जितेन्द्रनाथ और डॉ. रायचौधुरी दोनों हिंदी और बाँगला भाषा का प्रयोग कर रहे हैं। हाँ, यहाँ भी डॉ. रायचौधुरी ने वनस्पति में ***'व'*** का प्रयोग किया है जो बाँगला भाषायी के लिए सटीक नहीं है। इन उद्धरणों के आधार पर कह सकते हैं कि डॉ. रायचौधुरी की हिंदी में बाँगला भाषायी समुदाय के सदस्यों की भाषा जैसी गंध आती है।

उपन्यास की कथावस्तु का लगभग एक तिहाई हिस्सा जितेन्द्रनाथ के पिता शिवेन्द्रनाथ और इनकी विदेशी पत्नी रोजउड उर्फ गीता की प्रेम कहानी पर केन्द्रित है। शिवेन्द्रनाथ मिश्र हिंदी, संस्कृत और अंग्रेजी के अच्छे जानकार हैं। वे रोजउड को संस्कृत पढ़ाते हैं। इनके संवाद कहीं अंग्रेजी में और कहीं हिंदी में हैं। कहीं-कहीं दोनों भाषाओं का मिश्रण एवं अंतरण हुआ है। रोजउड की भाषा भी इसी तरह की है।

रोजउड की माँ और घर में काम करने वाले नौकर नौकरानी भी प्राय: हिंदी और अंग्रेजी का व्यवहार करते हैं। हीरा मंडल बहुत दिनों से कोठी की दरबानी कर रहा है। कई अंग्रेज साहबों को अपनी सेवा दे चुका है। इसलिए साथ-साथ रहकर वह अंग्रेजी समझने लगा है और टूटी-फूटी अंग्रेजी बोल भी लेता है-

हीरा मंडल : "*भेरी भेरी बैड मेन। ओल्ड ईस्टेट दुश्मन। कम। कम हेयर अन्दर कोठी, ही वान्ट।*"[10]

पुतली रोजउड की कोठी में दायी का काम करती है। वह एक कन्वर्टेड क्रिश्चियन है। उपन्यास में उसके संवाद हिंदी और अंग्रेजी में हैं। एक जगह मिस रोजउड ने रेखांकित किया है कि वह पुतली से मैथिली सीख रही है।

पुतली : "झूमर! झूमर! हउ यू सिंग झूमर छोटी मेम?.....वेरी गुड!"[11]

रोजउड और उसकी माँ ने भारत में आकर हिंदी सीख ली है और अब ये दोनों क्रमश: मैथिली और भोजपुरी भी सीख रही हैं जिसका प्रमाण निम्नलिखित है -

शिवेन्द्र नाथ : " "*तो, पुतली भी पंडिताइन का काम करती है?*"

रोजउड : "*हाँ, वह मुझे मैथिली बोलना सिखलाती है। सुनिए तो! ..... अहाँ बड़ सुन्द्रड छि: दैट इज यू आर.....।*"

रोजउड की माँ : "*लेकिन मैं, गजराज सिंह सिपाय की बोली सीख रही हूँ - का हो? का बात हउ; हैलो व्हाट्स दि मैटर?*" "[12]

इस उद्धरण को देखने से पता चलता है की रोजउड और उसकी माँ एक साथ तीन भाषाओं क्रमशः हिंदी, मैथिली और अंग्रेजी तथा हिंदी, भोजपुरी और अंग्रेजी का प्रयोग करती हैं। इसके अतिरिक्त भी उपन्यास में ऐसे कई पात्र हैं जो कई भाषाएँ जानते हैं। गाँव में बहुत से पढ़े-लिखे लोग हैं। भारतीय समाज में प्राय: हम पाते हैं कि लोग घर-परिवार में अपनी मातृभाषा का प्रयोग करते हैं। सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवहार में किसी सम्पर्क भाषा का प्रयोग करते हैं और शिक्षा किसी तीसरी भाषा में ग्रहण करते हैं। भाषा-व्यवहार की ऐसी स्थिति बहुभाषिकता को जन्म देती है।

भारत सरकार ने 'तीन भाषा सूत्री' शिक्षा प्रणाली का प्रावधान किया है। इस प्रणाली ने भी भारतीय समाज को बहुभाषिक बनाने में एक ख़ास तरह की भूमिका निभाई है;

जिसकी चर्चा प्रथम अध्याय में की जा चुकी है। 'परती : परिकथा' के अन्य पात्र भी, जैसे भिम्मल मामा, गुरुड़धुज झा, लुत्तो, बीरभद्दर सिंह, इरावती, ताजमनी, भवेश, मकबूल, मलारी, प्रेम कुमार 'दीवाना', दीन दयाल तिवारी, अर्जुन लाल, मनमोहन आदि सैकड़ों ग्रामीण पात्र बहुभाषिक हैं। जो भी शिक्षित पात्र हैं वे हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं का व्यवहार करते हैं। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि 'परती : परिकथा' का समाज बहुभाषिक है।

'दीर्घतपा' में चित्रित बहुभाषिकता

'दीर्घतपा' का कथानक पटना के बाँकेपुर स्थित 'वर्किंग वीमेंस हॉस्टल' पर केन्द्रित है। हॉस्टल में नर्स की ट्रेनिंग लेने आई कुछ महिलाओं को छोड़कर शेष सभी पात्र शिक्षित हैं। शिक्षा का प्रभाव इनके संवादों में दिखाई पड़ता है। उपन्यास की नायिका बेला गुप्ता है। इनकी बहुभाषिकता का परिचय देते हुए सुखमय घोष कहता है -

सुखमय घोष : "*आगे, ऊ क्या है, क्या नेहीं है ये भॅगवान को भी नहीं मालूम। बाँकीपुर के लोगों का साथ में खांटी बाँकीपुरिया बोलती है। भोजपुरे से भी भोजपुरे के माफिक बोलती है। मैथली तो .....।*"[13]

सुखमय घोष के इस कथन से स्पष्ट है कि बेला गुप्त मगही, भोजपुरी और मैथिली जानती है। यहाँ बाँकीपुरिया का तात्पर्य मगही से है। पर उपन्यास में कहीं भी इन भाषाओं का प्रयोग बेला गुप्त के द्वारा नहीं किया गया है। इनके सभी संवाद लगभग मानक-हिंदी में हैं। कहीं-कहीं कूट-मिश्रण की झलक दिखाई पड़ती है जिसमें अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग हुआ है। 'वर्किंग वीमेंस हॉस्टल' की सेक्रेटरी श्रीमती ज्योत्स्ना आनंद, बागे, मि० आनंद, हॉस्टल में रहने वाली कामकाजी महिला रमा निगम, रेवा वर्मा, शिप्रा आदि सभी शिक्षित पात्र हैं। ये सभी अपने संवादों में हिंदी और अंग्रेजी का मिश्रण एवं अंतरण करते हैं। भाषा में कूट-मिश्रण और कूट-अंतरण का प्रयोग यह दर्शाता है कि ये सभी बहुभाषिक हैं। क्योंकि

कूट-मिश्रण और कूट-अंतरण के लिए बहुभाषिक होना अनिवार्य शर्त है। रामला मैसी, सुखमय घोष एवं अन्य कुछ पात्रों के संवाद में बाँगला का प्रभाव दिखाई पड़ता है जिसकी चर्चा तीसरे अध्याय में की गई है। ये लोग हिंदी जानते हैं। इनके संवाद प्राय: हिंदी में ही हैं। इस आधार पर कहा जा सकता है कि ये सभी पात्र बहुभाषिक हैं। उपन्यास की कथावस्तु में घटनास्थल पटना है और पटना बिहार की राजधानी है। प्राचीन काल से ही यह अत्यंत प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थल रहा है। इसलिए यहाँ लोग राज्य और देश के विभिन्न हिस्सों से आकर बसे हैं। इन कारणों से यहाँ बहुभाषा-भाषी समाज अपनी भाषायी अस्मिता के साथ उपस्थित है। इनके संवादों में मगही, भोजपुरी और मैथिली आदि भाषाओं के प्रयोग देखने को मिलते हैं।

'जुलूस' में चित्रित बहुभाषिकता

जुलूस की कथावस्तु का विषय पूर्वी पाकिस्तान (वर्तमान में बाँगलादेश) से आए शरणार्थियों के जीवन पर केन्द्रित है। ये सभी बाँगला भाषी हैं। ये पिछले पंद्रह वर्षों से भारत में शरणार्थी के रूप में रहते हुए कई शिविरों से गुजर कर पूर्णिया जिले के गोड़ियर गाँव में आए हैं। यहाँ इनके लिए एक अलग कॉलोनी बसायी गयी है जिसका नाम 'नबीनगर' है। नबीनगर में रहने वाले सभी सदस्य हिंदी और बाँगला का प्रयोग करते हैं। ये लोग पूर्णिया की क्षेत्रीय भाषा भी समझते हैं पर इसका कहीं कोई प्रमाण नहीं मिलता है। इनकी बहुभाषिकता के अनेक उदाहरण उपन्यास में बिखरे पड़े हैं। यथा :

हरलाल साहा : " *"सी हुति पारे ना.....कहाँ अपना देश और अपने देश की मिट्टी और अपने देश का चावल, और कहाँ इस अद्भुत देश का आजगुबी व्यापार..... पता नहीं तुमने क्या देखा है पोत्रादी! यहाँ की मछली में क्या वही स्वाद है जो 'पद्दा के इलिच' में.....?"*

पवित्रा : *"पूछती हूँ अपने गाँव में पद्दा का इलिच -माछ रोज खाते थे क्या?"* [144]

इस वार्तालाप में हरलाल साहा बाँगला और हिंदी दोनों भाषाओं में मिश्रण और अंतरण कर अपनी बात कह रहा है। कॉलोनी के अन्य लोग भी वहीं हैं। पवित्रा का संवाद हिंदी में है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ये सभी लोग बाँगला और हिंदी दोनों भाषाओं को समझते हैं। उपन्यास में अन्यत्र कई जगहों पर बाँगला और हिंदी में एक साथ संवाद हुए हैं जो इस समाज की बहुभाषिकता को प्रमाणित करता है। उपन्यास में ऐसे कई उदाहरण हैं जहाँ एक पात्र बाँगला में और दूसरा हिंदी में बोलता है पर सम्प्रेषण सफलतापूर्वक सम्पन्न हो रहा है। जैसे -

पवित्रा : " "*ए! पागलेर मत हाँसो केन?"*

नरेश : "*हँसना भी गुनाह?.....लाहौल!"*

पवित्रा : "*तुमी तोकार लाहौल - माहौल बन्द कोर्बे?"*

नरेश : "*आमि इंजिन बन्द कोर्लाम नामो!"*

पवित्रा : "*एखाने केन? इस धाँगल टोली में क्या है?"*

नरेश : "*एक वी.आई.पी. है यहाँ।"* [15]

इस कथोपकथन में पवित्रा बाँगला में अपना संवाद कह रही है और नरेश हिंदी में उसका उत्तर दे रहा है। एक जगह नरेश ने बाँगला का भी प्रयोग किया है। इसके अलावा नरेश का पवित्रा के साथ एक जगह अंग्रेजी में भी संवाद है। इससे यह स्पष्ट होता है कि ये दोनों बाँगला और हिंदी के अलावा अंग्रेजी भी जानते हैं।

इन पात्रों के अलावा गोड़ियर गाँव के भी कुछ पात्र हैं। वे भी बहुभाषिक हैं क्योंकि ये बाँगला समझते हैं, पर उसका कोई सटीक उदाहरण उपन्यास में नहीं है।

'कितने चौराहे' में चित्रित बहुभाषिकता

'कितने चौराहे' की कथावस्तु अररिया जिला स्कूल के कुछ छात्रों पर आधारित है। कथानक और घटनाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि बीसवीं शताब्दी के तीस या चालीस के दशक की किसी घटना को इस उपन्यास का आधार बनाया गया है या इसी काल को केन्द्र में रखकर इस उपन्यास की कल्पना की गई है। इस उपन्यास में शरबतिया, काका, मामी, कालू, मनमोहन के पिता एवं कुछ अन्य पात्रों को छोड़कर सभी पढ़े-लिखे हैं। ये पढ़े-लिखे लोग हिंदी और अंग्रेजी जानते हैं परंतु व्यवहार अधिकतर हिंदी का ही करते हैं। हेडमास्टर साहब और मनमोहन के पिता के बीच कुछ संवाद मैथिली में हुए हैं। हेडमास्टर साहब बाँगला भी जानते हैं। बहुभाषिकता के उदाहरण के रूप में इन प्रसंगों पर विचार किया जा सकता है-

हेडमास्टर : " "*नाम की?"*

मनमोहन : "*माइ नेम इज"*

हेडमास्टर : "*थामो बापू। हम अंग्रेजी में पूछा? ऐं? बोले?"*

मनमोहन : "*सर"*

हेडमास्टर : "*फिन अंग्रेजी?"*

मनमोहन के पिता : "*हुजूर! देहात का लड़का है। कभी शहर आया नहीं! अभी इसकी उम्र ही क्या....?"*

मनमोहन : "*महाशय, मेरा नाम मनमोहन राय है।"*

हेडमास्टर : "*ठीक, ऐसा माफिक बोलो!.....अहिंक बालक थीक?"*

मनमोहन के पिता : "*आब हमर नहि। अपनेहिक बालक।" "*[16]

ऊपर के वार्तालाप में हेडमास्टर साहब और मनमोहन के बीच हिंदी और अंग्रेजी के वाक्यों के माध्यम से संवाद हो रहा है। मनमोहन के पिता और हेडमास्टर साहब के बीच

संवाद मैथिली में हो रहा है। मनमोहन के पिता का संवाद हिंदी और मैथिली दोनों भाषाओं में है। अन्यत्र भी मनमोहन के पिता हिंदी का ही व्यवहार करते हैं। हेडमास्टर साहब ने दूसरे संवादों में हिंदी और बाँगला का प्रयोग किया है।

प्रियोदा उपन्यास का एक महत्वपूर्ण पात्र है। वह बाँगला भाषायी समाज का सदस्य है पर उपन्यास में हिंदी, अंग्रेजी और बाँगला तीनों भाषा के शब्दों, उपवाक्यों और वाक्यों का प्रयोग करता है।

प्रियोदा : *" "की रे मोना, बाबा बुझलो-ना तुई बुझली?" किसको.., किसने समझाया?"*

मनमोहन : "*बाबा तो समझ गए । मगर काका जरा देर से समझे। उन्होंने अब यहीं रहने का फैसला किया है। 'लम्बा ठाकुर' के होटल में रहेंगे।" "*[17]

इस तरह के अनेक उदाहरण पूरे उपन्यास में देखने को मिलते हैं। इसके अलावा अकरम सर, हफीज सर, इब्राहीम, रोबी, कालू आदि के अनेक संवाद हैं जिससे बहुभाषिकता का भान होता है। उपन्यास में और भी कई बंगाली पात्र हैं जैसे जेलर, कम्पाउंडर और कुछ शिक्षक भी जो बाँगला और हिंदी दोनों भाषाओं का प्रयोग करते हैं।

'पल्टू बाबू रोड' में चित्रित बहुभाषिकता

इस उपन्यास में स्वतंत्र भारत की राजनीति और समाज के नैतिक पतन को दिखाया गया है। कहानी के केन्द्र में 'बौरगाछी' गाँव का एक बंगाली परिवार है। यह तीन पीढ़ियों से इसी गाँव में रह रहा है। यह परिवार बहुत दिनों से यहाँ रह रहा है इसलिए अपनी मातृभाषा बाँगला के साथ-साथ हिंदी तथा यहाँ की क्षेत्रीय बोली मैथिली और अंगिका का मिश्रित रूप भी जानता है। जब ये सभी आपस में बात करते हैं तो उसमें दोनों भाषाओं का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। बहुभाषिकता की सबसे बड़ी विशेषता स्वभाविकता एवं सहजता है; जिसे यहाँ अत्यंत सफलतापूर्वक अभिव्यक्ति मिली है। उदाहरणार्थ -

बिजली : *" "आपनी माछ-मांस खान तो?"*

काकी माँ : "*केमन आछो, मुरली बाबू? मने आछे?.....माछ-मांस खाउन तो!*

मुरली : *हाँ काकी माँ!"*

काकी माँ : "*बिजू! तुम मुरली बाबू को चाय पिलाओ। मैं उधर देखू, घंटा क्यों....?"* ,,18

इन संवादों को देखने से पता चलता है कि बिजली और काकी माँ यहाँ बाँगला का प्रयोग कर रही हैं। काकी माँ हिंदी का भी व्यवहार करती हैं। मुरली मनोहर के संवाद केवल हिंदी में हैं। पर बाँगला में पूछे गए प्रश्नों का उत्तर हिंदी में दे रहा है। अत: ये तीनों पात्र बाँगला और हिंदी जानते हैं। उपन्यास में अन्यत्र भी काकी माँ बाँगला और हिंदी का प्रयोग करती हैं। बिजली इस उपन्यास की प्रधान नायिका है। शिक्षित है इसलिए हिंदी और बाँगला के अतिरिक्त अंग्रेजी भी जानती है; जिसका संदर्भ एक कार्यालयी पत्र को टाइप करते समय आया है। मुरली मनोहर मेहता कांग्रेस पार्टी का नेता है। वह भी बाँगला और हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी भी जानता है।

कुछ और भी पात्र हैं जैसे पल्टू बाबू, लट्टू बाबू, छोगमल, घंटा, फेला, रामा, छबि, काना, कुन्तला, रामटहल, बौवन झा (ठाकुर), अनुप सान्याल आदि। इनमें रामटहल और बौवन झा फूलबागान का नौकर है। उपन्यास में इनके संवाद मैथिली, हिंदी और बाँगला तीनों भाषाओं में है, पर मूलत: ये दोनों मैथिली भाषायी समाज के सदस्य हैं। बहुत दिनों से फूलबागान में काम कर रहे हैं इसलिए बाँगला भी जानते-समझते और बोलते हैं। उदाहरण के लिए इन संवादों को देख सकते हैं -

काकी माँ : " "*तोमार सासुर बाड़िर लोक सब चले गैछे?"*

रामटहल : "*अपने हाथ से जुठा पत्ता उठाया है, दीदी ने।"*

बैवन झा : "*दीदी! चौकाघर में किसी दिन खिलाने की कृपा नै करब! हाथ जोड़े छी!*"

"19

ऊपर के तीनों पात्र तीन अलग-अलग भाषाओं का प्रयोग कर रहे हैं। काकी माँ, बाँगला, रामटहल हिंदी और बौवन झा मैथिली, पर सम्प्रेषण में कोई बाधा नहीं पहुँच रही है। यही बहुभाषिकता है जहाँ बहुभाषा-भाषी समाज के सदस्य आपसी वार्तालाप में अपने कम्फर्ट जोन की भाषा का प्रयोग करते हैं पर सम्प्रेषण की स्वाभाविकता कहीं भी बाधित नहीं होती।

उपन्यास में और भी अनेक ऐसे प्रसंग हैं जहाँ पर पात्र कई भाषाओं में संवाद स्थापित करते हैं और अर्थबोधन में कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती। इसका सबसे महत्वपूर्ण कारण यह है कि ये सभी एक साथ बहुत दिनों से रह रहे हैं। साथ ही इन सभी भाषाओं में एक तरह की समानता है। बहुत से शब्द थोड़े हेर-फेर के साथ एक तरह से प्रयोग किए जाते हैं। सफल सम्प्रेषण का दूसरा महत्वपूर्ण कारण है इन भाषाओं की सांस्कृतिक समानता। जितने भी भाषायी समाज इस उपन्यास में आए हैं उनमें एक तरह की सांस्कृतिक एकरूपता है। आपसी सम्पर्क के कारण सांस्कृतिक साझेदारी भी लगातार होती रहती है। जीवन शैली एवं रहन-सहन में कोई खास फर्क नहीं है। यही कारण है कि ये सभी एक-दूसरे की भाषा को आसानी से समझ पाते हैं।

'बहुभाषिकता' की दृष्टि से देखें तो, रेणु के उपन्यासों में इसका उत्तरोत्तर विस्तार हुआ है। '*मैला आँचल*' से लेकर *'पल्टू-बाबू रोड'* तक उत्तरोत्तर इसका ग्राफ बढ़ता ही गया है। '*मैला आँचल*' में कई भाषायी समुदायों का प्रतिनिधित्व अवश्य है पर उनके बीच आपसी सम्पर्क बहुत कम है। यह सम्पर्क *'परती : परिकथा'* में आकर विस्तृत हो जाता है। यहाँ अनेक भाषायी समुदाय खुलकर अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करते हैं। एक साथ कुछ पात्र हिंदी, अंग्रेजी, नेपाली का प्रयोग करते हैं। कई ऐसे पात्र हैं जो नेपाली और

अंग्रेजी आसानी से समझ लेते हैं। कई पात्रों ने मैथिली और भोजपुरी का भी प्रयोग किया है। शिक्षा का औसत यहाँ *'मैला आँचल'* से कई गुना ज्यादा है इसलिए भाषायी प्रयोगों की विविधता भी उतनी ही है। *'दीर्घतपा'* और *'कितने चौराहे'* की कथावस्तु सीमित है इसलिए यहाँ इसको ज्यादा विस्तार नहीं मिला है, फिर भी इसे कुछ संदर्भों में देखा जा सकता है। बहुभाषिकता का सबसे सघन और प्रायोगिक स्वरूप *'जुलूस'* और *'पल्टू बाबू रोड'* में देखने को मिलता है। भाषायी विविधता और बहुभाषिक प्रयोग की सार्थकता जितनी इन दोनों में देखने को मिलती है उतनी हिंदी साहित्य में अन्यत्र शायद ही मिले। अत: हम कह सकते हैं कि 'रेणु' के उपन्यासों में चित्रित बहुभाषिकता अत्यंत स्वाभाविक और सहज है। बहुभाषिकता के कारण इन उपन्यासों में कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण के प्रयोगों की बहुलता है जिसकी चर्चा आगे की जाएगी। ऊपर के प्रसंगों में ज्यादा उदाहरण देने से बचा गया है क्योंकि कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण के प्रसंग में भी इन उदाहरणों को प्रस्तुत किया गया है।

रेणु के उपन्यासों में चित्रित कूट-मिश्रण एवं कूट अंतरण

प्रथम अध्याय में कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण का विस्तृत विवरण दिया गया है। यहाँ रेणु के उपन्यासों में प्रयुक्त कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण पर विचार किया जा रहा है। इससे पहले कि रेणु के उपन्यासों में प्रयुक्त कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण पर विचार किया जाए, कुछ बातों को दोहराना अनिवार्य होगा।

कूट-मिश्रण और कूट-अंतरण पर विचार करते हुए कहा जा चुका है कि वार्तालाप में जब दो या दो से अधिक भाषाओं के शब्दों या पदों का प्रयोग एक ही वाक्य में किया जाय तो इसे कूट-मिश्रण (Code Mixing) कहते हैं, पर जब वार्तालाप में एक वाक्य किसी एक भाषा का और दूसरा वाक्य किसी दूसरी भाषा का एक साथ प्रयोग किया जाय तो भाषा-व्यवहार की ऐसी घटना कूट-अंतरण (Code Switching) कहलाती है। दूसरे शब्दों में कहें

तो कह सकते हैं कि कूट-मिश्रण शब्दों के स्तर पर होता है अर्थात् व्याकरणिक संरचना एक ही भाषा की रहती है पर शब्द किसी दूसरी भाषा के भी प्रयोग किए जाते हैं, वहीं कूट-अंतरण वाक्य के स्तर पर होता है जहाँ एक वाक्य की व्याकरणिक व्यवस्था किसी एक भाषा की होती है और दूसरे वाक्य की व्याकरणिक व्यवस्था किसी दूसरी भाषा की। कूट-मिश्रण की प्रकृति कुछ-कुछ पिजिन से मिलती है, जिस तरह पिजिन को संकर-भाषा (Hybrid Language) कहा जाता है उसी तरह कूट-मिश्रण को भी संकर भाषा कहा जा सकता है। पर इसे पिजिन नहीं कहा जा सकता। कारण यह कि पिजिन में जिन दो या दो से अधिक भाषाओं के शब्दों या पदों का प्रयोग किया जाता है वह वक्ता या श्रोता के सम्प्रेषण की मजबूरी की वजह से है परंतु कूट-मिश्रण का प्रयोग बहुभाषिकता के कारण होता है। पिजिन प्रयोक्ता की मातृभाषा नहीं होती, बल्कि किसी मजबूरी के कारण प्रयोग की जाती है जबकि code mixing एक स्वाभाविक प्रक्रिया है जो वार्तालाप में स्वत: ही घटित होती है। फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों में कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण का जो भी रूप हमें देखने को मिलता है वह अत्यंत ही स्वाभाविक, सहज एवं पात्रानुकूल है, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण पर विचार करने से पहले Borrowed Word या Loan Word पर प्रकाश डालना जरूरी है क्योंकि Borrowed या Loan Word के प्रयोग को Code Mixing नहीं माना जाता है।

आयातित शब्द (Borrowed Words)

जब किसी भाषा का कोई शब्द किसी सामाजिक-सांस्कृतिक कारणों से किसी दूसरी भाषा के शब्द भंडार का हिस्सा बन जाता है या किसी दूसरी भाषा में स्वीकार कर लिया जाता है तो इस घटना को Borrowing और ऐसे शब्द को Borrowed Word कहा जाता है। ऐसे शब्द अपनी भाषा में जिस तरह मूल शब्द के रूप में स्वीकृत किए जाते हैं वैसे ही

ग्रहीत भाषा में भी स्वीकृत किए जाते हैं। इसे Loan Word भी कहा जाता है। हिंदी में ऐसे शब्दों को 'आयातित शब्द' कहा जा सकता है। इस तरह के शब्दों में मुख्य रूप से "खान-पान से संबंधित शब्द, पेड़-पौधों के नाम, किसी संख्या से जुड़े शब्द, संगीत से जुड़े शब्द आदि होते हैं।"[20] हिंदी में ऐसे अनेक शब्द अंग्रेजी एवम् अरबी-फारसी के हैं जिसे अब हम हिंदी के भी मानते हैं, मसलन स्कूल, रेल, बटन, इजाजत, इंतजार, मुशायरा, पैंट, कोर्ट, बैट, पब्लिक, प्लेयर आदि। हिंदी ही नहीं दुनियाँ की सभी भाषाओं ने कई भाषाओं से शब्दों को आयातित किया है। शब्दों के आयातित होने के पर्याप्त कारण होते हैं जिसे हम ऐतिहासिक संदर्भों को सामने रखकर देख सकते हैं।

हम जानते हैं कि मध्यकाल में भारत में मुगलों का शासन था। उस समय यहाँ की राजकाज की भाषा फारसी थी जिसके कारण यहाँ अरबी-फारसी के शब्द आए। आगे चलकर 19वीं शताब्दी से लेकर 20वीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक अंग्रेजों का शासन रहा। उस समय देश में राजकाज की भाषा अंग्रेजी थी। इस कारण अंग्रेजी के शब्द यहाँ के शब्द भंडार का अनिवार्य हिस्सा बन गये।

कूट-मिश्रण पर विचार करते हुए आयातित शब्दों का विशेष ध्यान रखना चाहिए। अंग्रेजी एवं अरबी-फारसी के ऐसे अनेक आयातित शब्द हैं जिसका प्रयोग 'रेणु' के पात्र अपने संवादों में करते हैं, मसलन *पबलिक, हुजूर, सर, सर्किल, तामील, मेम्बर, डिस्ट्रीक बोर्ड, मलेरिया सेंटर, लीडर, ऑफिसर, कलक्टर, अस्पताल, स्टेट, सर्वे, नोटिस, शिकायत, कपड़ा, पुर्जी, बिलेक, मैनेजर, इलाका, रैली, मिस्टर, जुलूस, थाना, औडर, रेडियो, पार्टी, सिगरेट, बिस्कुट, मिटिन, सिग्नल, दुशमन, मिलेटरी, रिपोर्ट, मिजाज* इत्यादि। ये सभी शब्द अब हिंदी शब्द-भंडार का हिस्सा हैं। कूट-मिश्रण में एक बात और भी ध्यान देनी चाहिए कि Borrowed Words में कुछ ऐसे भी शब्द हैं, जिनका अनूदित रूप हिंदी भाषा में उपलब्ध है पर कूट-मिश्रण के समय यह ध्यान देना अनिवार्य है कि क्या हिंदी का जो

अनूदित रूप है वह प्रयोग में अंग्रेजी या किसी अन्य भाषा के शब्दों से ज्यादा प्रसिद्ध है या नहीं। अगर प्रयोग में ज्यादा अनूदित रूप का प्रचलन है तो कूट-मिश्रण नहीं होगा जैसे ***टेबुल, ब्लैक बोर्ड, हुज़ूर*** आदि इनके हिंदी अनुवाद ***मेज, श्यामपट्ट, महाशय*** हैं, पर वे प्रयोग में ज्यादा नहीं हैं, इसलिए ये सभी Borrowing में आएँगे कूट-मिश्रण में नहीं। कूट-मिश्रण में वक्ता की सामाजिक और शैक्षणिक स्थिति भी महत्वपूर्ण होती है। पढ़े-लिखे एवं बहुभाषिक लोग इस तरह के भाषा-रूपों का ज्यादा प्रयोग करते हैं।

'मैला आँचल' में प्रयुक्त कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण

'मैला आँचल' का समाज जातियों में बँटा समाज है। यहाँ के लोगों में बहुत कम लोग हैं जिनका निरंतर शहर से संबंध है। इनकी जो भी जानकारी या बाहर की दुनियाँ को लेकर ज्ञान है उसमें से अधिकतर अफवाहों के माध्यम से गाँव पहुँचता है। यहाँ की शैक्षणिक स्थिति के बारे में लेखक ने लिखा है -

> *"सारे मेरीगंज में दस आदमी पढ़े-लिखे हैं। पढ़े लिखे का मतलब हुआ अपना दस्तखत करने से लेकर तहसीलदारी करने तक की पढ़ाई। नए पढ़ने वालों की संख्या है पंद्रह।"*[21]

लेखक के इस कथन से मेरीगंज निवासियों की शैक्षणिक स्थिति का पता चलता है। चूँकि शिक्षा का स्तर बहुत उपर नहीं है और सामाजिक सम्पर्क भी काफी सीमित है, इसलिए अधिकतर विदेशी भाषा या उस क्षेत्र से इतर की भाषा का प्रयोग आयातीत शब्द के रूप में हुआ है। कुछ ऐसे भी पात्र हैं जो कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण का प्रयोग करते हैं। इसके कुछ नमूने निम्नलिखित हैं-

भगवान भगत : *"अरे! ई **तो** दस आदमी के काम बा....."*[22]

भंडारी : *"रानीगंज के तीन **गो** मुरती **तो** आज सात दिन से..."*[23]

सुमरितदास : *"तनुकलाल अपने मन से नहीं बोल रहा है, इसमें **कनकशन** है।"*[24]

पयारु : "*पानी के डोल के पास एक **बोल** रखना होगा।*"[25]

उपाध्याय का पुत्र : *"**एटेंशन** में जो **फोर्स** हैं वह सावधान में नहीं। **एटेंशन** सुनते ही लगता है कि दर्जनों जोड़े **बूटे** चरख उठे।*"[26]

नाथबाबू : "*ऐसा ही सभी **वरकर** अपने **फिल्ड** में **वर्क** करे तो? दो महीने में अकेले ही **ऑर्गेनाइज** कर लिया है। चवन्निया **मेंबर** कितना बनाया?.....*"[27]

सोशलिस्ट पार्टी का जिला मंत्री : *"...एक भी घर नहीं? **गुड**! जुलूस में कितने आदमी थे, सब क्या बलदेव जी से प्रभावित हैं? माने **ब्लाइंड फ्लोवर** .....यानी आँख मूँद कर विश्वास करने वाले तो नहीं? ....कुछ **लिटरेचर** दे दीजिए इनको .....**पार्टी प्लेज** पर **साइन** कर दिया है। .....वहाँ **आर्गेनाइज** करने में कोई दिक्कत नहीं होगी।*"[28]

राजबल्ली : "*अ-अ-अरे काम-काम-रेड, उसे साफ ल प - लप लफ्जों में कह दीजिए कि **फो - फो ई-टी टू** के **मुवमेंट** में अहिंसा के भरोसे रहते तो आ-आजादी नसीब नहीं होती। उसे साफ लफ्जों में कह दीजिए कि तुम **रिएक्शनरी** हो। **डिमोरलाइज्ड** हो। यह ले जाइए **डायलेक्टि**।*"[29]

चिंगारी जी़ : "*तुम स्वयं द्वंद्वयुक्त भौतिकवाद की **सिनथिसिस** हो।*"[30]

प्रशांत : "*पता नहीं आदमी **लंग्स** को दिल कहता है या **हार्ट** को।*"[31]

सिपाही : "*साला बोलता **काहे** नहीं? नाम गिनावऽऽ अपन बाप के जे साथ रहलन .....हौने मुँह का देखऽ ताड़ऽऽ चच्चा के तरफ देख के बोलऽ साला हतियार **कहीं का**! **नरक** में **भी** जगह न मिली ससुरे।*"[32]

गोरखा : "*हम पैसा **तीरकर चुरुट** लेगा*"[33]

ममता : "*मैंने **गजट** में तुम्हारी **रिपोर्ट** दे दी है। एक संक्षिप्त **रिपोर्ट** है .....तुम्हारी चिट्ठी से **सर्ट** करके लिख दिया।*"[34]

कूट-अंतरण (Code switching)

'मैला आँचल' में कूट-अंतरण का प्रयोग लगभग नहीं के बराबर है। एक जगह दरोगा का एक संवाद है जिसमें हिंदी और अंग्रेजी के बीच कूट-अंतरण होता है -

दरोगा : "*मरेगा यही दोनों ....। डकैती विद मर्डर।*"[35]

कूट-मिश्रण के जितने भी नमूने उदाहरण के लिए चुने गए हैं उसमें भगवान भगत, भंडारी, सुमरितदास और प्यारु को छोड़कर बाँकि सभी शिक्षित हैं। इनका अशिक्षित होने का कहीं उल्लेख नहीं है, पर इनकी भाषा के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है। भगवान भगत हमेशा भोजपुरी बोलता है पर इस कथन में भोजपुरी के साथ हिंदी के शब्दों का मिश्रण हुआ है। भोजपुरी में ***'तो'*** नहीं बल्कि ***'त'*** का प्रयोग होता है अत: यहाँ कह सकते हैं कि ***'तो',*** लेखक या पात्र पर हिंदी के प्रभाव से आया है। इसी तरह भंडारी के मगही वाक्य में हिंदी के **'तो'** का प्रयोग हुआ है। मगही में भी ***'तो'*** नहीं बल्कि ***'त'*** का प्रयोग होता है। सुमरितदास ने अंग्रेजी के शब्द ***'कनक्शन'*** का प्रयोग किया है और प्यारु ***बौल*** (बाउल) का। ये दोनों हिंदी के लिए आयातित हैं पर इनका प्रयोग बहुत प्रचलित नहीं है इसलिए इसे कूट-मिश्रण कहा जा सकता है। बाँकी सभी पात्र शिक्षित हैं इसलिए प्राय: अंग्रेजी का प्रयोग करते हैं। यहाँ एक सिपाही भी भोजपुरी और हिंदी का मिश्रण कर रहा है। गोरखा सिपाही अपने कथन में नेपाली के शब्द ***'तीरकर'*** और ***'चुरुट'*** शब्द का प्रयोग करता है। यहाँ हिंदी और नेपाली का कूट-मिश्रण हो रहा है।

'परती : परिकथा' में प्रयुक्त कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण

'परती : परिकथा' का प्रकाशन भारत की आजादी के दस साल बाद सन् 1957 ई. में हुआ था। इस समय भारत के नागरिकों को संविधान के माध्यम से सभी मौलिक

अधिकार हासिल हो चुके थे। राजनीति ने कई करवटें बदल ली थी। एक पंचवर्षीय योजना भी पूर्ण हो चुकी थी। देश में जहाँ एक ओर आजाद होने की खुशी थी, वहीं दूसरी ओर नए सिरे से राष्ट्र के निर्माण को लेकर चिंताएँ भी। इन सभी सामाजिक राजनीतिक कारणों का असर समाज, साहित्य और भाषा पर पड़ रहा था। सांस्कृतिक परिवर्तन के कारण एक नई भाषा बन रही थी। इन सभी संभावनाओं और समस्याओं की अभिव्यक्ति साहित्य में हो रही थी। नेहरु-युग में मेलजोल की संस्कृति को बढ़ावा दिया जा रहा था। आजादी के बाद जनसंपर्क के साधनों में सुधार हो रहा था। बिना रोक टोक कोई भी कहीं भी आ-जा सकता था। इस आवाजाही ने भाषायी मेलजोल को बढ़ावा दिया और कई जगहों पर कई भारतीय भाषाएँ एक साथ मिलीं। इससे भाषा-मिश्रण और भाषा-अंतरण की प्रवृत्ति भी बढ़ी। इसी भारतीय भाषायी यथार्थ की अभिव्यक्ति रेणु के उपन्यासों में देखने को मिलती है। रेणु ने अपने उपन्यासों के माध्यम से अपने क्षेत्र के समाजशास्त्र और भाषाविज्ञान दोनों को फलीभूत किया है।

'परती : परिकथा' भाषा, कथ्य और शिल्प सभी दृष्टियों से रेणु का श्रेष्ठतम उपन्यास है। केवल भाषा की दृष्टि से विचार करें तो यहाँ विभिन्न पात्र लगभग आठ भाषाएँ बोलते हैं। इसका कथा-क्षेत्र वही है जो 'मैला आँचल' का है पर समाज 'मैला आँचल' के समाज से थोड़ा विकसित है या यों कहें कि 'मैला आँचल' की अगली पीढ़ी की कहानी 'परती : परिकथा' में कही गयी है। इसलिए इसकी भाषा भी 'मैला आँचल' से एक कदम आगे की है। इस उपन्यास में 'परानपुर' गाँव की कहानी है। यहाँ के लोगों की शैक्षणिक स्थिति का विवरण देते हुए 'रेणु' लिखते हैं -

> *"पहले पढ़े लिखे लोगों की बात कीजिए! आठ ग्रेजुएट, दो एम.ए. एक शास्त्री (काशी विद्यापीठ), पचास मैट्रिक्यूलेट, एक सौ मिडिल पास। डेढ़ दर्जन कवि, दो साहित्यालंकार और एक नाटककार। लड़कियाँ भी पढ़ी-लिखी हैं।"*[36]

चूँकि यहाँ 'मैला आँचल' की अपेक्षा शिक्षा का प्रचार प्रसार ज्यादा है इसलिए यहाँ के पात्रों की भाषा में विकल्पन भी ज्यादा है। इन सभी कारणों से भाषा प्रयोग में कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण का प्रचलन भी अधिक है। प्राय: सभी शिक्षित पात्रों की भाषा में हिंदी-अंग्रेजी का मिश्रण एवं अंतरण दिखाई पड़ता है। कुछ पात्र नेपाली, बाँगला और भोजपुरी भाषाई समुदाय के हैं जिसका मिश्रण और अंतरण उनके कथनों में देखने को मिलता है।

कूट-मिश्रण (Code mixing)

गुरुड़धुज झा : *"ऐसे ऐसे **हाफ मैड** गाँव में तीन चार हो जाय तो सारा गाँव ही चौपट समझो।"*[37]

लुत्तो : *"झाजी! इस **डंजरस** आदमी को मैं पानी पिला पिला कर जिलाऊँगा और नचा नचा कर मारुँगा।"*[38]

सुरपति राय : *"**रिफाइंड** आदमी।"*[39]

सेमियाँ : *'मुझे तो अभी जाकर तीन **पेज हैंडरैटिंग** लिखना है।"*[40]

दिलबहादुर : *".....अकेले **मान्छे** को घेर कर मारने के वास्ते आया।"*[41]

जितेन्द्रनाथ : *"हाँ, दिलबहादुर **पोलिटिकल सफरर** है।"*[42]

भिम्मल मामा : *"कोच्छ नहीं, कोच्छ नहीं, **ऑल अडलट्रेशन विदाउट लिमिटेशन।**"*[43]

सभापति : *"वाह लूत्तो बाबू आपने तो इस गाँव को पूरी तरह **कैपचर** कर लिया।"*[44]

प्रेसिडेंट : *"लूत्तो बाबू जरा गुस्सा पर **कंट्रोल**।"*[45]

मलारी : *"परिच्छा में मौखिक **कोसचेन** किया। मैंने कोसचेन का **एनसर** दिया।"*[46]

लैंड रिक्लेमेशन ऑफिसर : *"आपको मालूम है **मिस्टर, एट लिस्ट हैंड्रेड टाइम्स** इस परती का **सॉयल्स** का **केमिकल एनालिसिस** किया जा चुका है।"*[47]

फॉरेस्ट ऑफिसर : *"अच्छा होता अगर आप **नेशनल सेविंग सर्टिफिकेट** खरीद कर थोड़ा देश का भी उपकार करते।"*[48]

बीरभद्दर : *"तुम मेरे एक छोटी सी दिल्लगी से भी **टेम्पर लूज** कर देती हो।"*[49]

मकबूल : *"चाय सिगरेट पर **आडियोलॉजी** बेचने वाले दल का नहीं है मकबूल।"*[50]

रोजउड : *"मैं **कन्वर्ट** होकर हिंदू हो गई हूँ .....लगा कि मैं **एबनर्मल** हो गई हूँ।"*[51]

हीरामंडल : *"**कम हेयर** अन्दर कोठी **ही वान्ट**।"*[52]

चौकीदार : *"इस पहाड़ी में **ए-गो** अजगर बड़ा उत्पात मचा रहा है।"*[53]

डॉ. रायचौधुरी : *"हाँ लेकिन तुमको **अबार** क्या हुआ।"*[54]

परमा : *"**व्हेदर इट इज ए फैक्ट** या पटनियां फफरबाजी।"*[55]

कामरुप नरायण : *"तुम लोगों के देह में न कोई आन है न **करेक्टर** में कोई रीढ़।"*[56]

ऊपर दिए गए नमूनों को गौर से देखें तो पाएँगे कि चौकीदार दिलबहादुर और डॉ. रायचौधुरी के अलावा सभी प्राय: हिंदी और अंग्रेजी के बीच कूट-मिश्रण कर रहे हैं। चौकीदार हिंदी और बिहारी का मिश्रण कर रहा है। बिहारी का इसलिए क्योंकि ***'ए-गो'*** (एक) शब्द बिहार की लगभग सभी बोली में एक समान अर्थ में प्रयुक्त होता है। डॉ. रायचौधुरी के हिंदी संवाद में ***'अबार'***, बाँगला शब्द का प्रयोग हुआ है। दिलबहादुर हिंदी के वाक्य में नेपाली का ***मान्छा*** शब्द प्रयोग करता है। इसके अलावा गुरुड़धुज झा, लुत्तो, सुरपति राय, जितेन्द्र, सेमिया, मलारी, भिम्मल मामा, मकबूल, रोजउड, सभापति, प्रेसिडेंट, सरकारी ऑफिसर आदि सभी की भाषा में हिंदी और अंग्रेजी के शब्दों का मिश्रण हुआ है। जितेन्द्र के संवाद में नेपाली के शब्दों का भी मिश्रण हुआ है जिसकी चर्चा कूट-अंतरण में की जाएगी। हिंदी-अंग्रेजी कूट-मिश्रण के संदर्भ में लेखक ने उपन्यास में कई जगह स्पष्ट किया है। उपन्यास के प्रारंभ में अंग्रेजी के शब्दों के प्रचलन के बारे में 'रेणु' लिखते हैं कि-

"गाँव में अंग्रेजी के शुद्ध और अपभ्रंश रूप धड़ल्ले से व्यवहार होता है - नामनेशन, मेजरौटी, पैलटीस पौलिसी।"[67]

'अंग्रेजी का इतना क्रेज है कि लुत्तो ट्यूशन लेकर अंग्रेजी सीख रहा है।'[58] गरुड़धुज झा अपने लड़के के अंग्रेजी प्रयोग को सुनकर अंग्रेजी सीख रहा है। आलम यह है कि 'अर्जुनलाल मास्टर तीन हिस्सा अंग्रेजी में एक हिस्सा गाँव की बोली मिलाकर बोलता है।'[59] अंग्रेजी-हिंदी कूट-मिश्रण के कई कारण है जिनमें सबसे महत्वपूर्ण है अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा का प्रचार-प्रसार। उस जमाने में और आज भी अंग्रेजी जानने वालों का समाज में अधिक सम्मान होता है। इस वजह से लोग अंग्रेजी सीखने के प्रति ज्यादा आकर्षित होते हैं। बातचीत में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग सम्मानजनक समझा जाता है। यही कारण है कि कूट-मिश्रण में भारतीय भाषाओं के साथ अंग्रेजी शब्दों का मिश्रण ज्यादा देखने को मिलता है। वर्तमान समय में इस प्रकार की भाषा का प्रयोग जीवन-शैली का प्रमुख हिस्सा बन गया है, जिसे हम फिल्मों एवं टी.वी. सीरियल में देख सकते हैं। दिलबहादुर मूलत: नेपाली है पर बहुत दिनों से जितेन्द्रनाथ के साथ है और परानपुर में ही रहता है। बहुत दिनों से इस क्षेत्र के लोगों के साथ रहने के कारण वह यहाँ की भाषा भी सीख गया है। पर भावुक क्षणों में नेपाली का ही प्रयोग करता है। रामपखारन सिंह भोजपुरी भाषायी समाज का है इसलिए उसके कथन में और टोन में भोजपुरी का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

कूट-अंतरण (Code switching)

मिम्मल मामा : *"बूचरखाने में लटकते हुए खस्सी बकरों की कटी-छिली हुई देह देखकर माथा चक्कर खाने लगता है। **आई कांट स्टैंड क्लेश विद ब्लड**..... बरदास्त नहीं कर सकता मांस के लोथरों के बीच।"*[60]

जितेन्द्रनाथ : *"वर्षा में कहीं भीगना पड़ा है। है न? ....**आई नो**। ..... **बाइ द वे** आप वैष्णव तो नहीं।"*[61]

जितेन्द्रनाथ : *"**दाज्यु! आस्तो न गर न मेरो दाज्यु भाने को कुरा सुन**! ऐसा मत करो, बात सुनो.....।"*[62]

दिलबहादुर : *"**हुन्छ त्यो मूजी लुत्ते** .....उस **भुजी** लुत्तो को मैं खूब पहचानता हूँ।"*[63]

डी.डी.टी. : *"जित्तन बाबू के विरूद्ध अभी कुछ कमिट मत कीजिए। **आई थिंक ही इज मोर नियर टू अस**।"*[64]

मनमोहन : *"नहीं कॉमरेड नहीं! तवरिस स्तालिन की मृत्यु के बाद कम्युनिज्म की बात करना फिजूल है। .....**कम्युनिज्म गॉन विद कामरेड स्तालिन**!"*[65]

पंच : *"**तोहर सब दोख माफ**। देव कुमार दुल्हा मिले सुन्दरि नौका को।*[66]

ब्लैकस्टॉन : *"परानपुर स्टेट के पत्नीदार मिस्सा से होसियार। **माइंड यू**।"*[67]

शिवेन्द्र नाथ : *"**येस मेम! दैट इज ए वेरी लॉग लिटिगेशन**।... एक तौजी के पोजीशन को लेकर झगड़ा है।"*[68]

ली :*"**ऑनली जेनुइन फोक सांग व्हीच हैव बीन हैडिड डाउन फ्राम जेनेरेशन टु जेनेरेशन बाई बोरल ट्रांसमिशन....**। मैं आपको **बोर** तो नहीं कर रहा हूँ।"*[69]

रोजउड की माँ : *''**आई डोन्नो व्हाइ दे से सो मच**! जो भी हो हमें हर हालत में अपनी प्रतिष्ठा कायम रखनी है।"*[70]

बार्कर : *"मैंने सुना है कि आपने एक ब्रह्मीन **हेड ब्वाय** रखा है। **दैट्स गुड**।"*[71]

डॉ. रायचौधुरी : *"क्या देखता है, सो बाद में बोलेगा।" .....**तुमी पारबे! तुमी पारबे! तुमी जे निजेई एक बिरल वनस्पति**!"*[72]

कुबेर सिंह : "***आई स्टिल लव जित्तन**! अब भी प्यार करता हूँ।"*[73]

कूट-अंतरण के उपर्युक्त उदाहरण देखने से यह पता चलता है कि जितने भी शिक्षित, राजनीति से जुड़े और अंग्रेज पात्र हैं, वे प्राय: हिंदी-अंग्रेजी कूट-अंतरण का प्रयोग

अपने संवादों में करते हैं। इस दृष्टि से देखा जाय तो भिम्मल मामा, जितेन्द्रनाथ, मनमोहन, दीनदयाल तिवारी, शिवेन्द्रनाथ मिश्र, रोजउड, बार्कर, रोजउड की माँ, कुबेर सिंह आदि के संवाद अत्यंत महत्वपूर्ण और विश्लेषण योग्य हैं। इनके कथनों पर गौर किया जाय तो पता चलता है कि ये सभी बहुभाषिक संवाद बहुभाषिक पात्रों के बीच ही कहे गए हैं। इस कारण यह कहीं से भी बनावटी या विद्वता का प्रदर्शन नहीं लगता है। बल्कि ये सभी संवाद एवं शब्द चयन इन पात्रों के व्यक्तित्व की संपूर्णता को प्रकट करते हैं। जितेन्द्र और दिलबहादुर के संवादों में हिंदी-नेपाली के बीच कूट-अंतरण हो रहा है। चूँकि दोनों पात्र हिंदी और नेपाली जानते समझते हैं इसलिए इस तरह के प्रयोग पात्रानुकूल हैं। जितेन्द्र एक उच्च शिक्षित और सम्भ्रांत परिवार का सदस्य है इसलिए इसके संवादों में अंग्रेजी-हिंदी का अंतरण भी अनेक जगहों पर हुए हैं। इन दोनों के अलावा कुछ और जगहों पर कांछिमाया और पलटन वालों की भाषा में नेपाली-हिंदी कूट-अंतरण देखने को मिलता है। पर यह प्रयोग मूलत: पाठक को ध्यान में रखकर तथा पात्रों की योग्यता को प्रस्तुत करने के लिए किया गया है। इसी तरह के अनेक कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण पूरे उपन्यास में देखने को मिलते हैं। इन पात्रों ने अनेक जगहों पर इस तरह की भाषा का प्रयोग कर उपन्यास की भाषिक विविधता और अर्थगर्विता को विस्तार दिया है।

'दीर्घतपा' में प्रयुक्त कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण

'दीर्घतपा' की कहानी 'वर्किंग वीमेंस हॉस्टल' की महिला कर्मचारी और वहाँ हॉस्टल में रह रही कुछ महिलाओं के जीवन पर आधारित है। उपन्यास में मूलत: हिंदी, अंग्रेजी और बाँगला के बीच कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण देखने को मिलते हैं।

कूट-मिश्रण (Code Mixing)

रामला : *"अरी-ओ **जी.सी.** इधर उधर **आइज फ्रंट**।"*[74]

सुखमय घोष : *"**भालो** किया।"*[75]

डायरेक्टर : *"अभी सब कुछ **स्मूथली** होने दीजिए।"*[176]

रेवा : *"उम्मीद है, मैं उससे पहले ही यहाँ से **क्विट** कर जाऊँ।"*[177]

ज्योत्स्ना : *"मैं तुम्हारा दर्खास्त **लोन** के लिए **हायली रेकोमेंड** कर दूँगी।"*[178]

बेला : *"जाड़े में यह **नाइट स्वेट**।"*[179]

बागे : *"काम तो **स्टोर** और **ट्रांजिट** के बीच ही हो जाएगा। कुछ **इन्क्रीमेंट** का लोभ दिखाईए।"*[180]

रमा : *"देखने में तो एकदम **इन्नोसेंट** जैसा लगता है।"*[181]

मि. आनंद : *"यह **ट्रबल** देगी तुमको, मैं जानता था। मैं कहता हूँ **गेट रिड ऑफ दीज** गुप्ता, मुखर्जी, चौधरी.....।"*[182]

कूट-अंतरण (Code switching)

रमा : *"मैं **सिरियसली** कह रही हूँ मिस गुप्त। ऐसी गंदी लड़कियां मैंने कहीं नहीं देखी। **ओह दे आर टेरिबल**।"*[183]

रामला : *"कहाँ हैं वे पंच कन्याएँ? **की कोथाय गो पंच कन्यार? कोनो भय नेई**। डरने की कोई बात नहीं।"*[184]

ज्योत्स्ना : *"**डार्लिंग** में तुम्हारी हूँ तुम्हारी ही। **वनली - आह हेट दैट ओल्ड हॉग! बागे डियर .....किल मी..... किल ...मी...**। तुम बागे तुम सचमुच फरिस्ता हो....। **किल मी दिस नाउ**....।"*[185]

ऊपर जितने भी पात्रों के संवाद कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण के उदाहरण के लिए चुने गए हैं वे सभी बहुभाषिक हैं। ज्योत्स्ना मूलत: कहाँ की है, उपन्यास में इसका जिक्र नहीं है। पर वह नेपाल की तराई से आई है। अंग्रेजी और हिंदी अच्छी तरह बोलती है। कहीं-कहीं बाँगला के संवाद भी इसके कथन में प्रयुक्त होते दिखाये गये हैं। खासकर सुखमय घोष और ज्योत्स्ना के संवादों में। इसी तरह मिसेज रामला और बेला गुप्त भी

पढ़ी-लिखी एवं कामकाजी महिलाएँ हैं। रामला हिंदी, अंग्रेजी और बाँगला जानती है इसलिए इन तीनों भाषाओं में इनके संवाद हैं। इन्हीं तीनों के बीच मिश्रण एवं अंतरण हुए हैं। बेला की बहुभाषिकता की चर्चा पीछे की जा चुकी है। सुखमय घोष बंगाली है और संवाद में हिंदी और बाँगला का मिश्रण कर बोलता है। इसके अलावा रेवा वर्मा, रमा निगम और हॉस्टल में रह रही कुछ और महिलाओं के संवादों में हिंदी-अंग्रेजी का मिश्रण एवं अंतरण दिखाया गया है। ये सभी पढ़ी-लिखी कामकाजी महिलाएँ हैं।

'जुलूस' में प्रयुक्त कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण

'जुलूस' उपन्यास की कथा पूर्वी पाकिस्तान (वर्तमान बांग्लादेश) से आए शरणार्थियों के एक समूह पर केन्द्रित है। इस समूह को पूर्णिया जिले के गोड़ियर गाँव में बसाया गया है। इनकी अपनी मातृभाषा बाँगला है पर बहुत दिनों से बिहार के इस अंचल में घूमने के कारण यहाँ की भाषा को भी अब समझते और बोलते हैं। इन्हीं भाषाओं का मिश्रण एवं अंतरण इनके संवादों में देखने को मिलता है।

कूट-मिश्रण (Code mixing)

गोपाल पाइन : *"**आमि जा बोल्सिलाम**! ....कहो न मुँह क्या देखता है अंदू।"*[86]

कालचाँद : *"**दीदी ठाकरुन! एइजे हरि प्रसाद**! पूछिए इन्होंने कीर्तन के लिए ही मनी आर्डर भेजा था कि नहीं।"*[87]

हरलाल की पत्नी : *"**एखन**..... बैठी क्या करेगी सन्ध्या।"*[88]

गोपाल पाइन : *"पाठशाला खोलने नहीं दिया तो **आमि हंगर स्ट्राइक कोर्बो**।"*[89]

कूट-अंतरण (Code switching)

हरलाल साहा : *"**सी हुतो पारे ना**..... कहाँ अपना देश और अपने देश की मिट्टी...।"*[90]

पवित्रा : *"नहीं, मैं क्या करूँ? **आमि धारा देबो ना**? मैं माँनूँगी? **आमि बाचबो**। मैं जीना चाहती हूँ।"*[91]

गिरिबाला : *"**जादब खूब भालो छेले**.....बाँगला का कीर्तन सुनकर होश-हवाश नहीं रहता है।"*[θ2]

गोपाल पाइन : *"**की देख सेन**? .....स्कूल का स्थान देख रही हैं।"*[θ3]

पवित्रा की माँ : *"**जुबती आर काके बोले**? तुम पंडित मानुस हो। तुम्हारा यह काम....।"*[θ4]

पवित्रा के पिता : *"प्रेम सदा विजयी होता है। **असल जिनिस होलो भालो -वासा। गाँधी जी बोलछेन....।"***[θ5]

सन्ध्या : *"**आमा के खूब जोर चुमू खाय**। मुँह में पान भर कर।"*[θ6]

पारस : *"**आइ एम योर अविडियेण्ट सर्वेंट आलवेज**। बोलिए रुपये जब बरसने लगेंगे तब मुझे क्या दीजिएगा।"*[θ7]

काला चाँद : *"क्यों नहीं बोलूँगा ....**आमि कि दलाल**।"*[θ8]

नरेश : *"**हाँ! चिनते पेरेछी आपनार एई बैच देखे**।.... इसमें लिखा है **मेम्बर डिस्ट्रिक वोर्ड कॉलॅनी कमिटी**।"*[θ9]

काला की माँ : *"मैं तुमको अपने कलेजे से सटा कर रखूँगी। **तुमि जे अमर प्राण**।"*[100]

कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण के लिए चुने गए उपर्युक्त उद्धरणों में प्राय: बाँगला और हिंदी के बीच ही मिश्रण एवं अंतरण हो रहा है। कहीं-कहीं अंग्रेजी के शब्द, जैसे 'हंगर स्ट्राइक' का प्रयोग हुआ है। कूट-अंतरण में एक संवाद पारस (प्रसादी लाल) का है जिसमें अंग्रेजी और हिंदी के बीच अंतरण हुआ है। अन्य सभी संवादों में बाँगला और हिंदी के बीच अंतरण हुए हैं।

'कितने चौराहे' में प्रयुक्त कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण

'कितने चौराहे' में मूलत: हिंदी, बाँगला और मैथिली भाषाई समुदाय के पात्र हैं। अत: इन्हीं भाषाओं के बीच कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण दिखाई पड़ते हैं। पढ़े-लिखे पात्र अंग्रेजी का भी व्यवहार करते हैं।

कूट-मिश्रण (Code mixing)

हेडमास्टर : *"बदमाशी करेगा तो हम **छौड़ी** से पिटाय के **बाड़ी** पठाय देगा।"*[101]

हफीज सर : *"अपनी टीम लूकस कप में ही नहीं बनैली-शिल्ड में भी **एंटर** करेगी।"*[102]

कम्पाउंडर : *"ये सब **रक्तों मिछे** नहीं जाएगा।"*[103]

इन कथनों में मूलत: बाँगला, हिंदी और अंग्रेजी के बीच कूट-मिश्रण (code mixing) हो रहा है।

कूट-अंतरण (Code switching)

हेडमास्टर : *"बोलिए अब क्या करूँ? **आपनार छेले आमार चाकरी खाबे, आमि जानतम ना।"***[104]

प्रियोदा : *"मोना! **तुमि आमार केनिंग देखबे ना?** ....देखना होगा।"*[105]

अकरम सर : *"यदि फिर ऐसी बदमाशी करेगा तो **रेस्टिकेट** कर दिए जाओगे। **अण्डरस्टेंड? स्टैच्चो हैण्ड।"***[106]

सुनील महराज : ***"मोना ऐसे छे महासन्यासी, तोमारि द्वार-खोलो-खोलो द्वार** ....दौड़ के आ।"*[107]

अकरम सर के संवादों में अंग्रेजी-हिंदी के बीच कूट-अंतरण हो रहा है। अन्य में हिंदी और बाँगला के बीच। कारण बतलाया जा चुका है कि ये सभी वक्ता मूलत: बाँगला भाषी हैं इसलिए इनके संवादों में हिंदी और बाँगला के बीच कूट-मिश्रण और कूट-अंतरण हो रहा है। ये सभी हिंदी भी अच्छी तरह जानते हैं। वहाँ का क्षेत्रीय समाज हिंदी भाषी या

हिंदी के क्षेत्रीय रूपों को जानने वाले हैं इसलिए भी इन पात्रों में हिंदी का प्रचलन ज्यादा है।

'पल्टू बाबू रोड' में प्रयुक्त कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण

प्रस्तुत उपन्यास की कहानी के केन्द्र में एक शिक्षित बंगाली परिवार है। पूरी कथा इसी परिवार के इर्द गिर्द घूमती रहती है। इस परिवार के सभी सदस्य और उपन्यास के सभी महत्वपूर्ण सदस्य हिंदी और बाँगला जानते हैं, अर्थात् बहुभाषिक हैं। ये सभी आपस में बात करते हुए अंग्रेजी का भी प्रयोग करते हैं। इनके यहाँ के दो नौकरों, बौवन झा और रामटहल के संवादों से लगता है कि ये मैथिली भाषायी समाज के हैं। इन सभी के संवादों में इन भाषाओं के मिश्रण एवं अंतरण को देखा जा सकता है।

कूट-मिश्रण (Code mixing)

बिजली : *"मरम्मत करवाने की छुट्टी ही नहीं मिलती किसी को। और **जा बाजे बई**।"*[108]

फेला : *"तुमने तो कहा था कि सही **साइको एनालाइज** करने पर पुरुषोत्तम भगवान में भी बहुत सारी ग्रंथिया मिले।"*[109]

रामटहल : *"**खोखा** बाबू लोग उपर हैं।"*[110]

घंटा : *"**ओल्ड डॉग। आमाके** आवारा कहने वाला हुआ है।"*[111]

ठाकुर : *"चौका घर में किसी दिन खिलाने की कृपा **नैकरब**।"*[112]

अनुप : *"**आमार कापड़** ...मेरे कपड़े को देखकर लोग सन्यासी समझ लेते हैं।"*[113]

अनुप : *"मैं समझा कि तुम **सिरियसली** कह रही हो।"*[114]

कुन्तला : *"तो **डस्टबिन** में कुत्तों से लड़कर अन्य क्यों नहीं खाते।"*[115]

काकी माँ : *"**आसिवार** समय सोस्टी की स्त्री से मेरी किताब ले आना फेला।"*[116]

बिजली : *"दया करके **सीन क्रियेट** मत करो।"*[117]

फेला : *".....लेकिन **काना रे तुमरा सबाय गोल्लाय चले जाबे** ..यह कैसे देख सकता हूँ।"*[118]

मुरली : *"हर जगह वह मेरे नाम को **एक्सप्लाइट** करते हैं।"*[119]

स्नेही : *"क्या हुआ इस **मैरेज** में? **पोस्टपोंड** हो गया सुनते हैं।"*[120]

कूट-अंतरण (Code switching)

बिजली : *"पढ़ाई लिखाई तो खटाई में गई। **ड्रामा शोना होच्छे**।"*[121]

काकी माँ : *"**ए-की-ड्रामा शेष**? यह क्या रेडियो बंद क्यू है?"*[122]

घंटा : *"अरे यह तो सीधा **डेथ-इंसटिक्ट** है। **शेषे आमनि कर्रकह करे ओ निजेके ना ऑफ करे फेले कोनो दिन**।"*[123]

लट्टू बाबू : *"**शरीर भालो तो**? रात में जागकर टाइप करना होगा।"*[124]

घंटा : *"सब जहन्नुम में जाओ। **आइ डोंट केयर दिस पल्टू सिंह एण्ड छोगमल**।"*[125]

छोगमल : *"काकी माँ कहती थी नाटक नहीं सुन पाती है, हा-हा-हा, **ताई बालम एक्टा लोतुन रेडियो**?"*[126]

रामटहल : *"**कोनो चिट्ठी एसेछे एखन**। डाक लेकर गया तो सोई हुई थी।"*[127]

काकी माँ : *"देखना दुनियाँ भर के छोटे लोगों का अड्डा होगा यह फूलबागान.....**जत सब हाड़ी मुची - डोम। सब आसबे**।"*[128]

रामटहल : *"**बैठक घर में ए-गो सन्यासी ऐलछथिन**। .....तेतरी दीदी को खोज रहे हैं।"*[129]

छबि : *"**दुत्त। तोमार की हये बिजू दी, आजके**? क्यों ऐसी बातें करती हो?"*[130]

नीलू के घर वाले : *"**तुमी क्रिस्तान होऊ मोछलमाने संगे बिये करो, तुमी ब्रह्मी हये जाउ**। लेकिन मैथिल ब्राह्मण के गँवार लड़के से संबंध।"*[131]

कूट-मिश्रण और कूट-अंतरण के इन नमूनों को देखने से कई बातें स्पष्ट हो जाती हैं। एक तो यह कि जब कई भाषायी समुदाय के लोग एक साथ रहते हैं तो भाषायी लेनदेन अनायास ही हो जाता है। रामटहल की भाषा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसके अलावा घंटा, फेला, बिजली, छबि, काकी माँ, छोगमल आदि के भाषायी प्रयोग में विविधता और सहजता दोनों एक साथ दिखाई पड़ती है। कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण के ये सभी उदाहरण वहाँ की बहुभाषिकता एवं बहुसांस्कृतिकता को दर्शाते हैं।

इस प्रकार सभी उपन्यासों पर विचार करें तो पाएँगे कि रेणु के यहाँ जो बहुभाषिकता है वह दो कारणों से है। एक तो इनका कथा-क्षेत्र कई भाषायी सीमाओं से जुड़ा है। इस जुड़ाव के कारण इन क्षेत्रों की भाषा एवं संस्कृति का जुड़ाव स्वाभाविक है। दूसरा कि इस क्षेत्र के लोग अब शिक्षित हो रहे हैं। शिक्षा के प्रचार-प्रसार से भाषाओं का आदान-प्रदान भी होता है। ऐसे में लोग कई भाषाओं को जानने, समझने और बोलने लगते हैं। रेणु के उपन्यासों में इन कारकों के दर्शन होते हैं। अत: बहुसांस्कृतिकता और शिक्षा के प्रचार-प्रसार से उपजी बहुभाषिकता का प्रभाव इनके उपन्यासों में दिखाई पड़ता है।

भारत में राजनीतिक कारणों से अंग्रेजी एवम् अरबी-फारसी के शब्दों का आगमन हुआ। इन भाषाओं के अनेक शब्दों को यहाँ की भाषाओं ने स्वीकार लिए जिसकी चर्चा 'आयातित शब्द' के प्रसंग में किया गया है। बहु भाषिकता के कारण इन आयातित शब्दों के साथ-साथ अंग्रेजी एवं अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग यहाँ का जन मानस करता है। इस तरह के प्रयोग समाजभाषाविज्ञान में कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण के रूप में व्याख्यायित-विश्लेषित किए जाते हैं। 'रेणु' के उपन्यासों में कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण का प्रयोग धड़ल्ले से किया गया है। इनके उपन्यासों के विश्लेषण से पता चलता है कि यहाँ के लोग मूल रूप से अंग्रेजी एवं क्षेत्रीय भाषा के शब्दों, उपवाक्यों एवं वाक्यों का मिश्रण एवं अंतरण करते हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जाए तो कह सकते हैं कि 'रेणु' के यहाँ बहुभाषिकता, कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण भाषा व्यवहार की स्वाभाविक प्रक्रिया है। यही कारण है कि 'रेणु' के यहाँ भाषा व्यवहार के इतने विविध रूप हमें देखने को मिलते हैं। इसका एक कारण यह भी है कि रेणु की रचनाओं में पात्रों की विविधता है। रचनाकार के लिए यह एक चुनौती भी होती है कि वह अपने पात्रों को संपूर्णता में व्यक्त करे और ऐसे में साहित्य में भाषा ही संप्रेषण का एकमात्र माध्यम रह जाती है। इस नजरिए से देखा जाय तो 'रेणु' का भाषा प्रयोग अत्यंत सफल एवं पात्रानुकूल है। कूट-मिश्रण एवं कूट-अंतरण का प्रयोग भी सफल एवं तर्कसंगत है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

---

[1] रेणु फणीश्वरनाथ, *मैला आँचल,* राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, आठवाँ संस्करण (पेपरबैक्स) : 1992, नौवीं आवृत्ति 2004, पृ.सं. 282-283

[2] वही, पृ.सं. 133-134

[3] वही, पृ.सं. 131

[4] वही, पृ.सं. 295

[5] वही, पृ.सं. 304

[6] वही, पृ.सं. 18

[7] वही, पृ.सं. 23

[8] रेणु फणीश्वरनाथ, *परती : परिकथा,* राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, चौथा संस्करण (पेपरबैक्स) : 2009, दूसरी आवृत्ति 2012, पृ.सं. 43

[9] वही, पृ.सं. 274

[10] वही, पृ.सं. 217

[11] वही, पृ.सं. 215

[12] वही, पृ.सं. 251

[13] रेणु फणीश्वरनाथ, *दीर्घतपा,* राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, प्रथम संस्करण (पेपरबैक्स) : 2008, पहली आवृत्ति 2011, पृ.सं. 32

[14] रेणु फणीश्वरनाथ, *जुलूस,* भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली 110003, आठवाँ संस्करण : 2010, पृ.सं. 10-11

[15] वही, पृ.सं. 95

[16] रेणु फणीश्वरनाथ, *कितने चौराहे* (रेणु रचनावली, खंड 3, संपा. भारत यायावर) : राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, तृतीय संस्करण (पेपरबैक्स) : 2007, पृ.सं. 237

[17] वही, पृ.सं.271

[18] रेणु फणीश्वरनाथ, *पल्टू बाबू रोड, चौराहे* (रेणु रचनावली, खंड 3, संपा. भारत यायावर) : राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, तृतीय संस्करण (पेपरबैक्स) : 2007, पृ.सं. 39

[19] वही, पृ.सं. 58

[20] Hudson R.A., *Sociolinguistics,* Cambridge University Press, The Edinburgh Building, Cambridge CB2 2RU, UK, Second Edition : 1996, Reprinted : 2001, Pg. 35

[21] रेणु फणीश्वरनाथ, *मैला आँचल,* पृ.सं. 16

[22] वही, पृ.सं. 18

[23] वही, पृ.सं. 23

[24] वही, पृ.सं. 18

[25] वही, पृ.सं. 39

[26] वही, पृ.सं. 50

[27] वही, पृ.सं. 87-88

[28] वही, पृ.सं. 89

[29] वही, पृ.सं. 89

[30] वही, पृ.सं. 104

[31] वही, पृ.सं. 137

[32] वही, पृ.सं. 249

[33] वही, पृ.सं. 283

[34] वही, पृ.सं. 307

[35] वही, पृ.सं. 262

[36] रेणु फणीश्वरनाथ, *परती : परिकथा,* पृ.सं. 23

[37] वही, पृ.सं. 38

[38] वही, पृ.सं. 38

[39] वही, पृ.सं. 44

[40] वही, पृ.सं. 51

[41] वही, पृ.सं. 56

[42] वही, पृ.सं. 64

[43] वही, पृ.सं. 71

[44] वही, पृ.सं. 75

[45] वही, पृ.सं. 78

[46] वही, पृ.सं. 107

[47] वही, पृ.सं. 130

[48] वही, पृ.सं. 130-131

[49] वही, पृ.सं. 169
[50] वही, पृ.सं. 175
[51] वही, पृ.सं. 204
[52] वही, पृ.सं. 217
[53] वही, पृ.सं. 229
[54] वही, पृ.सं. 275
[55] वही, पृ.सं. 304
[56] वही, पृ.सं. 336
[57] वही, पृ.सं. 24
[58] वही, पृ.सं. 38
[59] वही, पृ.सं. 163
[60] वही, पृ.सं. 21
[61] वही, पृ.सं. 43
[62] वही, पृ.सं. 56
[63] वही, पृ.सं. 60
[64] वही, पृ.सं. 126
[65] वही, पृ.सं. 124
[66] वही, पृ.सं.6 147
[67] वही, पृ.सं. 206
[68] वही, पृ.सं. 218
[69] वही, पृ.सं. 220
[70] वही, पृ.सं. 250
[71] वही, पृ.सं. 253
[72] वही, पृ.सं. 274
[73] वही, पृ.सं. 324
[74] रेणु फणीश्वरनाथ, *दीर्घतपा,* पृ.सं. 25
[75] वही, पृ.सं. 28
[76] वही, पृ.सं. 36
[77] वही, पृ.सं. 38
[78] वही, पृ.सं. 29
[79] वही, पृ.सं. 54

[80] वही, पृ.सं. 60
[81] वही, पृ.सं. 68
[82] वही, पृ.सं. 19-20
[83] वही, पृ.सं. 57
[84] वही, पृ.सं. 80
[85] वही, पृ.सं. 133
[86] रेणु फणीश्वरनाथ, *जुलूस,* पृ.सं. 13
[87] वही, पृ.सं. 34
[88] वही, पृ.सं. 103
[89] वही, पृ.सं. 52
[90] वही, पृ.सं. 9
[91] वही, पृ.सं. 29
[92] वही, पृ.सं. 35
[93] वही, पृ.सं. 51
[94] वही, पृ.सं. 59
[95] वही, पृ.सं. 60
[96] वही, पृ.सं. 61
[97] वही, पृ.सं. 71
[98] वही, पृ.सं. 101
[99] वही, पृ.सं. 108
[100] वही, पृ.सं. 132
[101] रेणु फणीश्वरनाथ, *कितने चौराहे,* पृ.सं. 237
[102] वही, पृ.सं. 239
[103] वही, पृ.सं. 270
[104] वही, पृ.सं. 267
[105] वही, पृ.सं. 268
[106] वही, पृ.सं. 269
[107] वही, पृ.सं. 299
[108] रेणु फणीश्वरनाथ, *पल्टू बाबू रोड,* पृ.सं. 20
[109] वही, पृ.सं. 22
[110] वही, पृ.सं. 28

[111] वही, पृ.सं. 30
[112] वही, पृ.सं. 48
[113] वही, पृ.सं. 54
[114] वही, पृ.सं. 60
[115] वही, पृ.सं. 69
[116] वही, पृ.सं. 67
[117] वही, पृ.सं. 78
[118] वही, पृ.सं. 93
[119] वही, पृ.सं. 95
[120] वही, पृ.सं. 106
[121] वही, पृ.सं. 20
[122] वही, पृ.सं. 20
[123] वही, पृ.सं. 21
[124] वही, पृ.सं. 22
[125] वही, पृ.सं. 31
[126] वही, पृ.सं. 31
[127] वही, पृ.सं. 46
[128] वही, पृ.सं. 48
[129] वही, पृ.सं. 54
[130] वही, पृ.सं. 86
[131] वही, पृ.सं. 94

पंचम अध्याय

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में अभिव्यक्त व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन

❖ **<u>फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में अभिव्यक्त व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन</u>**

- 'मैला आँचल' में अभिव्यक्त व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन
- 'परती : परिकथा' में अभिव्यक्त व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन
- 'दीर्घतपा' में अभिव्यक्त व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन
- 'जुलूस' में अभिव्यक्त व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन
- 'कितने चौराहे' में अभिव्यक्त व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन
- 'पल्टू बाबू रोड' में अभिव्यक्त व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में अभिव्यक्त व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन

प्रथम अध्याय में व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन पर विस्तृत चर्चा की गयी है। यहाँ 'रेणु' के उपन्यासों में अभिव्यक्त व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन का विश्लेषण किया जा रहा है। प्रथम अध्याय में समाजभाषाविज्ञान की सैद्धांतिकी पर विचार करते हुए विलियम लेबॉव, गम्पर्ज, विलियम ब्राईट आदि की समाजभाषा-वैज्ञानिक दृष्टियों पर विचार किया गया है। लेबॉव ने समाजभाषाविज्ञान में विकल्पन सम्बन्धी अवधारणाओं को महत्व दिया। इनका प्रारंभिक कार्य मार्था विनयार्ड के निवासियों की भाषा में पाए जाने वाले ध्वनि-विकल्पन पर केन्द्रित था। आगे चल कर इन्होंने न्यूयार्क सिटी-मॉल के कर्मचारियों की भाषा में पाए जाने वाले विकल्पनों का अध्ययन किया। समाजभाषाविज्ञान के विकास के प्रथम चरण में इन्होंने समाज में प्रयुक्त भाषा में पाए जाने वाले विकल्पनों पर महत्वपूर्ण कार्य किया। इनके इसी योगदान के कारण इन्हें विकल्पनावादी भी कहा जाता है।

यहाँ गौरतलब है कि इन भाषा चिंतकों द्वारा समाजभाषाविज्ञान पर जो भी कार्य किये गये हैं वे बोली जाने वाली भाषा अर्थात् Spoken Language पर केन्द्रित हैं। कहने का अभिप्राय यह कि इन्होंने अपने शोध के लिए नमूने के तौर पर भाषा सीधे-सीधे समाज से ली है। लेकिन जब हम किसी साहित्यिक कृति का समाजभाषावैज्ञानिक विश्लेषण करते हैं तो यहाँ हम लिखित भाषा का विश्लेषण करते हैं। अर्थात् नमूने के लिए रचनाकार द्वारा प्रयुक्त भाषा ही एक मात्र स्रोत होता है। इस तरह के तथ्यों के समाजभाषावैज्ञानिक विश्लेषण की अपनी समस्याएँ और सीमाएँ होती हैं। प्रत्येक लेखक किसी न किसी खास भाषायी समुदाय का होता है। उसकी अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक समझ होती है। यही

समझ उसकी रचनात्मक ज़मीन का पोषण करती है। इसलिए सीधे समाज से प्राप्त भाषा के नमूने और साहित्यिक कृति से प्राप्त नमूने में अंतर होता है। कोई वक्ता जब बोल रहा होता है तो वह वाचिक, आंगिक और सांकेतिक तीनों तरह की भाषा का प्रयोग करता है। पर जब कोई रचनाकार किसी समाज या व्यक्ति की कहानी लिखता है तो माध्यम के रूप में उसके पास सिर्फ भाषा का लिखित रूप होता है। लिखित माध्यम से ही उसे अपनी सम्पूर्ण संभावनाओं को अभिव्यक्त करना होता है। रचनाकार एक विशेष व्यक्ति, समुदाय या क्षेत्र की कथा कहता है और उसका उद्देश्य पाठकों तक अपनी कथा को संप्रेषित करना होता है। ऐसी स्थिति में लेखक अपनी अभिव्यक्ति के लिए ऐसी भाषा का प्रयोग करता है जो कथा और पात्र के साथ न्याय करती हो और पाठकों को आसानी से समझ में भी आ जाए। हिंदी में इस तरह के अनेक प्रयास हुए हैं, मसलन *'देहाती दुनियाँ', 'बलचनमा', 'रतिनाथ की चाची', 'आधागाँव', 'टोपी शुक्ल', 'झीनी झीनी बीनी चदरिया',* इत्यादि। इनके रचनाकारों ने अपने पात्र, चरित्र और कथा की प्रामाणिकता के लिए जिस सृजनात्मक भाषा का प्रयोग किया है वह बिलकुल वही नहीं है जो उस कथा-क्षेत्र के लोग बोलते हैं और न ही मानक-हिंदी है। बल्कि हम कह सकते हैं कि इन्होंने अपनी कथा कहने के लिए स्वयं एक ऐसी भाषा निर्मित की है जो इनकी आवश्यकता के अनुरूप है। 'रेणु' हिंदी के सभी रचनाकारों में अपनी अलग पहचान रखते हैं। इन्होंने हिंदी साहित्य को एक अलग भाषायी पहचान दी है। अपनी रचनात्मकता के माध्यम से यह प्रामाणित किया कि किसी समाज की भाषा उसकी सामाजिक अस्मिता और सांस्कृतिक पहचान होती है। एक साक्षात्कार में 'रेणु' ने अपने भाषायी प्रयोग के बारे में कहा है -

> *"जब साधारण जनता की बात कहनी हो, जब वे लोग बोलते हैं, मैथिली में बोलते हैं, मगही में बोलते हैं। मुझको लिखना पड़ रहा है उसको हिंदी में।*

तो अगर मैं उसको शुद्ध-व्याकरण सम्मत और पंडिताऊ भाषा में लिखता हूँ, तो यह तो खुद कान में कैसा लगेगा कि यह एक गाँव का आदमी किस तरह से बोल रहा है- इतना शुद्ध बोलता है! और बिलकुल वैसा या अशुद्ध लिखने से यह उपन्यास चल नहीं सकता है।..... मैंने ऐसा बीच का रास्ता अख्तियार करके लिखा-कथा की ईमानदारी तक पहुँचने के लिए भी, उसको सच बनाने के लिए भी। कई जगह तो डायलोग में ही चरित्र उभर कर सामने चला आया है।"[1]

'रेणु' के इस कथन और इनके उपन्यासों में प्रयुक्त भाषा के आधार पर इनके उपन्यासों का विश्लेषण करें तो पायेंगे कि इन्होंने अत्यंत जीवन्तता के साथ भाषा के माध्यम से पात्रों का सजीव चित्रण करने का प्रयास किया है। बहुभाषिकता, भाषायी-समाज, कूट-मिश्रण और कूट-अंतरण का विश्लेषण पिछले अध्यायों में किया जा चुका है। यहाँ इनके उपन्यासों में अभिव्यक्त व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन का विश्लेषण किया जा रहा है।

'मैला आँचल' में अभिव्यक्त व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन

'मैला आँचल' को हिंदी के युग प्रवर्तक उपन्यास के रूप में देखा जाता है। इसी के प्रकाशन के बाद हिंदी में आँचलिक उपन्यास नाम की गद्य विधा का सूत्रपात होता है। पर इसकी भूमिका महज इतनी ही नहीं है। इसके प्रकाशन के पूर्व द्वितीय विश्व युद्ध खत्म हो चुका था। भारत में गणतंत्र की स्थापना हो चुकी थी। देश के विभिन्न हिस्सों में भाषाई अस्मिता को लेकर राजनीतिक बहसें चल रही थी। ठीक इसी समय अमेरिका के कुछ भाषावैज्ञानिक, नृतत्वशास्त्री और मनोवैज्ञानिक भाषा के सामाजिक सन्दर्भ की पड़ताल में जुटे थे। इससे पहले भाषा की समाज सापेक्षिक व्याख्या की जा चुकी थी। पर उन्नीसवी

सदी के छठे दशक में पेंसिलवानिया विश्वविद्यालय के भाषाविज्ञान के प्रोफ़ेसर डब्लु वाइनरिच और उनके शिष्य विलियम लेबॉव न्यूयार्क शहर के पास के एक द्वीप मार्था विनयार्ड के लोगों के भाषिक प्रयोग एवम् उसमें पाए जाने वाले विकल्पनों की तलाश कर रहे थे। विलियम लेबॉव के इसी शोध के बाद भाषाविज्ञान की एक नयी शाखा समाजभाषाविज्ञान का विकास हुआ। आगे चलकर फिशमैन, फर्गुशन, गम्पर्ज़, डेलहेम्स, विलियम ब्राईट आदि विद्वानों ने इस शाखा को समृद्ध किया। सन् 1960 ई० के बाद समाजभाषाविज्ञान की अनेक अवधारणायें, मसलन भाषा-विकल्पन, कूट-मिश्रण, कूट-अंतरण, बहुभाषिकता, भाषाद्वैत आदि आयी। यह एक महज संयोग ही कहा जा सकता है कि पश्चिम में जिन भाषा सम्बन्धी सिद्धांतों की बात की जा रही थी; जिस पर लगातार शोध हो रहे थे। जाने-अनजाने उनकी अभिव्यक्ति 'रेणु' अपने उपन्यासों में कर रहे थे। इसे अनायास कहें या सर्जनात्मकता की जरुरत या प्रामाणिकता का दबाब, जिसने 'रेणु' को अपने साहित्य में इस प्रकार के भाषायी प्रयोग के लिए प्रेरित किया। इनके द्वारा किये गए प्रयोग समाजभाषावैज्ञानिक दृष्टि से बिलकुल सटीक और प्रमाणिक हैं। ऐसा नहीं कि हिंदी में इस तरह का प्रयोग सिर्फ 'रेणु' ने ही किया बल्कि सभी रचनाकार इस तरह का प्रयास करते हैं। काबिले तारीफ़ यह है कि जैसा प्रामाणिक और सफल प्रयोग 'रेणु' के यहाँ देखने को मिलता है वैसा हिंदी साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है।

व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन कि दृष्टि से *'मैला आँचल'* एक महत्वपूर्ण कृति है। यहाँ अनेक प्रकार की भाषा एवं भाषायी समाज की अभिव्यक्ति अत्यंत सजग और सफलतापूर्वक की गई है। लेखक ने प्रत्येक पात्र को भाषा में गढ़ने का प्रयास किया है इसलिए व्यक्ति और समाज दोनों अपनी भाषायी अस्मिता को बनाये रखने में समर्थ दिखाई पड़ते हैं। *'मैला आँचल'* में लेखक ने कुछ पात्रों की भाषा को इस बारीकी से

गढ़ा है कि एक बार उपन्यास में किसी पात्र से परिचित हो जाने के बाद जब पाठक अन्यत्र इन्हीं के दूसरे संवाद पढ़ते हैं तो दुबारा नाम या परिचय की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह वैयक्तिकता पात्रों के शब्द-चयन से लेकर शब्द-प्रयोग, वाक्य-रचना, उच्चारण आदि तक में दिखाई पड़ती है।

'मैला आँचल' का समाज हाई डेंसिटी सोशल नेटवर्क वाला समाज है। यहाँ प्रत्येक पात्र एक दूसरे को सीधे-सीधे या परोक्ष रूप से जानते हैं। चूँकि समाज में सघनता है इसलिए समाज का प्रत्येक सदस्य एक दूसरे से लगातार सम्पर्क में हैं। लगातार सम्पर्क में होने के कारण सभी की भाषा में एक प्रकार की समानता दिखाई पड़ती है। यही कारण है कि प्रत्येक पात्र की भाषा विशिष्ट होने के बावजूद एक जैसी है। भाषा के इस रूप को व्यक्ति-बोली न कह कर समाज-बोली कहना ज्यादा युक्ति संगत है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित कथनों को देख सकते हैं -

बालदेव : "*पियरे भाइयों! कोठारिन साहेब जितना बात बोली सब ठीक है। लेकिन सबसे बड़ा **दोखी** हम हैं। **हमारे कारन** ही गाँव में लड़ाई झगड़ा हो रहा है.....।*"[2]

सेवादास : "*सतगुरु हो! **डागडर** साहेब, आपको कितना **मुसहरा** मिलता है?*"[3]

रामदास : "*कुछ नहीं **पछवरिया** साधू है। काया में कही भी साधू सुभाव नहीं। कोठारिन जी से **बतकुट्टी** करता था।*"[4]

जोतखी जी : "*खेलावन बाबू, गाँव में तो **सुराज** हो गया, देखते हैं। अच्छा-अच्छा! देखिएगा गाँव के लौंडे सब आज **फुच्च-फुच्च** कर रहे हैं।.....*"[5]

लछमी कोठारिन : "*कंठी बाहरी चीज नहीं है बालदेव जी! **भेख** है यह।*"[6]

प्यारु : *"अरे क्या पूछती हो **दैया**! इस आदमी का हमको कोई **ताल-पता** नहीं लगता है।"*[7]

रामजुदास की स्त्री : *"अरे फुलिया की माय! तुम लोगों को न तो लाज है न धरम।"*[8]

फुलिया : *"नहीं मामी, एक बात कहने आई हूँ। काली **किरिया**, किसी से कहना मत। खलासी जी तो तुम्हारे **गुहाल** में सोते हैं ना? काली **किरिया**।"*[9]

बावनदास : *"**बिलैती** कपड़ा के **पिकेटिन** के जमाने में चानमल-सागरमल के **गोला** पर **पिकेटिन** के दिन क्या हुआ था, सो याद है तुमको बालदेव? चानमल मड़बाड़ी के बेटे सागरमल ने अपने हाथों सभी भोलटियरों को पीटा था; जेहल में भोलटियरों को रखने के लिए सरकार को पैसा दिया था।"*[10]

कालीचरन : *"जमीन छुड़ा लेगा?... नहीं उस दिन हमलोग की रैली में **परसताब** पास हो गया। जमींदार लोग रैयत को जमीन से बेदखल नहीं कर सकते। इसके लिए पार्टी **संघर्ख** करेगी।"*[11]

इन पात्रों के कथन से पता चलता है कि इनके संवाद मानक-हिंदी में हैं परन्तु इनमें अनेक तद्भव एवं देशज शब्दों का प्रयोग दिखाई पड़ता है, मसलन **पियारे** (प्यारे), **दोखी** (दोषी), **कारन** (कारण), **मुसहरा** (वेतन), **पछवरिया** (पश्चिम का), **बतकुट्टी** (बहस), **सुराज** (स्वराज), **भेख** (वेश), **धरम** (धर्म), **किरिया** (कसम), **गुहाल** (गौशाला) इत्यादि। उपन्यास के अन्य पात्र भी इस तरह की भाषा का प्रयोग करते हैं। बहुत जगहों पर यही पात्र मानक-हिंदी के परिमार्जित रूप का भी प्रयोग करते हैं। पर अधिकांश कथनों में तद्भव एवं देशज शब्दों का प्रयोग बहुतायत में देखने को मिलता है। मेरीगंज का पूरा समाज चाहे वह किसी भी जाति या समुदाय का हो, इसी तरह की भाषा का प्रयोग करता है। अतः

मानक-हिंदी के तद्भव एवं देशज शब्दावली के मिश्रित रूप को मेरीगंज कि समाज-बोली (Sociolect) कह सकते हैं।

'मैला आँचल' में मेरीगंज गाँव के लोगों के अलावा और भी कई पात्रों का चित्रण किया गया है। इसमें आभारानी, रामकिशुन बाबू, गांगुली, डॉ प्रशांत, बावनदास, डॉ० ममता, बंगाल के कुछ कांग्रेसी सदस्य आदि का नाम उल्लेखनीय है। इनमें बाँगला भाषी जितने भी सदस्य हैं उनके संवाद या तो बाँगला में हैं या बाँगलापन युक्त हिंदी में। लेखक ने इस तरह का प्रयोग इनकी भाषायी अस्मिता की पहचान और प्रामाणिक अभिव्यक्ति को ध्यान में रखते हुए किया है। आभारानी के सभी संवाद बाँगला में हैं। उपन्यास में और भी बंगाली पात्र हैं जिन्होंने अपने संवादों में बाँगला का प्रयोग किया है।

आभारानी : "*भगवान, आज थेके तोमाय रोज एक गिलास ऐई रस आर रात्रे दुध खेते हबे।*"[12]

काँग्रेस का सदस्य : "*आदमियत तुले आर कोथा बोलबेन ना मोशाय।*"[13]

गांगुली जी भी बाँगला बोलते हैं पर कई जगह उन्होंने हिंदी और अंग्रेजी के वाक्यों का भी प्रयोग किया है। रचनाकार का यह प्रयोग बाँगला भाषी समाज को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करने के लिए किया है। सभी एक तरह की बाँगला बोलते हैं इसलिए इसे व्यक्ति-बोली न कह कर समाज-बोली कहना ज्यादा उपयुक्त लगता है।

व्यक्ति-बोली की दृष्टि से देखें तो पूरे उपन्यास में नागा साधू एक मात्र ऐसा पात्र है जिसकी भाषा को व्यक्ति-बोली कह सकते हैं। उपन्यास में उसके जितने भी संवाद हैं सभी एक जैसे हैं, जिसे आसानी से पहचान सकते हैं। यथा:-

नागा साधू : *"तैरी जात को मच्छर काटे! हरामजादी! रंडी! तै समझती क्या है री? ऐ दुनियाँ को तै अंधा समझती है? बोल! लाल मिर्च की बुकनी डाल दूँ। छिनाल! तै आचारज गुरु को गली देती है?"*[14]

नागा साधू के कुल तीन संवाद हैं, और तीनों में इसी तरह की गलियों से लैस सधुक्कड़ी भाषा है। लेखक के द्वारा नागा साधू के लिए इस तरह की भाषा का प्रयोग चरित्र निर्माण को केन्द में रख कर किया गया है। उत्तर-मध्य भारत में इस तरह के अनेक अघोड़ साधू आज भी मिल जायेंगे जो बिलकुल ऐसी तो नहीं पर इसी तरह की मिलती-जुलती भाषा का प्रयोग करते हैं। इस उपन्यास में नागा साधू की भाषा व्यक्ति-बोली का सबसे सटीक उदाहरण है।

भाषा-विकल्पन इस उपन्यास की सबसे बड़ी भाषायी विशेषता है। लेखक ने समाज के प्रत्येक स्तर को भाषा के माध्यम से अलग करने का प्रयास किया है। शिक्षितों, अशिक्षितों, उच्च-निम्न जाति के लोग, अलग-अलग राजनीतिक दलों के लोगों की भाषा को यथा संभव अलग रखने का प्रयास किया गया है।

उपन्यास में जितने भी शिक्षित एवं संभ्रांत पात्र हैं, सभी मानक-हिंदी का प्रयोग करते हैं। उदाहरणार्थ इन नमूनों को देख सकते हैं :-

डॉ प्रशांत : *"अगर गाँव के लोगों ने सुई नहीं लगवाई और कुँओं में दवा नहीं डालने दी तो एक भी गाँव को बचाना मुश्किल होगा।"*[15]

ममता : *"असफल नहीं हुआ है। मिट्टी और मनुष्य से इतनी गहरी मोहब्बत किसी लेबोरेटरी में नहीं बनती।"*[16]

दरोगा : *"ओ हो! कालीचरन जी? आइए साहब, आप लोग तो साहब, क्या कहते हैं, जो न करवाइए।"*[17]

इन पात्रों की भाषा मानक-हिंदी है। ममता की भाषा में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग किया गया है। अन्य पात्र भी अंग्रेजी-हिंदी में कूट-मिश्रण और कूट-अंतरण का प्रयोग करते हैं जिसकी चर्चा पिछले अध्याय में की गइ है। अशिक्षित पात्रों की भाषा इनसे भिन्न हैं। यथा :-

कलरू : *"अरे डागडर साहेब! अब क्या लोग होली खेलेंगे! होली का ज़माना चला गया। एक जमाना था जबकि गाँव के सभी बूढों को नंगा करके नचाया जाता था, एकदम नंगा। उस बार राज के मनेजर **जनसैन** साहब के साथ तीन चार साहेब आये थे। काला बक्सा में आँख लगा कर छापी लेते थे। बाद में खानसामाँ से मालूम हुआ कि **बिलैत** के **गजट** में छापी हुआ था। एकदम नंगा।"*[18]

रमजू की स्त्री : *"जब दुध की छाली और मालभोग केला खाकर आँख पर **चरबी** चढ़ जाएगी तब मौसी को पहचानोगी भी नहीं। महंथ से कह देना एक जोड़ा साड़ी से काम नहीं चलेगा दही खाने से बाकी मोजर नहीं होगा... **कठसर** लेकर छोड़ेगे।"*[19]

कलरू और रामजू की स्त्री, दोनों ही मेरीगंज के रहने वाले और अशिक्षित पात्र हैं। इनके संवादों को ध्यान से देखें तो पता चलता है कि व्याकरणिक संरचना तो मानक-हिंदी की ही है पर कई शब्दों का तद्भवीकरण कर दिया गया है, जैसे **जॉनसन** की जगह **जनसैन**, **बिलायत** की जगह **बिलैत**, **चर्बी** की जगह **चरबी**, **कंठसार** की जगह **कठसार** आदि।

इन दोनों श्रेणी के पात्रों की भाषा को देखने से पता चलता है कि 'रेणु' ने दोनों की आधार भाषा मानक-हिंदी रखी है, पर शिक्षितों की भाषा में संस्कृतनिष्ठता एवम् अंगेजी के शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है जबकि अशिक्षितों की भाषा में तद्भव एवं देशज शब्दों का प्रयोग किया गया है। साथ ही अंग्रेजी के शब्दों का तद्भवीकरण कर दिया गया है। इस तरह का भाषायी प्रयोग 'रेणु' ने पात्रों की चारित्रिक विशेषता और सामाजिक अस्मिता को बनाये रखने के लिए किया है।

भाषा-विकल्पन की दृष्टि से *'मैला आँचल'* में वर्णित संस्थाओं की भाषा अत्यंत उल्लेखनीय और विश्लेषण योग्य है। उपन्यास में दो तरह की संस्थाओं का उल्लेख किया गया है। एक धार्मिक संस्था और दूसरी राजनीतिक संस्था। धार्मिक संस्था का प्रतिनिधित्व गाँव का मठ कर रहा है और राजनीतिक संस्था के रूप में काँग्रेस पार्टी, सोशलिस्ट पार्टी और कालीटोपी वाले दल हैं। इन सभी संस्थाओं की भाषा एक दूसरे से अलग है। सभी संस्थाओं की अपनी-अपनी विचारधारा और उद्देश्य हैं। मठ प्राचीन समय से ही धर्म-व्यवस्था और राजनीति का केन्द्र रहा है। मध्यकाल तक शासन पर इसका जबर्दस्त प्रभाव रहा जो आधुनिक काल तक आते-आते कमज़ोर हो गया। भारत के धर्मनिरपेक्ष होने के बाद धर्म को निजी और सामाजिक भावना तक ही सीमित कर दिया गया। पर आज भी इसका सम्बन्ध राजनीति से किसी न किसी तरह जुड़ा है। पूरे देश में नजाने कितने ऐसे मठ हैं जहाँ से वहाँ की क्षेत्रीय राजनीति संचालित होती है। *'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ', 'विश्व हिंदू परिषद'* आदि ऐसे अनेक संगठन हैं जिनका मठों से सीधा सम्बन्ध है और राजनीति में भी इनका उतना ही वर्चस्व है। कुछ ऐसी ही भूमिका मस्जिद, चर्च और गुरुद्वारा की भी है। *'मैला आँचल'* में भी एक इसी तरह के मठ का चित्रण किया गया है। यह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर और संपन्न धार्मिक केन्द्र है। गाँव के लोगों पर इसका ज्यादा प्रभाव और

वर्चस्व नहीं है। उपन्यास में इसका चित्रण 'दासी प्रथा' जैसी सामाजिक कुरीति को दर्शाने और भक्ति का धंधा करने वाली संस्था के रूप में हुआ है। चूँकि यह गाँव की धार्मिक संस्था होते हुए भी इससे अलग है इसलिए इस संस्था से जुड़े लोगों की भाषा भी ग्रामीणों की भाषा से भिन्न है।

मठों के सदस्यों की भाषा :-

सेवादास : *"आज मध्यरात्रि में, **सतगुरु साहेब** सपने में मेरे **आसन** के पास आए। हम जल्दी से उठ के **साहेब बंदगी** किया। हमको **दया भाव** देकर **साहेब कहिन** - सेवादास, तुम नेत्रहीन हो, लेकिन तुम्हारे **अंतर** के नैनों का **जोत** बड़ा विलच्छन है। हम **भेख** बदल कर आया और तुम पहचान लिया? तुम्हारे **ज्ञान-नेत्र** में **दिब्बजोत** है। सो तुम्हारे गाँव में **परमारथ** का **कारज** हो रहा है और तुमको मालूम नहीं? गाँधी तो मेरा ही **भगत** है। गाँधी इस गाँव में इस्पिताल खोल कर **परमारथ** का **कारज** कर रहा है। तुम सारे गाँव को एक भंडारा दे दो। कहके **साहेब अंतरधियान** हो जाए। हमारी निद्रा भंग हो गयी। **सतगुरु** के **विरह** में **चित्त** चंचल हो गया। **विरह अगिन तक कैसे बुझे, गृहबन अंधकार नहीं सूझे**। आखिर **सतगुरु आज्ञा** शब्द विचार कर **चित्त** को शांत किया।"*[20]

लछमी : *"जोतखी जी ठीक कहते हैं। गाँव के ग्रह अच्छे नहीं हैं। जहाँ छोटी-मोटी बातों को लेकर, इस तरह झगड़े होते हैं, जहाँ आपस में मेल मिलाप नहीं, वहाँ जो न हो वह थोड़ा है। गाँव के मुखिया लोग ही इसके लिए सबसे बड़े **दोखी** हैं। **सतगुरु साहेब कहिन है- 'जहाँ मेल तहाँ सरग है।' मानुस जन्म***

*बार-बार नहीं मिलता है। **मानुस** जन्म पाकर **परमारथ** में जो **विघिन** डालते हैं वे **मानुस** नहीं ...।"*[21]

ऊपर के उद्धरणों से पता चलता है कि इसमें जो शब्द प्रयुक्त हुए हैं वह सिद्धों, नाथों, एवं निर्गुन पंथों की भाषा से प्रभावित है। व्यक्ति-बोली के प्रसंग में नागा साधू की भाषा का जो उद्धरण दिया गया है वह भी इसी तरह की भाषा है। ऊपर *'मैला आँचल'* के अन्य पात्रों की भाषा का जो नमूना दिया गया है वह इस भाषा से बिलकुल अलग है। वहाँ ***परमारथ, अंतरधियान, दिब्बजोत, मानुस जन्म, सतगुरु साहेब, विरह अगिन*** आदि अध्यात्मिक शब्दों का प्रयोग नहीं मिलता है। अतः कह सकते हैं कि 'रेणु' ने मठ की भाषा को सामान्य लोगों की भाषा से अलग रखने के लिए यह विशिष्टता प्रदान की है।

काँग्रेसी की भाषा :-

उपन्यास में काँग्रेस के कई सदस्यों का जिक्र किया गया है। इनमें कुछ आजादी के पहले के सदस्य और कुछ बाद के सदस्य हैं। चूँकि भारत में हमेशा से ही सत्ता पर काँग्रेस का वर्चस्व रहा है, इसलिए इसकी भाषा तटस्थ और कुलीन है। उस समय काँग्रेसियों पर सबसे ज्यादा प्रभाव गाँधी के विचारों का था। इसलिए वैसे पात्र जो गाँधी के सिद्धांतों में विश्वास रखते हैं उनकी भाषा में चरखा, करघा, खादी, सत्य, अहिंसा, सेवाभाव आदि शब्दों की बहुलता है। उदाहरण के लिए इन सदस्यों की भाषा को देख सकते हैं :-

चौधरी जी : *"अरे बालदेव, **चरखा सेंटर** खुलवाओ। रचनात्मक काम कुछ होता है या नहीं।"*[22]

छित्तनबाबू : *"**खादी भंडार** में खांटी गाय का घी भेजो देहात से बालदेव!"*[23]

अमीन बाबू : *"मछली-मांस **आश्रम** में न तो बनाया धोया जाता है और न चूल्हे पर पकता ही है। लोग शहर से पका-पकाया ले आते हैं, खाते हैं। इसमें हर्ज ही क्या है?"*[24]

बालदेव : *"पियरे भाईयो, आप लोग जो **अंडोलन** किया है, वह अच्छा नहीं। अपना कान देखे बिना कौआ के पीछे दौड़ना अच्छा नहीं। आप ही सोचिए, क्या यह समझदार आदमी का काम है! आप लोग **हिंसावाद** करने जा रहे थे। इसके लिए हमको **अनसन** करना होगा। **भारत माता** का, **गाँधीजी** का यह रास्ता नहीं ...।"*[25]

सोशलिस्टों की भाषा

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में गाँधी के विचारों के विशेष प्रभाव के कारण अहिंसात्मक संघर्ष पर विशेष बल दिया गया। परन्तु ऐसे भी लोग थे जो इस तरह की लड़ाई को कायरता समझते थे। सोशलिस्ट पार्टी ऐसे ही लोगों की पार्टी का प्रतिनिधित्व करती है। इनकी भाषा में संघर्ष की तत्परता और खूनी क्रांति का जोश दिखाई पड़ता है। मेरीगंज में कालीचरन इस पार्टी का प्रतिनिधित्व कर रहा है। इसके अलावा कुछ अन्य जिला स्तरीय नेता भी हैं, मसलन, चिनगारी जी, सैनिक जी, जिला कमेटी सदस्य इत्यादि। इनकी भाषाओं के नमूने देख सकते हैं :-

कालीचरन : *"जमीन किसकी? जोतने वालों की! जो जोतेगा वह बोएगा, जो बोएगा वह काटेगा। कमाने वाला खायेगा, इसके चलते जो कुछ हो!"*[26]

सैनिक जी : *"जिस तरह सूरज का डूबना एक महान सच है, **पूँजीवाद** का **नाश** होना भी उतना ही सच है। **मीलों की चिमनियाँ आग उगलेंगी** और उन पर*

*मजदूरों का कब्ज़ा होगा। **जमीन पर किसानों का कब्ज़ा** होगा। चरों ओर **लाल धुआँ** मडरा रहा है। उठो किसानों के सच्चे सपूतों! धरती के सच्चे मालिकों उठो! **क्रांति** का **मशाल** लेकर आगे बढ़ो!"*[27]

चिनगारी जी : *"ओ महान सतगुरु की सेविका*

गायिका पवित्र धर्मग्रन्थ की

*ओ **महान मार्क्स** की दर्शिका,*

सुदर्शने, प्रियदर्शिनी,

*तुम स्वयं **द्वंद्वात्मक भौतिकवाद** की*

***सिनथिसिस** हो।"*[28]

इन उद्धरणों में लेखक ने विचारधारा के अनुकूल भाषा का प्रयोग करने की कोशिश की है। ये सभी पात्र मार्क्सवादी विचारधारा के अनुयायी हैं, इसलिए इनके संवादों में वर्ग-संघर्ष, क्रांति, द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, मार्क्सवाद, पूँजीवाद, किसान, मजदूर आदि शब्दों के प्रयोग देखने को मिलते हैं।

कालीटोपी वाली पार्टी की भाषा :-

'कालीटोपी वाली पार्टी' मेरीगंज गाँव के सवर्ण जाति के लोगों की पार्टी है। इसका चरित्र 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' से मिलता जुलता-दिखाई पड़ता है। इस दल का मूल उद्देश्य भारत को हिंदू राष्ट्र बनाना और समस्त अगड़ी जाति के लोगों को अपने जातीय गौरव का इतिहास बताना है। इस पार्टी के कर्ता धर्ता मेरीगंज गाँव के राजपूत टोली का हरगौरी सिंह

है। इसके प्रचारक एवं संचालक एक बाहरी सदस्य संयोजक जी है। संयोजक के कथन के माध्यम से उपन्यास में कई जगह इस पार्टी के उद्देश्यों की घोषणा की गयी है। यथा :-

संयोजक जी : *"इस आर्यावर्त में केवल आर्य अर्थात् शुद्ध हिंदू ही रह सकता है, यवनों ने हमारे आर्यावर्त की संस्कृति, धर्म, कला-कौशल को नष्ट कर दिया है। अभी हिंदू संतान म्लेच्छ संस्कृति की पुजारी हो गयी है। शिवाजी, महाराणा प्रताप....।"*[29]

संयोजक जी : *"जिस तरह यह तहसीलदारी कायस्तों के हाथ से राजपूतों के हाथ में आई है, उसी तरह सरे आर्यावर्त के राजकाज का भार हिंदुओं के हाथ में आयेगा। और उस दिन आर्यावर्त के कोने कोने में हिंदू-राज की पताका लहराएगी।"*[30]

संयोजक जी के उपर्युक्त कथन हिन्दुवादी मानसिकता का पोषण करता है। उपन्यास के एक अन्य पात्र जोतखी (ज्योतिषी) काका इसी तरह की भाषा का प्रयोग करते हैं। जोतखी काका उपन्यास में ब्राह्मण समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं।

उपर्युक्त चारों संस्थाओं से जुड़े पात्रों की भाषा के विश्लेषण से पता चलता है कि लेखक ने मठों के सदस्यों के लिए सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग किया है। काँग्रेस की भाषा में गाँधी के प्रभाव के कारण सत्य, अहिंसा, आदि विचारों से युक्त शब्दावली का प्रयोग दिखाई पड़ता है। सोशलिस्टों की भाषा बामपंथी विचारों का पोषण करती है और कालीटोपी वालों की भाषा में अतिभारतीयता एवं सवर्णपन का दर्प दिखाई पड़ता है। इस तरह का भाषायी प्रयोग यह स्पष्ट करता है कि लेखक ने भाषा के माध्यम से पार्टी और पार्टी के सदस्यों का चरित्र चित्रण तो किया ही है साथ ही साथ भाषायी विभिन्नता के द्वारा

भाषायी राजनीति और राजनीतिक अस्मिता को भी उभारने का प्रयास किया है। इन सभी संस्थाओं की भाषा एक दूसरे से भिन्न हैं। इस तरह की भाषायी भिन्नता को संस्थागत भाषा-विकल्पन के रूप में देख सकते हैं।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि *'मैला आँचल'* में लेखक ने जाने-अनजाने व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन की अभिव्यक्ति का सफल प्रयास किया है। उपन्यास में कई भाषायी समुदायों का प्रतिनिधित्व दिखाई पड़ता है; परन्तु लेखक ने कथा और पात्रों के सम्प्रेषण को अधिक महत्व दिया है। यही कारण है कि नागा साधू की भाषा के अलावा किसी अन्य पात्रों की भाषा में इतनी एकरूपता नहीं है की उसे व्यक्ति-बोली कही जाय। बालदेव, कालीचरन, लछमी, सुमरितदास, विश्वनाथ प्रसाद आदि पात्रों की भाषा में उनकी चारित्रिक विशेषता तो अभिव्यक्त हुई है परन्तु उसमें एकरूपता नहीं है। उपन्यास के प्रारंभ में उनकी भाषा का जो रूप है, लहजा है, तेवर है, वह अंत तक जाते-जाते बदल गए हैं। समाज-बोली की दृष्टि से यह उपन्यास हिंदी की एक महत्वपूर्ण रचना है। गाँव के जितने भी पात्र हैं, या यों कहें कि गाँव का जो समाज है उसकी भाषा बाहार के लोगों की भाषा से अलग है। अर्थात् गाँव के समाज की अपनी भाषा है और बाहार के लोगों की अपनी। और ये दोनों भाषा-रूप एक दूसरे से अलग हैं। अतः इसे अलग-अलग समाजों की भाषा या समाज-बोली कह सकते हैं। भाषा-विकल्पन की दृष्टि से भी यह अत्यंत प्रभावशाली उपन्यास है। लेखक ने प्रत्येक समाज और संस्था की भाषा को एक दूसरे से अलग रखा है। यहाँ भाषा प्रत्येक पात्रों की सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता का भी सूचक है। 'रेणु' ने समाज के विभिन्न वर्ग चाहे वह किसान हो या जमींदार या डॉक्टर या सरकारी कर्मचारी सभी को भाषा के माध्यम से चित्रित करने का प्रयास किया है। इनका यही प्रयास भाषा-विकल्पन की अभिव्यक्ति को सटीक और सशक्त रूप से उभारता है। अतः कह सकते हैं

कि *'मैला आँचल'* में व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन की अभिव्यक्ति का सफल प्रयास किया गया है।

'परती : परिकथा' में अभिव्यक्त व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन

'परती : परिकथा' कलात्मकता की दृष्टि से जितना उत्कृष्ट उपन्यास है भाषायी अस्मिता की दृष्टि से उतना ही वैविध्यपूर्ण भी। शैली की दृष्टि से यह 'रेणु' के अन्य उपन्यासों से थोड़ा भिन्न है। इसकी कथा का लगभग एक चौथाई भाग पूर्व दीप्ति कथा है। कथा के इस अंश को एक पात्र के द्वारा अनुवाद के माध्यम से कहा गया है। *'मैला आँचल'* की अपेक्षा इसकी भाषा ज्यादा सुलझी हुई है या यों कहें की उसी का बदला हुआ या परिवर्धित रूप है। इसमें पात्रों कि संख्या लगभग *'मैला आँचल'* के बराबर ही है। व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन की अभिव्यक्ति भी अन्य उपन्यासों की तुलना में ज्यादा स्पष्ट और सुलझी हुई है।

'परती : परिकथा' में लगभग आधे दर्जन पात्रों की भाषा को व्यक्ति-बोली की श्रेणी में रखा जा सकता है। इनमें भिम्मल मामा, दिलबहादुर, फेकनी की माय, गोबिन्दो, सुचितलाल मड़र, मकबूल, गेंदाबाई आदि की भाषा को देख सकते हैं। जैसा कि कहा जा चुका है कि 'रेणु' भाषा के माध्यम से पात्रों का चरित्र चित्रण करते हैं। उपन्यास में एक बार परिचय प्राप्त कर लेने के बाद भाषा से ही पता चल जाता है कि यह किसके कथन हो सकते हैं। उदाहरण के लिए इन कथनों को देख सकते हैं। यथा :-

भिम्मल मामा की भाषा

> *"नों,...नों होल्डिंग डॉग-ओ-सावजेवाह्व! अपनी काष्ठ पादुका को एक तिल भी आगे जाने नहीं दूँगा। लेट कायदे-आजम डिसाइड...। हाँ-हाँ! आई वांट*

पकिस्तान। मैं चाहता हूँ पाकिस्तान विदाउट एनी अडल्ट्रेशन एंड विद सम लिमिटेशन।"[31]

"हू मेड कोकोनट! जहाँ पवन को गमन नहिं, रवि-शशि उगे न भानु-जो फल ब्रह्मा रचे नहिं सो अबला माँगत दान। व्हाट्स दैत फ्रूट? जाफल, काफल, श्रीफल, कटहल, कटहल-बड़हल, कटहल-बड़हल! हेक्सागन प्लस पेंटागन।"[32]

दिलबहादुर की भाषा

"पलटन को काम छोड़ेर सब काम कर सकता।..... पलटन छोड़ेर सब दस्ता में है।"[33]

"छोटा केटाकेटी? हाँ लड़का बच्चा का भी भोज होगा।"[34]

फेकनी की माय की भाषा

"आकि देखो! कल से ही समझा रही थी लड़कियों को कि गला फाड़कर मत गा। उधर बाभन-छतरी की बेटी पुतहुओं को देखो आकि, सलीमा ठेठर की तरह डानस कर रही है। आकि देखो?"[35]

"आकि देखो, गाँव में और भी राष्ट्री बिहा करने के लिए छौड़ीया सब छटपटा रही हैं! कौन ज़माना आया है, रे दैबा!"[36]

सूचितलाल मड़र की भाषा

"हूँजूँर! हँमाँरी अँरजीं सुँनिएँ। सँब खिलाँफ बाँत।....."

"सोंसलिंस? सोंसलिंस क्याँ, अँब हँम कौमलिंस कें साँथ रँहेंगे और कुँण्डा दँखल कँरके दिंखलाँ देंगे!"

गोबिन्दो की भाषा

"गोबिन्दो को आर समझाने नेहिं होगा। वो हमारा बोंधू दाजू हो गिया है। मातरिक, तुम्हारा ऊपर भारी खफ्फा है, बहादुर! तुम होशियारी से रहना सिंघजी।"[37]

"रात में पानी पोड़ गया कि नेही। इसी वास्ते पुकुर का माछ नेही पकड़ने सका! फिन रात में माछ। आप माछ नेही खाता? मांस भी नेही खाता? आर डीम खाता है?..."[38]

पूरे उपन्यास में इन पात्रों की भाषा व्यक्ति-बोली का सटीक उदाहरण है। भिम्मल मामा के स्वभाव में फक्कड़पन और अक्खड़पन है। इसी वजह से इनके लगभग सभी संवाद, ऊपर उल्लिखित कथनों की तरह अंग्रेजी-हिंदी मिश्रित हैं। कहीं-कहीं संस्कृतनिष्ठ हिंदी का प्रयोग किया गया है। इस तरह के संवादों का प्रयोग उपन्यास में कोई अन्य पात्र नहीं करता है। भिम्मल मामा कि भाषा की खासियत यह है कि इसमें शब्दों का पिष्टपेषण बलपूर्वक किया जाता है। ऊपर के वाक्य में प्रयुक्त **होल्डिंग डॉग-ओ-सावजेवाह्व** इसी तरह के प्रयोग हैं। ये प्रायः शब्दों को अपने अनुकूल गढ़ते है। इसमें ऐसे भी शब्द होते हैं जिसका कोई अर्थ नहीं होता है। **पेंटागन, हेक्सागन, डॉग-ओ-सावजेवाह्व** इसी तरह के प्रयोग हैं। भिम्मल मामा ऐसे शब्द गढ़ते हैं जिसका सामान्य संवाद से कोई सम्बन्ध नहीं होता या कहें कि सामान्य शब्दों को विशिष्ट बनाने की बलात् कोशिश करते हैं। **डेमोक्रेसी** के लिए **दिमाकृषि** का प्रयोग इसी तरह का प्रयास है। दिलबहादुर की भाषा में नेपाली के शब्दों का प्रयोग दिखाई पड़ता है। कहीं-कहीं इसके संवाद मानक-हिंदी में भी मिलते हैं पर

इसके **टोन** एक खास तरह का नेपालीपन लिए हुए है। यह टोन ही इसकी भाषा को अन्य पात्रों की भाषा से अलग करती है। उपन्यास में जितेन्द्रनाथ भी नेपाली का प्रयोग करते हैं पर इसकी नेपाली दिलबहादुर की नेपाली से अलग है। दिलबहादुर कि भाषा को लेखक ने सभी जगह नेपलीपन से युक्त रखने का प्रयास किया है। भिम्मल मामा और दिलबहादुर के संवादों के और भी नमूने तीसरे और चौथे अध्याय में दिए गए हैं।

व्यक्ति-बोली की दृष्टि से फेकनी की माय और सुचितलाल मड़र की भाषा विशेष उल्लेखनीय है। लेखक ने पूरे उपन्यास में फेकनी की माय के लिए एक तकिया कलाम, '*आकि देखो*' का प्रयोग किया है। इसके जहाँ भी कोइ संवाद आए हैं वे इस तकिया कलाम के साथ हैं। इस तरह के प्रयोग की वजह से फेकनी की माय को एक सिगनेचर लैंगुएज मिला है। इसी तरह सुचितलाल मड़र नाक से बोलता है। इसके सभी संवाद नेजलाईजड हैं। प्रत्येक ध्वनि में अनुनासिक ध्वनि ध्वनित होती है। लेखक द्वारा इस तरह का चित्रण किसी भी पात्र के भाषायी यथार्थ और वैयक्तिकता को चित्रित करता है।

गोबिन्दो जितेन्द्रनाथ का रसोईया है। यह बाँगला भाषायी समुदाय का सदस्य है। पर पूरे उपन्यास में यह एक दो जगह ही बाँगला का प्रयोग करता है। अन्यत्र सम्प्रेषण के लिए हिंदी का व्यवहार करता है। पर इसकी अपनी भाषायी पहचान बनी रहे इसलिए लेखक ने इसकी भाषा को एक अलग शैली प्रदान की है। इसके जितने भी कथन हैं उसे देख कर अनायास ही एक बंगाली का रेखाचित्र हमारे सामने प्रस्तुत हो जाता है। ऊपर इसके संवादों के जो नमूने दिये गये हैं; उपन्यास में वैसी भाषा का प्रयोग सिर्फ गोबिन्दो ही करता है। हालाँकि डॉक्टर राय चौधुरी भी बंगाली हैं पर इनके संवाद हिंदी, बाँगला और अंग्रेजी के शब्दों का मिश्रण हैं। बाँगलापन का जो प्रभाव गोबिन्दो के संवादों में है वह डॉ० राय

चौधुरी के संवादों में उतना नहीं है। अतः गोबिन्दो के भाषा प्रयोग की शैली को इसका अपना सिगनेचर लैंगुएज कह सकते हैं।

लेखक ने गेंदाबाई और मकबूल की भाषा को भी विशिष्टता प्रदान करने की कोशिश की है किन्तु इसका निर्वाह पूरे उपन्यास में नहीं हो सका है। इसकी पुष्टि के लिए इनके कथनों को देख सकते हैं।

मकबूल के संवाद

"साथियों! मैंने इस बात के हर पहलू पर जुदा-जुदा नुक्ते निगाह से गौर किया है। अभी हमारे एक कॉमरेड ने रिमार्क किया कि गाड़ीवान टोली में कितने सिम्पथाइजर थे! मैं कबूल करता हूँ यह हमारी और खास कर मेरी करारी हार का मजार है।"[39]

"ज़मीदारी झाँई मत दिज़िए। यह सब क़चहरी में बोलने-बतियाने क़े लिए रखिए। सीधी बात, क़ंडा दीज़िएगा सूचितलाल क़ो या नहीं? हँ - नहीं में ज़वाब दे दीज़िए-छुट्टी।"[40]

गेंदाबाई की भाषा

"ए दाजू, तोरे-मोरे खूब प्रीत हुन्छः। तोर मुँह पान से खूब लाल हुन्छः।"[41]

"क्या बोलेगी हरिया बेचारी। मर्दों की आदत तो जानती ही हो। लड़कियों को देखते ही बनबिलाड़ की तरह आँखें खोलकर इस तरह देखेगा, मनो नोचकर भागेगा।"[42]

मकबूल और गेंदाबाई की भाषा से स्पष्ट होता है कि इनके लिए लेखक ने अलग-अलग विशेष सन्दर्भों के लिए दो अलग-अलग तरह के भाषा-रूपों का प्रयोग किया है। उपन्यास में मकबूल एक हिंदू ब्राह्मण है पर राजनीतिक लाभ के लिए उसने अपना नाम पीताम्बर झा से बदल कर मकबूल रख लिया है। मकबूल अपने संवादों में सायास अरबी, फारसी के शब्दों का प्रयोग करना चाहता है। इनके उपर्युक्त कथनों से यह स्पष्ट होता है। ऊपर के पहले संवाद में जब वह अपने पार्टी के सदस्यों से बात कर रहा है तो ***जुदा-जुदा, नुक्ते निगाह, मजार*** शब्द का प्रयोग करता है। दूसरे संवाद में वह जितेन्द्र से बात करते हुए नुक्ता का बलात् और अव्यवस्थित प्रयोग करता है। यहाँ मकबूल अपने को ज्यादा प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त करने की कोशिश में ज्यादा अव्यवस्थित भाषा का प्रयोग कर रहा है। लेखक ने जितेन्द्र के माध्यम से इस ओर संकेत भी किया है :-

जीतेन्द्र : *"बाइ-द-वे तुम अंग्रेजी क्यू से तो अपनी पार्टी का नाम नहीं लिखते?"*[43]

इस कथन के माध्यम से जितेन्द्र ने मकबूल के द्वारा नुक्ते के प्रयोग पर व्यंग्य करने की कोशिश की है। इसी तरह गेंदाबाई जब दिलबहादुर से बात करती है तो अपनी हिंदी में नेपाली का छौंका लगाने की कोशिश करती है। जबकि अन्य जगह सामान्य हिंदी का प्रयोग करती है। इस प्रकार विभिन्न सन्दर्भों में अलग-अलग भाषा-रूपों के माध्यम से महज सन्दर्भ बोध का अंतर होता है, इसे व्यक्ति-बोली का नमूना नहीं कह सकते। कुछ हद तक रोजउड के दरवान हीरा मंडल की भाषा को व्यक्ति-बोली कहा जा सकता है। उपन्यास में उसके दो तीन संवाद हैं। और सभी संवाद हिंदी और अंग्रेजी का मिश्रण है। इसके संवादों का उदाहरण पिछले अध्याय में कूट-मिश्रण और कूट-अंतरण के प्रसंग में दिए जा चुके हैं।

'परती : परिकथा' में समाज-बोली की दृष्टि से कोई एक सीधी रेखा खींच पाना कठिन है। जिस तरह के समाज का चित्रण *'मैला आँचल'* में किया गया है वैसा ही समाज यहाँ भी है। पर यहाँ का समाज अपेक्षाकृत ज्यादा शिक्षित है और राजनीतिक रूप से सचेत भी। गाँव का समाज एक दूसरे से उच्च घनत्व वाला सामाजिक संजाल से जुड़ा है इसलिए भाषायी आदान-प्रदान भी निरंतर बना रहता है। यही कारण है कि समाज के अनेक स्तर में वर्गीकृत होने के बावजूद भाषा में ज्यादा अंतर नहीं दिखाई पड़ता। पूरे उपन्यास में दो समाजों की भाषायी अस्मिता पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हुई है; एक परानपुर गाँव के लोगों की भाषायी अस्मिता और दूसरी अंग्रेजी शासकों की भाषायी अस्मिता। उपन्यास में परानपुर के लोगों की भाषा मानक-हिंदी है पर इस पर क्षेत्रीय भाषा के आरोह-अवरोह का प्रभाव है। अंग्रेज पात्रों के संवाद मानक-हिंदी और अंग्रेजी में हैं। कहीं-कहीं कूट-मिश्रण और कूट-अंतरण का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए इन नमूनों को देख सकते हैं :-

बलभद्दर चौधरी : *"अजी कोशिश करने से क्या नहीं होता?... उधर मुंशी जलधारी रोज सर्वे-कचहरी में मुझसे कूट करता है - कहिये चौधरी जी, हमलोग को इस गाँव में बसने दीजियेगा या नहीं ?"*[44]

गंगाबाई : *"तो इसमें डरने की क्या बात? मेले में हिरिया की माँ ने ही लड़ाई झगड़ा करके कानून पास कराया है कि किसी के मवक्किल को कोई नहीं फुटवावे। जो कानून मेले में वही गाँव में।... हिरिया की बीमारी का पाता नहीं है अभी किसी को!"*[45]

रोजउड की माँ : *"सो यू लव मिस्सा?.... वह किसी राजा से कम है।"*[46]

रोजउड : *"मैं पहले ही सब कुछ भूल चुकी हूँ... आइ हैव सोल्ड माइ सेल्फ।"*[47]

इन चारों कथनों में पहले दो संवाद परानपुर के लोगों के हैं। और अंतिम दो कथन जितेन्द्रनाथ की सौतेली माँ और नानी के हैं; ये दोनों अंग्रेजी पात्र हैं। इन कथनों में ऊपर के दोनों की संरचना हिंदी की है। इनमें कुछ शब्द जैसे **कूट, फुटवावे** शब्द देशज अंदाज में प्रयुक्त हुए हैं। रोजउड और उसकी माँ के संवादों में अंग्रेजी और हिंदी के वाक्यों का कोड-स्विचिंग है। इस तरह के भाषा-प्रयोग के दो उद्देश्य हो सकते हैं। एक तो पात्र की अपनी भाषायी अस्मिता बनी रहे और दूसरा पाठक को कहानी ठीक-ठीक समझ में आ जाय। कहना न होगा कि लेखक ने इसमें सफलता पाई है। इस तरह के भाषायी प्रयोगों से पात्रों की समाज-बोली का निर्णय भी आसानी से किया जा सकता है। रचनाकार ने जिस कथा-क्षेत्र को कहानी का विषय बनाया है वह भाषिक दृष्टि से अत्यंत संपन्न और जटिल क्षेत्र है। वहाँ की भाषा के बारे में भाषायी समाज के विश्लेषण के प्रसंग में पर्याप्त चर्चा की जा चुकी है। इस उपन्यास में लेखक ने यहाँ के लोगों की भाषा मानक-हिंदी रखी है, जिसमें पात्रानुकूल तद्भव और देशज शब्दों का प्रयोग किया है। पढ़े-लिखे और राजनीति से जुड़े पात्र अंग्रेजी का निःसंकोच प्रयोग करते हैं। जितने भी विदेशी पात्र हैं उनकी समाज-बोली अंग्रेजी है। अपने कथन में लगभग सभी विदेशी पात्रों ने अंग्रेजी का प्रयोग किया है। लेखक ने पाठकों की सुविधा के लिए अंग्रेजी और हिंदी दोनों भाषाओं में कथन को दोहराने का प्रयास किया है। कहीं-कहीं केवल हिंदी या केवल अंग्रेजी में ही इनके संवाद मिलते हैं। *'जुलूस'* या *'पल्टू बाबू रोड'* में तो लेखक ने कहीं-कहीं केवल बाँगला का प्रयोग किया है और फुट नोट भी नहीं दिया है। ऐसे संवादों के पीछे लेखक आश्वस्त है कि पाठक इसे समझ लेंगे अथवा 'रेणु' को यह विश्वास है कि उनके पाठक इन भाषाओं को समझते हैं।

इन दोनों समाज बोलियों के अतिरिक्त उपन्यास में दो अन्य समाज-बोलियों के संकेत मिलते हैं। बाँगला समाज-बोली और नेपाली समाज-बोली। गोबिन्दो और डॉक्टर राय

चौधुरी के संवाद कहीं बाँगला में और कही बाँगलापन युक्त हिंदी में अभिव्यक्त हुए हैं। पर इस तरह की भाषा का प्रयोग इन्हीं दोनों पात्रों के संवादों में है। इसी तरह दिलबहादुर, कंछिमाया और कुछ अन्य नेपाली पात्रों के कथन नेपाली भाषा में व्यक्त हुए हैं। अतः इन पत्रों के माध्यम से दोनों समाजों की बोली मुखर रूप से अभिव्यक्त तो नहीं हुई है पर संकेत अवश्य मिलते हैं।

भाषा-विकल्पन कि दृष्टि से देखा जाय तो यहाँ अत्यंत बारीक़ विकल्पन परिलक्षित होता है। इसके कई कारण हो सकते हैं। 15 अगस्त 1947 को जब लोग गुलामी के बंधन से मुक्त हुए तो सबसे पहले उसने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को महसूस किया। लोगों ने खुल कर बिना किसी भय-संकोच के बोलना शुरू किया। इसके कुछ संकेत इस उपन्यास में पात्रों के भाषा-प्रयोग में दिखाई पड़ते हैं। जितेन्द्रनाथ और लूतो दोनों समवयस्क हैं। लूतो का जितेन्द्रनाथ से आपसी मतभेद है। जितेन्द्र ने विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त किया है उच्च जाति में पैदा हुआ है और लूतो अशिक्षित और निम्न जाति का सदस्य है। शिक्षा और जातिगत अंतर के कारण इनकी भाषा में भी एक असमानता दिखाई पड़ती है जिसे लेखक ने बखूबी दर्शाया है।

जितेन्द्रनाथ की भाषा

> *"क्या मतलब? आप देख रहे हैं न! इतने लोग लाठी-भाला लेकर मेरे कलमबाग में जुटे हुए हैं। मैं अकेला हूँ, निहत्था हूँ, अपनी जमीन पर खड़ा हूँ।... बखेड़ा मैं कर रहा हूँ?"*[48]

"विश्वास करोगी? अभी ही, कुछ ही क्षण पहले ढूढ़कर निकला है। अचानक हजारीबाग की केनाड़ी की याद आई।... और इस तस्वीर में तुम्हारे पीछे केनाड़ी पहाड़ी भी मुस्कुरा रही है।"[49]

लूतो की भाषा

*"तब कर चुके **तुम** लीडरी! बाप की बात बड़ी या लीडर की? बोलो! बोलो! जबाब दो, किसकी बात का ज्यादा पोजीशन है? इसलिए जब कहते हैं तो कहते हो कि **लूतो बाबू कूट** करते हैं हमेशा!"*[50]

*"ए बिठौलीवाली! सुनती है? नींद में क्या बकर-बकर बोल रही है? **साली** सपने में भोज खा रही है।"*[51]

कहा जा चुका है कि जीतेन्द्र एक शिक्षित और संभ्रांत पात्र है और लूतो अशिक्षित और सामाजिक वरीयता में निम्न समझी जाने वाली जाति से सम्बन्ध रखता है। परन्तु उपन्यास में राजनीतिक स्वतंत्रता के कारण वह अपने समाज का प्रतिनिधित्व कर रहा है। राजनीतिक अधिकार के कारण इसकी भाषा में पर्याप्त आधुनिकता और बहुभाषिकता के संकेत मिलते हैं। फिर भी दोनों की भाषा मे थोड़ा फर्क है। जितेन्द्रनाथ के उपर्युक्त संवादों में विनम्रता और संवेदनशीलता दिखाई पड़ती है। इसके द्वारा प्रयुक्त संबोधन सम्मानजनक और संतुलित है। पुलिस से बात करते हुए हमेशा ***आप*** शब्द का प्रयोग करता है। इरावती के साथ पहाड़ी भी मुस्कुरा रही है। इन दोनों कथनों के अलावा भी उपन्यास में अनेक प्रसंग हैं जहाँ जितेंद्रानाथ की भाषा इसी तरह के संबोधन और संतुलन के साथ प्रयुक्त हुई है। कई प्रसंगों में आत्मीयता का चर्मोत्कर्ष भी दिखाई पड़ता है। इसके विपरीत लूतो की भाषा अक्खड़पन युक्त घमंडी और असंवेदनशील है। महिचन जाति की वरीयता में

इससे निम्न है इसलिए हमेशा ***तुम*** कह कर संबोधित करता है। अपनी श्रेष्ठता साबित करने के लिए स्वयं अपने नाम के साथ ***बाबू*** शब्द का प्रयोग करता है। पत्नी के द्वारा नींद में बड़बड़ाने पर गाली देता है। लूतो की भाषा में कुछ अंग्रेजी के शब्दों के प्रयोग देखने को मिलते हैं। इसके कई कारण हैं। एक तो वह अपने भाषायी चमत्कार को दिखाना चाहता है, इसीलिए वह अंग्रेजी सीख रहा है। दूसरा हमेशा शिक्षितों और ऊँचे ओहदे वालों के साथ रहने की वजह से उसकी भाषा में ये शब्द आ गए हैं। पर लूतो का यह प्रयोग हमेशा स्वाभाविक नहीं होता बल्कि सायास अंग्रेजी के शब्दों का पिष्टपेषण करने का प्रयास करता है। शिक्षा और जातीयता का प्रभाव पुरुषों पर ही नहीं बल्कि महिलाओं की भाषा पर भी है। यथा :

ताजमनी : *"मंदिर और हवेली-घर के कमरों की सफाई के लिए मुंशी जी को मजदूर नहीं मिलते हैं। और दुनियाँ-जहान के फरेबी कामों के लिए उन्हें आदमी ढूंढ़ते फिरते हैं। आज अगर मालकिन माँ होती!"*[52]

इरावती : *"ओ-हो! मालूम होता है डॉक्टर राय चौधुरी आकर प्रचुर पाइरिथ्रम का बीज बो गए हैं। तीन साल तक मक्खी मारने वाले फूल के पीछे लगे रहे। मक्खी मारना कहावत है न?"*[53]

सोमबत्ती : *"यह बुलबुल तुम्हीं पढ़ी-लिखी लड़कियाँ आपस में बोलो-बतियाओ। सोमबत्ती फैशनी ही कहेगी। हमको भी कोई इम्तिहान देकर पास होना है?"*[54]

गंगाबाई : *"हुजूर! बेअदबी माफ करल जाउ। मेले की आमदनी से ही हम लोगों का साल भर का खर्चा निकलता है।... और जब सरकार की ओर से ममानियत*

है तो कानून सब के लिए एक बराबर है। एक तरफ़ा गरिबमार नहीं कीजिये हाकिम बाबू।"[65]

ऊपर दिए गए कथनों में प्रथम दो संवाद शिक्षित और संभ्रांत सदस्य के हैं तथा अन्य दो गाँव की सामान्य महिलाओं के। ताजमानी नट्टिन है पर उसका पालन-पोषण जितेन्द्रनाथ के घर में हुआ है। ताजमनी गाँव के जमींदार जितेन्द्रनाथ की प्रेमिका है। इरावती एक संभ्रांत परिवार की शिक्षित महिला है। आजादी के समय यह लाहौर से विस्थापित होकर भारत आ गई है और देश के विभिन्न हिस्सों में भ्रमण करने के बाद अभी अपने मामा के साथ कोसी क्षेत्र में रह रही है। इन दोनों पात्रों की भाषा मानक-हिंदी है। सोमबत्ती पीसी परानपुर गाँव की बेटी है और गंगाबाई परानपुर के नट्टिन समाज की मुखिया। ये दोनों अशिक्षित हैं इसलिए लेखक ने इनकी भाषा में तद्भव और देशज शब्दों का प्रयोग किया है। रचनाकार का यह प्रयोग जितना स्वाभाविक है उतना ही सृजनात्मक भी। इनके संवादों में ***बोलो-बतियाओ, फैशनी, इम्तिहान, बेअदबी, माफ करल जाउ, आमदनी, ममानियत, गरीबमार, हाकिम*** आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। इसमें **फैशनी** अंग्रेजी के **फैशन** शब्द का देशज रूप है। बाकी शब्द अरबी-फारसी से हिंदी में आयातित किये गये हैं। पढ़े-लिखे पात्र भी इन शब्दों का प्रयोग करते हैं पर उनके यहाँ इनकी मूल ध्वनियों का प्रयोग दिखाई पड़ता है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि 'परती : परिकथा' में लेखक ने भाषा के माध्यम से चरित्र निर्माण का बेजोड़ मिसाल प्रस्तुत की है। आजादी के बाद भारत की सामाजिक संरचना किस तरह बदल रही थी उसे इन्होंने भाषायी-विकल्पन के माध्यम से दर्शाने का प्रयास किया है। यहाँ भी *'मैला आँचल'* की तरह काँग्रेस और सोशलिस्ट पार्टी की चर्चा की गयी है पर यहाँ दोनों कि भाषाओं में उतना अंतर नहीं दिखाई पड़ता, जितना वहाँ है। दोनों

की भाषा में तोड़-जोड़ की राजनीति का असर और सत्ता पाने की लालसा दिखाई पड़ती है। व्यक्ति-बोली की दृष्टि से यह 'रेणु' के अन्य उपन्यासों की तुलना में ज्यादा सशक्त है। सामाजिक स्तर भेद को ध्यान में रखते हुए समाज-बोली और भाषा-विकल्पन को भी गंभीरता से उभारा गया है।

'दीर्घतपा' में अभिव्यक्त व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन

'दीर्घतपा' 'रेणु' के अन्य उपन्यासों से थोड़ा अलग है। इसकी कथावस्तु पूर्णिया अंचल न होकर पटना का एक 'विमेंस वर्किंग होस्टल' है। पटना बिहार की राजधानी है इसलिए यहाँ बिहार के अन्य जिलों की अपेक्षा सम्भ्रांत और शिक्षित लोगों कि संख्या अधिक है। राजकाज का केन्द्र होने के कारण यहाँ अनेक भाषायी समाज के लोग निवास करते हैं। बहुभाषिक समाज के बीच यहाँ की लिंग्वाफ्रेंका हिंदी है।

इस उपन्यास के अधिकांश पात्र शिक्षित हैं इसलिए इन सबों की भाषा मानक-हिंदी है। कुछ पात्र परिस्थिति के अनुकूल कोड-मिक्सिंग और कोड-स्विचिंग का प्रयोग करते हैं। सीमित कथावस्तु होने के कारण उपन्यास में व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन का बहुत मुखर प्रयोग नहीं दिखाई पड़ता। कहीं-कहीं इसके कुछ छिट-पुट उदाहरण देखने को मिलते हैं।

व्यक्ति-बोली की दृष्टि से देखा जाय तो पूरे उपन्यास में सुखमय घोष एक ऐसा पात्र है जिसकी भाषा में एकरूपता है और अन्य पात्रों की भाषा से विलक्षण भी। सुखमय घोष 'वर्किंग विमेंस हॉस्टल' का क्लर्क है। यह मूलतः बाँगला भाषी समाज का सदस्य है जिसकी पुष्टि उपन्यास में प्रयुक्त इसके कथनों से होती है। एक बाँगला भाषी की हिंदी

सामान्य हिंदी भाषी से अलग होती है। लेखक ने भाषायी समाज की इस विशिष्टता को बखूबी उभारने का प्रयास किया है। यथा :

सुखमय घोष : *"तब हँम इंग्रेजी में उसको गालागाल देकर चला आया। खूब गुस्सा होके बोला मेम साहब तो हमारा अगारी में आई नहीं। आने से हँम जरुर इनसाल्ट करता।"*[56]

सुखमय घोष की भाषा के विश्लेषण से पता चलता है कि इसका कथन हिंदी में है जिस पर बाँगला का प्रभाव है। प्रायः बाँगला भाषी ***हम*** को ***हँम*** बोलता है और क्रिया के बाद नकारात्मक संकेत का प्रयोग करता है। ऊपर के कथन में घोष ***अगरी में आई नहीं*** का प्रयोग किया है। एक सामान्य हिंदी भाषा-भाषी इस तरह का प्रयोग नहीं के बराबर करता है। सुखमय घोष पूरे उपन्यास में इसी तरह की भाषा का प्रयोग करता है इसलिए इसे व्यक्ति-बोली कि श्रेणी में रख सकते हैं। सुखमय घोष के संवाद से ऐसा प्रतीत होता है कि वह बाँगला भाषी है पर लेखक ने उसके मूल आवास को लेकर कोई टिपण्णी नहीं की है। हाँ इतना सन्दर्भ जरुर मिलता है कि बहुत से बंगाली परिवार पटना आकार बस गए हैं। ऐसे में अगर सुखमय घोष की पहली भाषा हिंदी है तो इसे इसकी व्यक्ति-बोली कहेंगे अन्यथा इसे एक बाँगला भाषी की हिंदी कहना ज्यादा उपयुक्त होगा। 'परती : परिकथा' का गोबिन्दो भी इसी तरह की भाषा का प्रयोग करता है। इस उपन्यास में लेखक ने शारदा कुमारी की भाषा में 'अथि' तकिया कलाम जोड़ कर उपन्यास के अन्य पात्रों से थोड़ी अलग पहचान देने की कोशिश की है। यथा :

शारदा कुमारी : *"दीदीजी, इस कलटेरी का 'अथि' खराब है। कितनी 'अथि' करते हैं, अथिए न होता है।"*[57]

उपन्यास में अन्यत्र शारदा के संवाद इसी अंदाज में अभिव्यक्त हुए हैं। लेखक द्वारा इस तरह का प्रयोग ठीक वैसा ही है जैसे 'परती : पारीकथा' में फेकनी की माय की भाषा के साथ किया गया है। इसे भी व्यक्ति-बोली कह सकते हैं।

उपन्यास में मुख्य रूप से दो तरह के समाज का चित्रण किया गया है। एक पढ़ा-लिखा और सरकारी सेवा या व्यक्तिगत पेशे से जुड़ा मध्यर्गीय समाज है। इसमें श्रीमती ज्योत्स्ना आनंद, बेला गुप्त, रामला चटर्जी, मिस्टर आनंद, बागे, रमा निगम, शिप्रा मजुमदार, मिस रेवा वर्मा आदि हैं। और दूसरे समाज के रूप में बिहार के गाँव-देहात से नर्सिंग का प्रशिक्षण लेने आईं साक्षर लड़कियाँ एवं महिलाएँ, कुंती देवी, शारदा कुमारी, विभावती, जानकी देवी, रामरती, चंद्रमोहिनी, गौरी देवी आदि के हैं। इनकी भाषा में अत्यंत सूक्ष्म अंतर है जिसके आधार पर इन्हें समाज-बोली कह सकते हैं।

शिक्षित पात्रों की भाषा

बेला : *"आपके ऑफिस में नहीं है तो आप मुझसे डुप्लिकेट कॉपी माँगिए।"*[58]

ज्योत्स्ना : *"देखो बेला उसने सिर्फ खत टाइप किया है। हिसाब मैंने माँगा है। जो कुछ कहना हो मुझसे कहो।"*[59]

समूह : *"मिस गुप्त, अब तो यहाँ रहना मुश्किल हो गया है*

टेरिबल

न मालूम, किस जंगल से इन्हें फसाया गया है। कहाँ की है सब?

मिस गुप्त! अब यहाँ किसी दिन छुरा चलेगा। सहसराम की लेडी डॉक्टर का मर्डर भी ऐसे ही हुआ था।"[60]

बागे : *"भाभी बागे के रहते रिजर्वेशन की फिकर मत कीजिये। मैं सब ठीक कर दूँगा। गाड़ी खुलने के पाँच मिनट पहले तक मैं रिजर्वेशन करवा सकता हूँ।"*[61]

ग्रामीण साक्षर पात्रों की भाषा

गौरी देवी : *"जी दीदीजी- मेरा छोटा भाई चुनमुन बड़ा नटखट है। मुझे जब किसी काम से घर में खोजता था तो यही गीत गाता था।"*[62]

रामरति : *"यह गौरी देवी बहुत हरपटाही है। पेड़ पर चढ़कर अमरूद तोड़ती है और कुतरती है। औरत है कि गिलहरी...।"*[63]

कुन्तीदेवी : *"वह लोंडिया, विभावती आपके कान में फुसफुसाकर न जाने क्या-क्या लगा गयी और आपको परतीत हो गया? एकतरफा बात सुनकर किसी को जरेबार नहीं करना चाहिए।"*[64]

चंद्रमोहिनी : *"यह झूठ बोलती है, दीदीजी! यह हर रोज सोमवार को घर से आते ही अपने-आप बकना शुरू करती है।"*[65]

इन कथनों से पता चलता है कि जो शहर के मध्यवर्गीय शिक्षित पात्र हैं उनका संवाद मानक-हिंदी में है पर इसमें अंग्रेजी के शब्दों का मिश्रण भी किया जा रहा है मसलन ***डुप्लिकेट कॉपी, टाइप, टैरिबल, मर्डर*** आदि। नर्सिंग की ट्रेनिंग के लिए गाँव से आयी महिलाओं की भाषा भी सामान्य हिंदी में ही अभिव्यक्त हुई है पर इनके संवादों में अंग्रेजी के शब्दों का अभाव मिलता है। इसकी जगह हिंदी और अरबी-फारसी के तद्भव और देशज शब्दों का प्रयोग मिलता है, मसलन ***हरपटाही, जरेबार, बकना, परतीत*** आदि।

ऊपर के संवादों के आधार पर कह सकते हैं कि लेखक ने कथावस्तु के अनुरूप पात्रों की भाषा का प्रयोग किया है। इन प्रयोगों में पात्रों की बहुभाषिकता के दर्शन होते हैं पर व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं हो पाती। यहाँ के समाज और कथानक में भी उस तरह की पर्तें नहीं है कि भाषा के विविध रूपों का प्रयोग किया जा सके। लेखक ने कहानी की आवश्यकता के अनुरूप भाषा का प्रयोग किया है।

'जुलूस' में अभिव्यक्त व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन

'जुलूस' में भाषायी समाज की दृष्टि से सीधे-सीधे और परोक्ष रूप से चार भाषायी समाजों को देख सकते हैं। कहानी का केन्द्रीय समाज नबीनगर कॉलोनी का शरणार्थी है। इसलिए ज्यादा संवाद इसी भाषायी समाज के हैं। दूसरी प्रमुख भाषा गोड़ियर गाँव के भाषायी समुदाय की है। तीसरी भाषा तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान के जुमापुर गाँव के कुछ लोगों की है तथा चौथी भाषा संथाली भाषायी समाज की है।

पूरे उपन्यास में किसी भी पात्र की भाषा को विशिष्ट नहीं बनाया गया है। इसलिए व्यक्ति-बोली की दृष्टि से यह उपन्यास बहुत ज्यादा उल्लेखनीय नहीं है। लेखक ने रब्बी और कारे की भाषा को कहीं-कहीं सामान्य से थोड़ी अलग पहचान देने की कोशिश की है। रब्बी और कारे के जो संवाद गोड़ियर गाँव के लोगों के साथ हैं वे या तो मानक-हिंदी हैं या हिंदी के गँवई रूप, पर जो संवाद नबीनगर कॉलोनी के लोगों के साथ हैं वे गँवई हिंदी हैं जिनमें बाँगलापन का पुट दिखाई पड़ता है। उदाहरण के लिए इन संवादों को देख सकते हैं-

कारे : *"पालवेत (मित्र) कुछ याद आती है? अभी जो गीत हो रहा था उसका 'भास' (लय) ठीक बिहुला-विलाप से नहीं मिलता?"*[66]

रब्बी : *"खोल का ताल तो वही है।"*[67]

कारे : *"पालवेत चलोगे?"*[68]

रब्बी : *"नहीं पालवेत, कोलोनी का कानून बहुत खराब है।"*[69]

कारे और रब्बी गोड़ियर गाँव के हैं। ऊपर के संवादों में ये आपस में हिंदी में बात कर रहे हैं जिसमें कुछ गँवई शब्द जैसे **'पालवेत', 'भास'**, का प्रयोग हुआ है। यही दोनों पात्र जब गोपाल पाइन से बात करते हैं तो इनकी भाषा बदल जाती है। यथा:

कारे : *"नामोस्कार हे कत्ता। हामी मोंइस खो जै यांछी। इ दिके आईयाछी तो मिष्टी गान सुनीया मन लो मैयाछी ताहि से एइखान दाड़ैयाछी तो कोई बेजाय करैयांछी? नोमोस्कार।"*[70]

रब्बी : *"ना-ना। ओई सीठी ना बाजैया। सीठी हरगिस न बजैया। हामरा भालो-नोक। बदनोक नाही।"*[71]

उपन्यास में इन दोनों के कथनों के अलावा बाकी किसी पात्र की भाषा इतनी अलग नहीं है जिसे व्यक्ति-बोली कहा जा सके। बल्कि रब्बी और कारे भी हमेशा इस तरह की भाषा का प्रयोग नहीं करते। यह प्रयोग ठीक उसी तरह का है जैसा 'परती : परिकथा' में गेंदाबाई और मकबूल की भाषा में है। इसलिए इसे एक विशेष सामाजिक संदर्भ में प्रयुक्त भाषा-शैली के रूप में देखना ज्यादा उपयुक्त होगा।

उपन्यास की भाषा के विश्लेषण से पता चलता है कि इन चारों समाजों, शरणार्थी समाज, गोड़ियर गाँव का समाज, संथाली समाज और जुमापुर के समाज की भाषा एक दूसरे से भिन्न हैं पर ये सभी समाज आपसी भाषा व्यवहार में एक जैसी भाषा-रूप का

प्रयोग करते हैं। चूँकि ये आपस में एक जैसी भाषा का प्रयोग करते हैं इसलिए इनकी भाषा को समाज-बोली (Sociolect) कह सकते हैं। उदाहरण के लिए इन समाजों की भाषा के नमूनों को देख सकते हैं।

शरणार्थियों की भाषा

हरलाल साहा : *"सी हुति पारे ना...कहाँ अपना देश और अपने देश की मिटटी और अपने देश का चावल और कहाँ इस देश का आजगुबी व्यापार।"*[72]

हरिधन मोड़ाल : *"देश का माने आर केया होगा-देश का माने देश।"*[73]

कालाचाँद : *"अरे बाबू! आप देश का जो माने बुझता है असल में हम लोग का देश का माने वो नें ही है। देश का माने जैसे बाँगला देश, बिहार देश, उड़ीसा देश वैसे माफिक। हे-हे..।"*[74]

छिदामदास : *"ओवर्सियेर बाबू, देश बोलिए प्रदेश बोलिए की प्रान्त कहिये- अब तो जो है सो यही नोबीन नगर ग्राम!"*[75]

पवित्रा : *"जो भी कहो, वह आदमी ठीक ही कहता है। देश माने हिन्दुस्तान!"*[76]

कालाचाँद की माँ : *"दीदी ठाकरून देश माने हिन्दुस्तान की करे हम बुझाइया दिन?.... कैसे देश माने हिन्दुस्तान हो? हमलोग के गाँव का नाम है नबीननगर और यहाँ के लोग कहते हैं पाकिस्तानी टोला?... अमार की मोछलमान?... तो हम पाकिस्तानी कैसे हुए?"*[77]

गोणेश पाइन : *"एबार एकटा मोटा आसामी...। एक बूढ़े जेले (मछुआ) को पकड़ा है। पैसा वाला आदमी है। मछुआ है तो क्या हुआ! बुड्ढा है तो क्या और कहती है अपने को 'बामुनेर मेये'? छिः छिः...।"*[78]

किश्टो मोड़ाल : *"उई देखून। साली का यार आ गाया, फटफटिया लेकर।"*[79]

ऊपर जितने भी कथन उद्धृत किये गए हैं वे सभी बाँगलादेश से विस्थापित शरणार्थियों के हैं। इनमें गोणेश पाइन और किश्टो मोड़ाल को छोड़कर बाकी सभी नबीनगर कॉलोनी के शरणार्थी हैं। इनकी भाषा पर गौर करें तो पायेंगे कि इनके वाक्यों की भाषिक संरचना कहीं पर बाँगला का है जिसमें हिंदी के शब्दों और पदों का मिश्रण हुआ है और कहीं-कहीं वाक्यों की भाषिक संरचना हिंदी की है जिसमें बाँगला के शब्दों या पदों का मिश्रण किया गया है। पर प्रायः संवाद हिंदी में ही हैं जिसमें बाँगला के शव्दों या पदों का मिश्रण किया गया है। इनमें अधिकांश पात्र हिंदी के शब्दों का उच्चारण बाँगला की ध्वनि पद्धति के अनुसार करते हैं। जैसे कॉलोनी का नाम ***'नबीनगर'*** है पर यहाँ के लोग '***नोबीननगर'*** कहते हैं। बाँगला में ***नवीन*** को ***नोबीन*** बोला जाता है। इसलिए रचनाकार ने पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उभारने के लिए नबीनगर के स्थान पर नोबीननगर का उच्चारण करवाया है। नबीनगर के सदस्यों की भाषा जहाँ कहीं भी उपन्यास में आयी है, वहाँ लेखक ने प्रयास किया है कि इनकी भाषिक अस्मिता बनी रहे। ऊपर के नमूने इस बात का प्रमाण हैं। उपन्यास का दूसरा सबसे बड़ा भाषायी समाज गोड़ियर गाँव के सदस्यों का है। यहाँ के लोगों की भाषा ऊपर के चित्रित समाज की भाषा से भिन्न है। उदाहरणार्थ इन नमूनों को देख सकते हैं :-

गोड़ियर गाँव के लोगों की भाषा

ग्रामीण : *"स्कूल खुल गया पकिस्थनियाँ टोला में। मिडिल स्कूल।"*[80]

तलेवर गोढ़ी : *"मिडिल ही क्यों, हाई स्कूल भी खुल सकता है। - जो सचमुच अपने बच्चों को पढ़ाना चाहता है, सरकार उसके लिए स्कूल जरुर खोलेगी। इसमें अचरज करने की क्या बात है।"*[81]

मोहन दफादार : *"गाँव के लोग दस साल से चिल्ला रहे थे स्कूल-स्कूल, मगर स्कूल के नाम पर एक चटसार भी नहीं खुला कभी। उधर देखिये- पकिस्थनियाँ सब को आये हुए छह महीने भी नहीं हुए हैं, मिडिल स्कूल खोलने का औडर पास हो गया है।"*[82]

ग्रामीण : *"वाजिब बात, वाजीब बात!*

: *सही कहते हैं आप।*

: *असले कहते हैं।*

: *हाँ भाई, बात तो तलेवर भाई साढ़े सोलह आने सही कहते हैं।"*[83]

कुताय धनुक : *"केश एड़ी तक तो नहीं पर केश सभी को है। देखने जोग केश..."*[84]

रामचंदर चौधरी : *"अगर स्कूल का पैसा खाकर बंगलिया सब नहीं भागे तो मेरा नाम रामचंदर चौधरी नहीं कुकुरचंदर चौधरी कहना। जितने निठल्ले और कामचोर लोग थे सब रिफूजी हो गए हैं। मगर पंजाबी रिफूजी ऐसे नहीं। पटना में जवीशन रोड के बगल में लौलोसेन के सामने एक पंजाबी रिफूजी की पकौड़ी की दुकान थी बलिस्टर साहब के बासा से सटे हुए ही।"*[85]

पहलवान : *"एक पाई नहीं। एक लाल पैसा भी नहीं दूँगा। तुम लोग... तुम लोग कोई भी असल राजपूत की बेटी नहीं। तब कैसे पुतोहु? रखेलिनों को मनीआडर में क्या हक?"*[86]

बड़ी पुतोहु : *"अपने कौन उत्तिम राजपूत हैं यह सभी को मालूम है। इससे तो गहलोत राजपूत (दुसाध) भला।"*[87]

छोटी पुतोहु : *"बैठा खाय तुरंग... इन कमाने वालों को भी तनिक लाज नहीं। साल भर बाहर नौकरी करेगा - दो महीने के लिए घर आकर साल भर का हिसाब वसूल करेगा... उस बार इतना रूपया भेज दिया। फलने महीने बाबूजी को लिखा दिया था कि फलानी को दो रूपया हाथ खर्च दे दीजिएगा - सो क्या हुआ? मैं आज ही कामदेव से चिट्ठी लिखवाती हूँ उस सिपाही मरदुआ को कि घर में आकार कमर तोड़ोगे बहु की- मनीआडर भेजते हो बाप के नाम! अफीम खाने के लिए?"*[88]

उपर्युक्त सभी कथन गोड़ियर गाँव के लोगों के हैं। इनके वार्तालाप की भाषा हिंदी है। इनकी भाषा नबीनगर कॉलोनी के लोगों से कई दृष्टि में भिन्न है। ये प्रायः मानक-हिंदी का प्रयोग करते हैं। इनके कथन में बाँगलापन नहीं है। कथन में गँवईपन और तद्भव शब्दों का प्रभाव दिखाई पड़ता है, मसलन ***जोग, मरदुआ, तुरंग, पुतोहु, रखेलिन, बंगलिय, रिफ़ूजी, पकिस्थनियाँ, चटसार, बासा, बलिस्टर*** आदि शब्दों का प्रयोग दिखाई पड़ता है। इस गाँव के सभी लोग इसी तरह की भाषा का प्रयोग करते हैं इसलिए इसे इस गाँव की समाज-बोली (Sociolect) कह सकते हैं।

इन दोनों समाजों के अतिरिक्त उपन्यास में दो अन्य समाजों को सांकेतिक रूप से चित्रित किया गया है। एक समाज पूर्वी पाकिस्तान के जुमापुर गाँव के मुसलमानों का है। उपन्यास में इसका प्रसंग स्वप्न के माध्यम से आया है। ये सभी बाँगला भाषा-भाषी हैं, इसलिए इनके संवाद अधिकांशतः बाँगला में ही हैं। रचनाकार ने बोधगम्यता की दृष्टि से हिंदी के खंडित वाक्यों का प्रयोग किया है। पवित्रा भी इसी भाषायी समुदाय का सदस्य है। यथाः

समूह : *"अल्ला हो अकबर!! और शिकार छटपटा रहा है। लाशें तड़प रही हैं? बडंदा के धरेछे? बड़े भैया को पकड़ लिया? सर्वनाश! अल्ला हो- मानिक पकड़ा गया? सर्वनाश! आग में झोंक दिया? बाबा कोथाय? बाबा? माँ गो? तुमी कोथाय?... साला बूड़ा कोथाय? सालार बेटी कोथाय? उर बेटी को आमी..? ना, आगे आमी? जे धरबे से आगे! घर घर!! खोजो खोजो। आगुन लागा। अल्ला हो अकबर! कर्मफल सालार बिटी कोय?"*[89]

ये सभी संवाद बाँगला में हैं पर ठीक वैसा ही नहीं हैं जैसे नबीनगर के लोग बोलते हैं। नबीनगर के लोग पिछले पन्द्रह साल से हिंदुस्तान के उत्तर बिहार के विभिन्न प्रान्तों में रहते आए हैं इसलिए भाषायी संपर्क (Language Contact) के कारण अब इनकी भाषा वही नहीं रह गयी है जो ये अपने देश में बोलते थे। ये लगातार यहाँ के, मैथिली-अंगिका मिश्रित भाषा-भाषी के सम्पर्क में हैं इसलिए इनकी भाषा में इन भाषाओं के प्रभाव दिखाई पड़ते हैं। पर जुमापुर के लोगों की भाषा वहाँ बोली जाने वाली शुद्ध बाँगला है।

उपन्यास के अंत में एक संथाली परिवार का चित्रण किया गया है। इस परिवार की भाषा को लेखक ने पहले चित्रित तीन भाषायी समाजों कि भाषा से थोड़ा भिन्न रखा है।

इनके द्वार उपन्यास में प्रयुक्त भाषा न ही पूर्णरूपेण हिंदी है और न ही संथाली, बल्कि हिंदी में संथालीपन की महक लाने का प्रयास लिया गया है।

मोतिया : *"तूहू नाचबे आज पोबी दी। नरेश भैया भी नाचबे। सब नाचबे।"*[90]

रुपिया : *"बेटी काँदोना... तोरा नाच सिखाय देबौ।"*[91]

इन दोनों पात्रों की भाषा अन्य भाषायी समाजों की भाषा से भिन्न है पर यह भाषा-रूप संथाली न होकर हिंदी का ही एक रूप है जिसका प्रयोग संथाली समाज अपने समाज से इतर के लोगों के साथ संवाद स्थापित करने में करते हैं। इस तरह के भाषायी प्रयोग से लेखक ने एक साथ कई संभावनाओं को साकार किया है। एक तो पाठक को समझने में ज्यादा कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता है और दूसरा की आसानी से भाषा के माध्यम से एक अलग भाषायी समाज का सफल चित्रण किया है।

उपर्युक्त विश्लेषण से पाता चलता है कि लेखक ने अलग-अलग समाज को पहचानने एवम् अपनी निजता में अभिव्यक्त करने के लिए अलग-अलग भाषा-रूपों का प्रयोग किया है। प्रत्येक समाज के सभी लोग आपस में एक जैसी भाषा का प्रयोग करते हैं इसलिए इन भाषाओं को इनकी समाज-बोली कहा जा सकता है।

भाषा-विकल्पन कि दृष्टि से यह उपन्यास ज्यादा उल्लेखनीय नहीं है। चूँकि इसमें अभिव्यक्त समाज में ज्यादा पर्तें नहीं हैं। सामाजिक भेद भाव के वे रूप नहीं हैं जो 'मैला आँचल' और 'परती : परिकथा' में हैं। इसी कारण भाषायी-विकल्पन भी बहुत स्पष्ट नहीं है। स्त्री-पुरुष की भाषा लगभग एक समान है। कहीं-कहीं ध्वनि में विकल्पन दिखाई पड़ते हैं। शिक्षितों और अशिक्षितों की भाषा में भेद रखने का प्रयास किया गया है।

'कितने चौराहे' में अभिव्यक्त व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन

'कितने चौराहे' 'रेणु' का लघुतम उपन्यास है। समाजभाषाविज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो कूट-मिश्रण, कूट-अंतरण और बहुभाषिकता के अतिरिक्त इसमें कुछ और विशेष उल्लेखनीय तथ्य सामने नहीं आते। लेखक ने चरित्र को केन्द्र में रख कर भाषायी प्रयोग में शतर्कता अवश्य दिखाई है। परन्तु इसमें भाषायी विविधता का वह रूप उभर कर सामने नहीं आया है जैसा 'मैला आँचल', 'परती : परिकथा', 'जुलूस' और 'पल्टू बाबू रोड' में दिखाई पड़ता है। इन उपन्यासों की तुलना में 'कितने चौराहे' में पात्र और कथानक दोनों ही बहुत सीमित हैं। इसलिए व्यक्ति-बोली एवं समाज-बोली का स्वरुप स्पष्ट नहीं हो पाया है। भाषा-विकल्पन को अभिव्यक्त करने का प्रयास लेखक ने अवश्य किया है पर इसका भी निर्वाह सर्वथा नहीं हो पाया है। उदाहरण के लिए मनमोहन के काका और मोहरील मामा के लड़के की भाषा को देख सकते हैं :-

काका की भाषा

: *"क्या मुनीजी, शहर जा कर भी इसी तरह चादर ओढ़ कर बैठे रहोगे? नया कोट जूता पहन कर जरा बाहर निकलो जंटूलमन-इश्टूडंट बनकर।"*[02]

: *"स्कौलरसिफ होल्डर होकर भी ऐसी गोबरगनेसी करता है रे?"*[03]

: *"अब तुम भी मण्डलजी मास्टर की तरह अपने बाप काका के बारे में लोगों से कहेगा 'हि इज माइ सरवेंट।'"*[04]

इन वाक्यों को गौर से देखें तो पायेंगे कि वाक्यों की संरचना मानक-हिंदी की है जिसमें अंग्रेजी के शब्दों का और वाक्यों का मिश्रण किया गया है। वाक्य के प्रयोक्ता मनमोहन के चाचा हैं। ये '*तीसरी कसम*' के हिरामन की तरह गाँव के सीधे सादे और

अशिक्षित पात्र हैं। पहले दो कथनों में अंग्रेजी के शब्दों ***जंटूलमन-इश्टूडंट*** और ***स्कौलरसिफ होल्डर*** के प्रयोग में लेखक ने पात्र की भाषिक योग्यता का पालन किया है परन्तु तीसरे वाक्य में अंग्रेजी के शुद्ध और व्याकरण सम्मत वाक्य ***हि इज माइ सरवेंट*** का प्रयोग किया है। पात्र अशिक्षित है और अंग्रेजी बोलने वालों के सम्पर्क में भी नहीं है इसलिए यह संभव है कि अंग्रेजी के आयातित शब्द का प्रयोग हिन्दीनुमा ध्वनि में करे पर पूर्णतः व्याकरण सम्मत वाक्यों का प्रयोग स्वाभाविक नहीं लगता। इस तरह के पात्रों द्वारा ऐसे कथन का प्रयोग करने के पीछे रचनाकार की क्या मनसा रही है, इस पर कोई मंतव्य व्यक्त करना या क़यास लगाना कठिन है। रचनाकार अपनी अभिव्यक्ति के लिए स्वतंत्र होता है। वह किसी भी तरह की भाषा का प्रयोग कर सकता है। परन्तु समाजभाषाविज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो इस तरह का भाषायी प्रयोग पात्रानुकूल प्रतीत नहीं होता। भाषा का ऐसा ही अतार्किक प्रयोग मोहरील मामा के बेटे मटरुआ के संवादों में दिखाई पड़ता है।

मटरुआ की भाषा

: *"अरे मैया रे-ए-ए! बांगड़वा के मार डण्डन से मुआ देलकऊ रे-ए-ए-अरे-मैया-या।"*[05]

: *"टेंगना है रे-ए-ए! आ देख, ए गो 'देहाती भुच्च' आया है। आके देख जरा।"*[06]

: *"दीदी मुझ पर हमेशा गुस्सा करती है और मोहन भैया से हँस-हँसकर बोलती है।"*[07]

: *"मोहन भैया, जानते हो, बाबा अभी क्या पीयेंगे? दारू...हि..हि.. तुम पीयोगे?"*[08]

मटरुआ के पहले दोनों संवादों को देखें तो प्रतीत होता है कि यह मानक-हिंदी के वाक्यों का क्षेत्रीय संस्करण है। लेखक ने इस भाषा-रूप के माध्यम से मटरुआ के चरित्र निर्माण की एक कोशिश की है। पर आगे इसके जितने भी संवाद हैं वे मानक-हिंदी में हैं। 'रेणु' भाषा के माध्यम से चरित्र निर्माण के सबसे सफल चितेरे माने जाते हैं पर यहाँ इनकी कोशिश पूर्णतः सफल नज़र नहीं आ रही है।

उपन्यास के अन्य पात्रों में मनमोहन, प्रियोदा, हेडमास्टर साहब, स्वामी जी, हफिज सर आदि शिक्षित पात्र हैं। इनकी भाषा पात्रानुकूल है पर व्यक्ति-बोली, समाज-बोली या भाषा-विकल्पन की दृष्टि से कुछ खास उल्लेखनीय नहीं है। इन सभी पात्रों के कथन मानक-हिंदी में हैं। कहीं-कहीं बाँगला और अंग्रेजी में भी है या इन भाषाओँ के शब्दों का मिश्रण अथवा अंतरण है। कुछ अन्य पात्र जैसे मनमोहन के पिता, शरबतिया दीदी, मनमोहन की माँ, मोहरील मामा, आदि का सन्दर्भ उपन्यास में आया है। ये सभी मानक-हिंदी का प्रयोग करते हैं। दो शिशु पात्र गुनीजी और पुष्पा का जिक्र किया गया है। इन दोनों के लिए लेखक ने मानक-हिंदी का प्रयोग तोतलाहट वाली शैली में किया है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि 'रेणु' की नज़र में यहाँ व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन का चित्रण महत्वपूर्ण नहीं है। लेखक ने भाषायी प्रयोग के माध्यम से चरित्र निर्माण की कोशिश अवश्य की है पर ज्यादा बल घटना वर्णन और भाव-सम्प्रेषण पर ही रहा है। परिणामतः ये तत्व गौण हो गए हैं।

'पल्टू बाबू रोड' में अभिव्यक्त व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन

'पल्टू बाबू रोड' में भाषा प्रयोग की विलक्षणता के दर्शन होते हैं। यहाँ पात्र एक ही वाक्य में हिंदी, अंग्रेजी और बाँगला के शब्दों का प्रयोग करते दिखाई पड़ते हैं। इस

उपन्यास के लगभग सभी पात्र बहुभाषिक हैं। फूलबागान के सभी पात्र बाँगला भाषायी समाज के हैं पर उनका जन्म बिहार के पूर्णिया जिले में हुआ है इसलिए ये सभी अंगिका, मैथिली और यहाँ की क्षेत्रीय बोली रूप को जानते-समझते हैं। घर का नौकर बौवन झा और रामटहल मैथिली भाषी हैं पर बहुत दिनों से इस घर में नौकरी कर रहे हैं इसलिए बाँगला भी जानते, समझते और बोलते हैं। इसके अलावा छोगमल, मुरली मनोहर, कुन्तला, गोधन, अनूप आदि पात्रों कि भाषा में किसी एक शैली का पता लगा पाना मुश्किल है। उपन्यास में अधिकांशतः फूलबागान में रहने वाले पात्रों कि चर्चा है। चूँकि इनके संवादों का कोई विशिष्ट शैली नहीं है इसलिए कहना अनुचित न होगा कि व्यक्ति-बोली का कोई स्पष्ट उदाहरण दिखाई नहीं पड़ता। अगर इन्हें उपन्यास का एक वर्ग मानें तो कह सकते हैं कि हिंदी-बाँगला मिश्रित भाषा इनकी समाज बोली है। यथा :

फेला : *"मलाट मने गेटअप की तस्वीर किन्तु मारात्मक है। सात ताले में बंद करके रखना होगा। रामटहल को अक्षर ज्ञान नहीं है। किन्तु यह तसवीर तो एके बारे जाच्छेताई।"*[99]

छोगमल : *"खूब भालो काकी माँ। खूब सुन्दोर एई मुड़िघंटो! वाह!!"*[100]

पल्टूबाबू : *"तब कौन जानेगा? तुम नहीं जानोगे भला? आवारा कोथाकार?"*[101]

रामटहल : *"बड़े घिनौने होते हैं ये लोग? घिना देलक।"*[102]

बौवन झा : *"हमको याद नहीं। सावन होगा या भादो...आ..गो मैया।"*[103]

इन कथनों से स्पष्ट हो जाता है कि ये सभी हिंदी-बांगला मिश्रित भाषा का प्रयोग करते हैं। पिछले अध्याय में इनके कथनों के और भी उदाहरण दिए गए हैं जिसके आधार

पर कह सकते हैं कि इनकी भाषा में हिंदी, मैथिली और बाँगला का प्रभाव एक साथ अभिव्यक्त हुए हैं। और यही इनकी समाज-बोली भी है।

उपन्यास के प्रारंभ में ही बौरगाछी के समाज का परिचय दिया गया है। यहाँ दो प्रकार के भाषायी समाज हैं। एक यहाँ के मूल निवासियों और दूसरे, देश के अन्य हिस्सों से, (खास कर बंगाल से) आकर बसे लोगों का समाज। पहले भाषायी समाज का चित्रण उपन्यास का केन्द्रीय विषय नहीं है। इसलिए इस समाज के संवादों का अभाव दिखाई पड़ता है। फिर भी जहाँ कहीं भी इनका सन्दर्भ आया है वहाँ लेखक ने इस समाज की भाषा फूलबागान के लोगों की भाषा से थोड़ी भिन्न रखा है। यथा :

खलीफा फत्तू : *"सो सब तो ठीक है। लेकिन इस बनबिलार के मुँह से बचे तो समझूँ जक्का-कबूतर!"*[104]

फूलगेंदा साह : *"एकदम बाग बाजार का रसगुल्ला ही समझो! कलकत्ता का पानी अंग-अंग से चूता है।"*[105]

खलीफा का बेटा : *"भगवानपुर के महाजन के बेटे को आज देखा था।"*[106]

यूनुस : *"तेतरी दीदी का दिल जरा भी नहीं बदला है।"*[107]

समूह : "*"कागजी शादी इसी को कहते हैं।*

- *कोई पुरोहित या मन्त्र नहीं पढ़ाया जाता रजिस्ट्री शादी में!*
- *क्या करने जायेंगे? सो ही।*
- *सो ही वही, हनिबूल।"* "[108]

इन वाक्यों से पता चलता है कि जिस तरह फूलबागान के लोगों की भाषा में बाँगलापन है वैसा प्रयोग यहाँ नहीं दिखाई पड़ता। ये सभी पात्र मानक-हिंदी में बात कर रहे हैं। कुछ शब्द, मसलन ***जक्का-कबूतर, हनिबूल,*** आदि का जिस तरह से प्रयोग किया है वैसा फूलबागान के लोग नहीं करते हैं।

व्यक्ति-बोली की दृष्टि से इस उपन्यास में फुलगेंदा साह के नौकर की भाषा को देख सकते हैं। पूरे उपन्यास में इसके दो संवाद हैं। यह अपने संवादों में 'हेंच' शब्द का प्रयोग प्रत्यय के रूप में करता है। यथा :

अधपगला नौकर : *"फुटगोल-हेंच-बूटगोल-हेंच गो-गोल-हेंच।"*[109]

: *"गरम-गरम हेंच, नरम-नरम हेंच, चरम-चरम हेंच।"*[110]

पूरे उपन्यास में इसके अलावा ऐसा कोई पात्र नहीं है जिसकी भाषा का स्वरुप इतना विलक्षण हो। हलाँकि इसके संवाद में प्रयुक्त शब्दों का कोई निश्चित अर्थ नहीं प्राप्त होता पर इन दोनों कथनों से इसकी भाषा के पैटर्न का पता चलता है।

ऊपर के विश्लेषण के आधार पर कह सकते हैं कि 'पल्टू बाबू रोड' में केवल समाज-बोली की एक स्पष्ट विभाजक रेखा दिखाई पड़ती है। इसे ही दो समाजों के बीच का भाषा-विकल्पन भी कह सकते हैं। पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है जिसके कारण उपन्यास में एक प्रवाह है। व्यक्ति-बोली और समाज-बोली को विशेष महत्व न देकर मूल कथा को ध्यान में रखा गया है।

'रेणु' के उपन्यासों का व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन की दृष्टि से विश्लेषण करने से पता चलता है कि इन्होंने भाषा में व्यक्ति और समाज को रचा है। इनके उपन्यासों का पूरा परिवेश भाषायी संजाल में गुंथा हुआ है। अध्याय की शुरुआत में

भाषा-विकल्पन पर बात करते हुए ध्वनि परिवर्तन पर चर्चा की गयी है। इस सन्दर्भ में विलियम लेबॉव, गम्पर्ज, विलियम ब्राईट का नामोल्लेख किया गया है। 'रेणु' ने अंजाने ही इन भाषाविदों के द्वारा दिए गए भाषा सिद्धांतों और भाषायी घटनाओं को अपने उपन्यासों में रेखांकित करने का प्रयास किया है। लगभग पूरे बिहार में ***'श', 'ष',*** और ***'स'***, का प्रयोग अव्यवस्थित तरीके से किया जाता है। भाषा व्यवहार की प्रक्रिया में अक्सर वक्ता ***'स'*** के स्थान पर ***'श'*** और ***'श'*** के स्थान पर ***'स'*** का प्रयोग करता है। लेखक ने *'मैला आँचल'* में कई जगह बालदेव के संवादों में ***'शायद'*** के स्थान पर ***'सायद'*** शब्द का प्रयोग किया है। इसी तरह ***'र'*** और ***'ड़'*** तथा ***'न' 'ण'*** और ***'ल'*** के प्रयोग में विकल्पन दिखाई पड़ता है। *'मैला आँचल'* में महंथ सेवादास ***रमपियरिया*** को ***रमपियड़िया*** कहता है, ***रामनारायण*** अपने नाम को ***रामलरायन*** कहता है, ***नरसिंहदास*** का उच्चारण ***लरसिंघदास*** किया गया है। इसी तरह ***'य'*** और ***'ज'*** के प्रयोग में दिखाई पड़ता है। हमेशा तो नहीं पर कहीं-कहीं कुछ पात्र ***यदि*** को ***जदि*** कहते हैं। इस तरह के प्रयोग बिहार के भाषायी समाज में स्वाभाविक हैं जिसकी ओर लेखक का ध्यान गया है। परन्तु इस प्रकार के विकल्पन कहीं-कहीं ही उपन्यासों में दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए बाँगला भाषायी समुदाय के लोग ***'व'*** का प्रयोग नहीं करते हैं। इनकी भाषा में ***'व'*** ध्वनि नहीं है। पर कई बंगाली पात्र ***'भगवान'*** शब्द का प्रयोग करते हैं '***भगबान'*** का नहीं।

व्यक्ति-बोली का चित्रण लगभग सभी उपन्यासों में देखने को मिलता है; पर 'परती : परिकथा' में इसकी अभिव्यक्ति अत्यंत सटीकता और स्पष्टता के साथ की गई है। अन्य उपन्यासों में भी व्यक्ति-बोली को देखा जा सकता है जैसे *'मैला आँचल'* में नागा साधू की भाषा, 'पल्टू बाबू रोड' का अधपगला नौकर की भाषा आदि।

'रेणु' के द्वारा इनके उपन्यासों में प्रयुक्त समाज-बोली पूरे हिंदी साहित्य में अद्वितीय है। इन्होंने भाषा के माध्यम से केवल सामाजिक अभिव्यक्ति ही नहीं दी है बल्कि उस समाज की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक चेतना और अस्मिता को अभिव्यक्त किया है। भाषायी प्रयोग के माध्यम से उस समाज की सारी योग्यताएँ और सीमाएँ अभिव्यक्त हो गयी हैं। लेखक ने जहाँ भी भाषायी बोधगम्यता की जटिलता को महसूस किया है वहाँ भी भाषायी समाज की अस्मिता को खंडित नहीं होने दिया है। बल्कि संकेतों में उसे अभिव्यक्त किया है। उदाहरण के लिए 'मैला आँचल' और 'जुलूस' में व्यक्त आदिवासी (संथाली) भाषा को देख सकते हैं। कुछ हद तक 'परती : परिकथा' में व्यक्त नेपाली भी इसी भाषायी संकेत का नमूना है।

भाषा-विकल्पन के सन्दर्भ में यह कहना उचित होगा कि 'रेणु' ने हर पात्र के लिए एक अलग तरह की भाषा रचने का प्रयास किया है। इन्होंने भाषायी विविधता को कहीं भी पाण्डित्यमय नहीं होने दिया है। लगभग सभी उपन्यासों में व्यक्ति के स्तर पर, समाज के स्तर पर, शिक्षा के स्तर पर, सामाजिक वर्चस्व के स्तर पर, लिंग के स्तर पर, जाति के स्तर पर, धर्म के स्तर पर, पेशे के स्तर पर भाषायी अस्मिता को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। उपन्यासों का विश्लेषण करते हुए सभी आधारों पर विस्तार से चर्चा नहीं की गई है, इसका मूल कारण तथ्यों की जटिलता है। चूँकि ये सभी विकल्पन एक व्यक्ति अर्थात् लेखक के द्वारा रचे जा रहे है, इसलिए मुमकिन है कि तथ्यों के विश्लेषण और निष्कर्ष में विरोधाभास हो। अतः इससे बचने के लिए इसे नज़रंदाज कर दिया गया है। इसके बावजूद अनेक विकल्पनों मसलन संस्थागत विकल्पन, शैक्षिणिक योग्यतागत विकल्पन को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

अंततः कह सकते हैं कि 'रेणु' के उपन्यासों का समाजभाषावैज्ञानिक विश्लेषण एवम् उसके अंतर्गत व्यक्ति-बोली, समाज-बोली और भाषा-विकल्पन का अनुशीलन इन रचनाओं को समझने की नवीन दृष्टि प्रदान करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

[1] रेणु फणीश्वरनाथ, *'रेणु' रचनावली, खंड-4,* राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, तृतीय संस्करण पृ.सं. 440-441

[2] 'रेणु' फणीश्वरनाथ, *'मैला आँचल',* राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, आठवाँ संस्करण (पेपरबैक्स) : 1992, नौवी आवृति 2004, पृ.सं. 29

[3] वही, 42

[4] वही, 64

[5] वही, 37

[6] वही, 48

[7] वही, 69

[8] वही, 58

[9] वही, 60

[10] वही, 128

[11] वही, 158

[12] वही, 133

[13] वही, 293

[14] वही, 90

[15] वही, 140

[16] वही, 310

[17] वही, 194

[18] वही, 126

[19] वहीओ : 236

[20] वही, 24

[21] वही, 29

[22] वही, 88

[23] वही, 88

[24] वही, 263

[25] वही, 21

[26] वही, 100

[27] वही, 103

[28] वही, 104

[29] वही, 119

[30] वही, 136

[31] 'रेणु' फणीश्वरनाथ, *परती : परिकथा,* राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, चौथा संस्करण (पेपरबैक्स) : 2009, दूसरी आवृति : 2012, पृ.सं. 73

[32] वही, 241

[33] वही, 64

[34] वही, 266

[35] वही 195

[36] वही, 263

[37] वही, 65

[38] वही, 56

[39] वही, 172

[40] वही, 174

[41] वही, 267

[42] वही, 136

[43] वही, 174

[44] वही, 117

[45] वही, 288

[46] वही, 277

[47] वही, 250

[48] वही, 54

[49] वही, 276

[50] वही,150

[51] वही, 262

[52] वही, 208

[53] वही, 276

[54] वही, 110

[55] वही, 289

[56] 'रेणु' फणीश्वरनाथ, *दीर्घतपा*, राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, प्रथम संस्करण (पेपरबैक्स) : 2008, पहली आवृति 2011पृ.सं. 29

[57] वही, 44

[58] वही, 33

[59] वही, 33

[60] वही, 37

[61] वही, 132

[62] वही, 41

[63] वही, 41

[64] वही, 64

[65] वही, 65

[66] 'रेणु' फणीश्वरनाथ, *जुलूस*, भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली 110003, आठवाँ संकरण : 2010 पृ.सं. 28

[67] वही, 25

[68] वही, 25

[69] वही, 25

[70] वही, 25

[71] वही, 25

[72] वही, 9

[73] वही, 10

[74] वही, 10

[75] वही, 10

[76] वही, 11

[77] वही, 11

[78] वही, 94

[79] वही, 94

[80] वही, 20

[81] वही, 20

[82] वही, 20

[83] वही, 20

[84] वही, 21

[85] वही, 22

[86] वही, 62

[87] वही, 62

[88] वही, 63

[89] वही, 28

[90] वही, 96

[91] वही, 96

[92] 'रेणु' फणीश्वरनाथ, *कितने चौराहे,* रेणु रचनावली खंड-3, राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, पृ.सं. 234

[93] वही, 235

[94] वही, 263

[95] वही, 241

[96] वही, 242

[97] वही, 251

[98] वही, 252

[99] 'रेणु' फणीश्वरनाथ, *पल्टू बाबू रोड,* रेणु रचनावली, खंड-3, राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, पृ.सं. 22

[100] वही, 32

[101] वही, 29

[102] वही, 46

[103] वही, 25

[104] वही, 51

[105] वही, 52

[106] वही, 52

[107] वही, 52

[108] वही,105

[109] वही, 52

[110] वही, 53

उपसंहार

समाजीकरण की प्रक्रिया में भाषा और लिपि की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भाषा के माध्यम से एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से तथा एक समाज दूसरे समाज से जुड़े। लिपि ने इनके भावों और विचारों को चित्रात्मक एवम् अक्षरात्मक रूप में सिंचित किया। यह क्रम प्राचीन काल से चल कर आज मल्टीमीडिया की दुनियाँ तक आ पहुँचा है। इस माध्यम ने केवल भावों और विचारों का संग्रह ही नहीं किया बल्कि उस भाषायी समाज की सांस्कृतिक परम्परा और भाषायी अस्मिता को भी सुरक्षित और संगृहीत किया। जिससे किसी समाज के विकास के इतिहास को जानने समझने की पद्धति अत्यंत आसान हो गई। आज पुरातत्व विभाग इसके माध्यम से अनेक सभ्यता, संस्कृति और समाज के विकास और विनाश का पाता लगा चुका है। इस तरह के श्रोतों में साहित्य भी एक महत्वपूर्ण उपकरण और सामग्री का काम करता है। साहित्य में किसी समाज की सांस्कृतिक परंपरा और भाषायी अस्मिता संरक्षित और सुरक्षित होती है; जिसे हम इनकी भाषा के माध्यम से समझ सकते है। समाजभाषाविज्ञान साहित्य के इन पक्षों के विश्लेषण में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। समाजभाषाविज्ञान में भाषा का सामाजिक प्रतीक व्यवस्था मानकर इसका विश्लेषण सामाजिक सन्दर्भों के आधार पर किया जाता है। अतः इसमें वक्ता की सामाजिक-सांस्कृतिक स्थिति का अनुमान प्रामाणिकता के साथ लगाया जा सकता है। इसी तरह का प्रयास प्रस्तुत शोध में किया गया है। इसमें फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों का समाजभाषावैज्ञानिक अध्ययन कर वहाँ के सामाजिक-सांस्कृतिक तथ्यों की पड़ताल की गई है। प्रस्तुत अध्ययन-विश्लेषण से हमें निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं :-

साहित्य और समाजभाषाविज्ञान के बीच अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। साहित्य समाजभाषा-विज्ञान के लिए तथ्य उपलब्ध कराता है और समाजभाषाविज्ञान साहित्य की भाषा का विश्लेषण कर इसके नए सन्दर्भों की व्याख्या करता है। चूँकि समाजभाषाविज्ञान

किसी भाषा का विश्लेषण सामाजिक सन्दर्भों के आधार पर करता है इसलिए यह वक्ता के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश और परिस्थिति का पूर्ण आकलन प्रस्तुत करता है। हिंदी कथा साहित्य में, विशेष कर आँचलिक साहित्य और अस्मिता मूलक साहित्य, मसलन दलित साहित्य, स्त्री साहित्य, आदिवासी साहित्य आदि के विश्लेषण में समाजभाषाविज्ञान के उपकरण अत्यंत सफल साबित हो सकते हैं। क्योंकि, इन साहित्यों में लेखक किसी न किसी विशेष भाषायी समुदाय को अभिव्यक्त करता है। साथ ही इनमें व्यक्त भाषा में अनेक पर्तें मौजूद होती हैं जो जाति, धर्म, वर्ण, क्षेत्र, शिक्षा, पेशा आदि विभिन्न श्रेणियों में विभक्त होती हैं। साहित्य में ये सभी स्तरीकरण भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं। इसलिए समाजभाषाविज्ञान इसे समझने और समझाने में नवीन दृष्टि प्रस्तुत कर सकता है। सामाजिक-संजाल, वाक्-व्यापार, और वार्तालाप सहयोग का सिद्धांत साहित्य और समाज-भाषाविज्ञान के बीच सेतु का काम करता है। दोनों के विवेचन-विश्लेषण में कारगर है।

'रेणु' हिंदी के उन कथाकारों में हैं, जो पहले अपने पात्र और कथाक्षेत्र की भाषा और भूगोल का परिचय प्रस्तुत करते हैं फिर अपनी बात को आगे बढ़ाते हैं। इनके कई उपन्यासों में कथा-क्षेत्र एवं पत्रों का भौगोलिक एवं सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश तथा समय पूर्णरुपेण चित्रित हुए हैं। 'रेणु' जिस समय लिख रहे थे वह भारतीय समाज, संस्कृति और भाषा का संक्रमण काल था। आजादी के बाद एक नया सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश पनप रहा था। इस परिस्थिति में अनेक भाषायी समुदाय एक दूसरे के सम्पर्क में आए और अनेक रूपों में एक दूसरे से प्रभावित हुए। ऐसे में बहुभाषिकता, कूट-मिश्रण, कूट-अंतरण और भाषा-विकल्पन की संभावनाएँ बढ़ीं। इस दृष्टि से 'रेणु' का कथा-क्षेत्र अत्यंत वैविध्यपूर्ण है। इस क्षेत्र की मुख्य भाषा मैथिली और अंगिका का मिश्रण है जिसका उल्लेख ग्रियर्सन, बुकनन, देवेन्द्रनाथ शर्मा, कैलाशचंद्र भाटिया आदि भाषाविदों ने किया है। यहाँ पर इसके अलावा हिंदी भाषायी समाज, बाँगला भाषायी समाज, मैथिली भाषायी

समाज, अंगिका भाषायी समाज, भोजपुरी भाषायी समाज, मगही भाषायी समाज, संथाली भाषायी समाज और नेपाली भाषायी समाज भी उपस्थित हैं। हिंदी साहित्य में 'रेणु' पहले रचनाकार हैं जिन्होंने एक साथ इतने भाषायी समुदायों को अभिव्यक्ति दी साथ ही दो अलाग भाषायी परिवार की भाषा का चित्रण भी किया। इन्होंने इंडो-यूरोपियन परिवार की भाषा के साथ-साथ आस्ट्रो-एशियाटिका परिवार की भाषा को भी अपने उपन्यास में सांकेतिक रूप में चित्रित किया है। उपर उल्लिखित भाषाओं में संथाली आस्ट्रो-एशियाटिका भाषा-परिवार के मुंडा परिवार की सदस्य है। इनके दो उपन्यास, 'मैला आँचल' और 'जुलूस' में संकेत रूप में संथाली भाषायी समाज का चित्रण मिलता है।

'रेणु' के उपन्यासों में चित्रित परिवेश एक बहुसांस्कृतिक परिवेश है। अनेक संस्कृतियों के आपसी सम्पर्क के कारण यहाँ के समाज में बहुभाषिकता और भाषायी विविधता पायी जाती है। इन भाषायी विविधताओं के कारण यहाँ के समाज में कूट-मिश्रण, कूट-अंतरण, भाषा-विकल्पन आदि भाषायी विशेषता दिखाई पड़ती हैं। बांग्लादेश (तत्कालीन पूर्वी पकिस्तान) और नेपाल की सीमाओं से जुड़े होने के कारण यहाँ की भाषा में बाँगला और नेपाली के शब्दों एवं इसके उच्चारण का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस तरह का प्रभाव यह भी सिद्ध करता है कि हम किसी देश की भौगोलिक सीमा भले ही खींच दें भाषाओं को सीमाओं में नहीं बाँध सकते। 'रेणु' के उपन्यासों में इस तरह की भाषायी घटना अपनी सम्पूर्णता और सहजता में उपस्थित है। इनके उपन्यासों में अनेक पात्र बहुभाषिक हैं। ये हिंदी, अंग्रेजी, बाँगला, नेपाली आदि अनेक भाषाएँ जानते हैं। उदाहरण के रूप में 'मैला आँचल' में गांगुली बाँगला, हिंदी और अंग्रेजी जनता है, आभारानी बाँगला और हिंदी जानती है, प्रशांत, बामनदास आदि अनेक पात्र भी एक से अधिक भाषा जानते हैं। 'परती : परिकथा' में जितेन्द्रनाथ हिंदी, अंग्रेजी, नेपाली और बाँगला जानता है, भिम्मल मामा हिंदी और अंग्रेजी का प्रयोग करते हैं, दिलबहादुर हिंदी और नेपाली बोलता है, इसी तरह बहुभाषिक पत्रों के रूप में 'दीर्घतपा' में ज्योत्स्ना, सुखमय घोष, बेला, मिस्टर आनंद,

'जुलूस' में पवित्रा, हरलाल साहा, गोपाल पाइन, 'पल्टू बाबू रोड' में पल्टू सिंह, बिजली, घंटा, फेला, मुरली मनोहर, 'कितने चौराहे' में हेडमास्टर साहब, प्रियोदा आदि के संवादों को देख सकते हैं। ये सभी पात्र बहुभाषिक हैं, अर्थात् एक से अधिक भाषा जानते हैं। चूँकि ये सभी बहुभाषिक हैं इसलिए इनके संवादों में एक से अधिक भाषाओं (Code) के शब्दों, उपवाक्यों और वाक्यों के मिश्रण एवम् अंतरण दिखाई पड़ते हैं। 'रेणु' के उपन्यासों में ये सभी भाषायी घटनाएँ अत्यंत सहजता से अभिव्यक्त हुई हैं।

भाषा के माध्यम से पात्रों का चरित्र निर्माण 'रेणु' के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है। 'रेणु' अपने पात्रों को, समाज एवं सामाजिकता को भाषा में गढ़ते हैं, जिसके कारण प्रत्येक पात्र एवं समाज को एक अलग भाषायी पहचान मिलती है। ऐसे में पाठक भाषा के द्वारा ही पात्रों का परिचय पा लेता है। उपन्यास में जब किसी पात्र का एक बार परिचय प्राप्त हो जाता है तो अन्यत्र उसके नाम की आवश्यकता नहीं पड़ती। पाठक आसानी से समझ जाते हैं कि यह संवाद किसका है। समाजभाषाविज्ञान में इस तरह की भाषायी घटना को व्यक्ति-बोली कहते हैं। 'रेणु' के उपन्यासों में इसका सफल चित्रण हुआ है। इस बात की प्रामाणिकता के लिए 'मैला आँचल' में नागा साधू, 'परती : परिकथा' में फेकनी की माय, भिम्माला मामा, गोबिन्दो, आदि की भाषा को देख सकते हैं। इसी तरह समाज-बोली को भी 'रेणु' ने भाषायी प्रयोग के माध्यम से रेखांकित करने का प्रयास किया है। 'मैला आँचल' में मठों से जुड़े लोग सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग करते हैं, काँग्रेस पार्टी के सदस्यों की भाषा में अहिंसा एवं समन्वयवादी स्वर हैं, सोशलिस्टों की भाषा में मार्क्सवादी चेतना का प्रभाव दिखाई पड़ता है और काली टोपी वाली पार्टी के लोगों की भाषा में हिन्दूवादी और राष्ट्रवादी विचारों का प्रभाव है। इसी तरह शिक्षितों की भाषा में मानक-हिंदी के वाक्यों में अंग्रेजी, अरबी - फारसी के शब्दों का प्रयोग किया गया है जबकि अशिक्षित पात्रों की भाषा में मानक-हिंदी के साथ तद्भव और देशज शब्दों का प्रयोग देखने को

मिलाता है। इनके उच्चारण में क्षेत्रीय भाषाओं के आरोह-अवरोह का प्रभाव भी दिखाई पड़ता है।

'रेणु' के उपन्यासों में भाषायी प्रयोग की एक विलक्षण स्थिति देखने को मिलती है। इनके लगभग सभी उपन्यासों में जितने भी पात्र थाना, कोतवाली से सम्बन्ध रखते हैं अथवा किसी जमींदार के यहाँ दरवानी का काम करते हैं या दासी एवं रसोईया का काम करते हैं, उनकी भाषा उपन्यास के अन्य पात्रों की भाषा से थोड़ी भिन्न है। दरवानी करने वाले या पुलिस की नौकरी करने वाले प्रायः भोजपुरी बोलते हैं। उदाहरणार्थ 'मैला आँचल' में सिपाही, कोतवाल एवं रामबुझावान सिंह की भाषा, 'परती : परिकथा' में रामपखारन सिंह की भाषा आदि को देख सकते हैं। उपन्यास में इनके संवाद भोजपुरी में है या भोजपुरी प्रभावित हिंदी में। 'परती : परिकथा' के हीरा मण्डल की भाषा सामान्य पात्र से अलग एक विशेष प्रकार की हिंदी-अंग्रेजी की खिचड़ी है। इसी प्रकार इनके उपन्यासों में दासी या रसोईये का काम करने वाले पात्र मैथिली का प्रयोग करते हैं। उदाहरणार्थ 'मैला आँचल' की सोबिया, 'परती : परिकथा' की जिवाछी और पुतली तथा 'पल्टू बाबू रोड' के बौवन झा और रामटहल की भाषा को देख सकते हैं। ये सभी मैथिली भाषायी समुदाय के हैं। 'मैला आँचल' के भंडारी की भाषा इसका अपवाद है। वह मगही भाषायी समुदाय का सदस्य है। लेखक द्वारा इस प्रकार के भाषायी प्रयोग को पेशे पर आधारित भाषा-विकल्पन के रूप में देख सकते हैं।

सम्पूर्णता में देखें तो कह सकते हैं कि 'रेणु' के उपन्यासों में भारतीय भाषायी यथार्थ की अभिव्यक्ति हुयी है। भारत एक बहुभाषिक देश है। यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति एक से अधिक भाषाएँ जानता है। 'रेणु' के उपन्यासों में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति और समाज बहुभाषिक हैं। भारत के किसी भी क्षेत्र, जो कई भाषाओं की सीमा से जुड़ा है, के लोगों की भाषा का स्वरुप अत्यंत जटिल होता है। 'रेणु' का साहित्य भी इसी भाषायी जटिलता को

हमारे सामने प्रस्तुत करता है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि यहाँ के लोगों की बहुआयामी भाषायी अस्मिता का सफल चित्रण फणीश्वरनाथ 'रेणु' के सभी उपन्यासों में देखने को मिलता है। भाषायी समाज, बहुभाषिकता, कूट-मिश्रण, कूट-अंतरण, व्याक्ति-बोली, समाज-बोली, भाषा-विकल्पन आदि का अत्यंत सहज, स्वाभाविक और सटीक चित्रण *'मैला आँचल', 'परती : परिकथा', 'दीर्घतपा', 'जुलुस', 'कितने चौराहे' और 'पल्टू बाबू रोड'* में देखने को मिलाता है।

आधार-ग्रंथ सूची

रेणु फणीश्वरनाथ, *मैला आँचल*, राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, आठवाँ संस्करण (पेपरबैक्स) : 1992, नौवीं आवृति : 2004

रेणु फणीश्वरनाथ, *परती : परिकथा*, राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, चौथा संस्करण (पेपरबैक्स) : 2009, दूसरी आवृति : 2012

रेणु फणीश्वरनाथ, *दीर्घतपा*, राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, प्रथम संस्करण (पेपरबैक्स) :2008, पहली आवृति : 2011

रेणु फणीश्वरनाथ, *जुलूस,* भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली 110003, आठवाँ संस्करण : 2010

रेणु फणीश्वरनाथ, *कितने चौराहे,* (रेणु रचनावली संपा०- भारत यायावर) राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, तृतीय संस्करण : 2007

रेणु फणीश्वरनाथ, *पल्टू बाबू रोड,* (रेणु रचनावली संपा०- भारत यायावर) राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, तृतीय संस्करण : 2007

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

तिवारी भोलानाथ, प्रियदर्शिनी मुकुल, *हिंदी भाषा की सामाजिक भूमिका,* उच्च शिक्षा एवं शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास, संस्करण :1982

पाण्डेय मैनेजर, *साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका,* हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, तृतीय संस्करण : 2006

पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु', *अद्यतन भाषाविज्ञान : प्रथम प्रमाणिक विमर्श,* लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहबाद-1, संस्करण : 2012

भाटिया कैलाशचन्द्र, *भाषा भूगोल,* उत्तर प्रदेश शासन, राजर्षि पुरषोत्तमदास टंडन हिंदी भवन, महात्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ, प्रथम संस्करण : 1973

मधुरेश (संपा०), *फणीश्वरनाथ रेणु और मार्क्सवादी आलोचना,* यश पब्लिकेशन्स, x/909, चाँद मौहल्ला, गाँधी नगर, दिल्ली 110031, प्रथम संस्करण : 2008

मधुरेश (संपा०), *मैला आँचल का महत्व,* सुमित प्रकाशन,यु० एफ० 42, अलोपशंकारी अपार्टमेंट, 107/177, अलोपीबाग, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण : 2008

मिश्र दुर्गा प्रसाद (संपा०), *भाषाविज्ञान कोश (द्वितीय खंड)*, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, शिक्षा विभाग, भारत सरकार, संस्करण : 1998

मिश्र विद्यानिवास, "भाषा, गणितात्मक भाषा, सूचनात्मक भाषा और काव्य भाषा" *आलोचना, अप्रैल-जून 1974,* राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002

वर्मा निर्मल, *प्रतिनिधि कहानियाँ,* राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, चौथा संस्करण : 1988, आवृति : 1998

वात्स्यायन सच्चिदानंद, "भाषा और अस्मिता", *अद्यतन,* सरस्वती विहार, 21 दयानंद मार्ग, दरियागंज,नई दिल्ली 110002, प्रथम संस्करण :1977

वात्स्यायन सच्चिदानंद (संपा०/ले०), "साहित्य और समाज का अन्तःसम्बन्ध", *साहित्य और समाज परिवर्तन की प्रक्रिया,* नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नई दिल्ली : 110002, प्रथम संस्करण : 1985

शर्मा देवेन्द्रनाथ, शर्मा दीप्ति, *भाषाविज्ञान की भूमिका,* राधाकृष्ण प्रकाशन प्रइवेट लिमिटेड, जी-17, जगतपुरी, दिल्ली 110051, प्रथम संस्करण : 1966, दूसरी आवृति : 2004

श्रीवास्तव रवीन्द्रनाथ, *हिंदी भाषा का समाजशास्त्र,* राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, जी-17, जगतपूरी, दिल्ली 110051, प्रथम संस्करण : 1994, दूसरी आवृति : 2001

श्रीवास्तव रवीन्द्रनाथ, सहाय रामानाथ (सं०), *हिंदी का सामाजिक संदर्भ,* केन्द्रीय हिंदी संस्थान, हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा 282005, चतुर्थ संस्करण : 2008

सिंह दिलीप, *भाषा का संसार,* वाणी प्रकाशन, 4695, 21 ए, दरियागंज, नई दिल्ली 110002, द्वितीय संस्करण : 2011

हैंसन कैथेरिन, "रेणु की आंचलिकता : भाषा और रूप", नामवर सिंह (सं०), *आलोचना वर्ष : 37, अंक : 87, अक्तूबर-दिसंबर : 1988,* राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002

Bright William, *Variation and Change in Language,* Stanford University Press, Standford, California, Published : 1976

Bloomfield Leonard, *Language,* Motilal Banarsidas, Bungalow Road, Delhi 110007, First edition :1935, Reprinted : 1985

Bratt Christina and Tucker G. Richerd (ed.), *Sociolinguistics The Essential Readings,* Blackwell Publishing Ltd., 350 Main Street, Malden MA 02148-5018, USA, First Publication : 2003

Chambers J.K. and Trudgill Pete, *Dialectology,* Cambridge University Press, The Edinburgh Building, Cambridge CB2 2RU, UK, Second Edition : 2004

Coudwell Christopher, *Illusion And Reality,* People's Publishing House, New Delhi, Edition : 1945, Reprinted : 1976

Downes William, *Language and Society,* Cambridge University Press, The Edinburgh Building, Cambridge CB2 2RU, UK, Second Edition : 1986

Fennell Barbra A. and Bennett John, "Sociolinguistic Concepts and Literary Analysis", *American Speech,* Duck University Press, Stable URL: http://www.jstor.org/stable/455688

Grierson R. A. (ed.), *Linguistic Survey of India, Vol 5 (Part 2), Indo Aryan Family (Eastern Group) Specimens of The Bihari and Oriya Language,* Low Price Publication, Delhi 110052

Hudson R. A., *Sociolinguistics,* Cambridge University Press, The Edinburgh Building, Cambridge CB2 2RU, UK, Second Edition : 1996, Reprinted : 2001

Koerner Konrad, "History of Modern Sociolinguistics" *American Speech,* Vol. 66, No. 1, Duke University Press, Published (Spring) : 1991

Labov William, *Sociolinguistic Patterns,* University of Pennsylvania Press, Philadelphia, First Edition : 1972

Matthews P.H., *Concise Dictionary of Linguistics,* Oxford University Press, Great Clarendon Street, Oxford OX26DP, Second Edition : 2007

Mehrotra Raja Ram, *Sociolinguistics in Hindi Context,* Walter de Gruyter & Co., Berlin, Published :1986

Mesthrie Rajend, (ed.), *Concise Encyclopedia of Sociolinguistics,* Elsevier Science Ltd., The Boulevard, Langford Lane, Kidlington, Oxford OX5 IGB, UK, 2001

Mesthrie Rajend Swann John, Deumert Ana & Leap William L. (ed.), *Introducing Sociolinguistics,* Edinburgh University Press, 22 George Square, Edinburgh, First Edition : 2000

Muhlhausler Peter, *Pidgin & Creole Linguistics,* Basil Blackwell, 432 Park Avenue South, Suite 1503, New York, NY 10016, USA, Edition :1986

Mukharjee Aditi (ed.), *Language Variation And Language Change,* Center of Advanced Study in Linguistics, Osmania University, Hyderabad 500007, First Edition : 1989

Pattanayak Debi Prasanna (ed.), *Multilingualism in India,* Multilingual Matters Ltd., Bank House, 8a Hill Road, Clevedon, Avon BS21 7HH, England, First Edition : 1990

Petrick Peter L., "The Speech Community : Some Definition" *http://repository.essex.ac.uk/166/1/SpeechCommunity.pdf*

Romaine Suzanne, *Pidgin & Creole Languages,* Longman Group UK Limited, Longman House, Burnt Mill, Harlow, EssexCM20 2JE, England, Edition : 1988

Stockwell Peter, *Sociolinguistic,* Routledge, 2 Park Square, Milton Park, Abington, Oxon OX14 4RN, Second Edition : 2007

Trask R L, *A Student Dictionary of Language and Linguistics,* Arnold, 338 Euston Road, London NW1 3BH, Edition : 1997

Wardhaugh Ronald, *An Introduction to Sociolinguistics,* Blackwell Publishers Inc 350 Main Street, Malden, Massachusetts 02148, USA, Third Edition : 1998

सहायक ग्रंथ सूची

कुमार सुरेश, *शैलिविज्ञान,* वाणी प्रकाशन, 21 ए, दरियागंज, नई दिल्ली 110002, तृतीय संस्करण : 2010

कुमार सुवास, *आंचलिकता, यथार्थवाद और फणीश्वरनाथ रेणु,* साहित्य सहकार, ई-10/4, कृष्णनगर, दिल्ली 110051, प्रथम संस्करण : 1992

चौधरी तेजपाल, *समाजभाषाविज्ञान की भूमिका,* पंचशील प्रकाशन, फिल्म कॉलोनी, चौड़ा रास्ता, जयपुर 302003, प्रथम संस्करण : 1995

तिवारी भोलानाथ, *आधुनिक भाषाविज्ञान,* लिपि प्रकाशन, ई-10/4, कृष्णनगर, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1978

धरमवीर, *हिंदी की आत्मा,* समता प्रकाशन,30/64, गली नंबर 8, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली 110032, प्रथम संस्करण : 1989

बंसल नरेश, *रेणु की भाषिक आँचलिकता,* अशोक अग्रवाल, कृषणा ब्रदर्स, महात्मा गाँधी मार्ग, अजमेर 305001, प्रथम संस्करण : 1993-94

मिश्र दयानिधि (प्र.संपा.), सिंह दिलीप (संपा.). *भाषा, संस्कृति और लोक,* 4695, 21 ए, दरियागंज, नई दिल्ली 110002, प्रथम संस्करण : 2012

मिश्र शिवकुमार, *दर्शन, साहित्य और समाज,* वाणी प्रकाशन, कुमार सुरेश, *शैलिविज्ञान,* वाणी प्रकाशन, 21 ए, दरियागंज, नई दिल्ली 110002, संस्करण : 2000

राव बोडेपुडि वेंकटेश्वर, *भाषा और समाज,* अकादमिक प्रतिभा, 79-42, एकता अपार्टमेंट,हीट कॉलोनी, दिल्ली 110031, प्रथम संस्करण : 2009

शर्मा रामविलास, *भाषा और समाज,* राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, छठा संस्करण : 2008

श्रीवास्तव रवीन्द्रनाथ, *हिंदी भाषा : संरचना के विविध आयाम,* राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2/38, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110032, प्रथम संस्करण : 1995

सिंह राजकुमारी, *हिंदी और अंग्रेजी के आंचलिक उपन्यासों का ऐतिहासिक परिदृश्य,* अन्नपूर्ण प्रकाशन, 126/1100 डब्लू वन, साकेत नगर, कानपुर 208014, प्रथम संस्करण : 1993

Coulmas Florian, *Sociolinguistics, The study of speakers' choices,* Cambridge University Press, The Pitt Building, Trumpington street, Canbridge CB2 1RP, Uk, First Published : 2005

Eckert Penelope and Ginet Sally McConnell, *Language and Gender,* Cambridge University Press, The Pitt Building, Trumpington street, Canbridge CB2 1RP, United Kingdom, First Published : 2003

Edwards John, *Language Society and Identity,* Basil Blackwell Ltd. 108 Cowley Road, Oxford OX4 1JF,UK, First Published : 1985

Ehrlich Susan, *Language and Gender, Volume iii*, Routledge, 2Park Square, Milton Park,Abingdon, Oxon, OX14 4RN, UK, First Edition : 2008

Grierson George A. *Seven Grammars of The Dialects And Subdialects of The Bihari Language* Kalpaz Publications, C-30, Satyawati Nagar, Delhi :110052

Holmes Janet and Meyerhoff (ed.) *The HandBook of Language and Gender,* Blackwell Publishing Ltd., 350 Main Street, Malden, MA 02148-5020, USA, First paperback Edition : 2005

Holmes Janet, *An Introduntion to Sociolinguistics,* Longman Group UK Limited, Longman House, Burnt Mill, Harlow Essex CM20 2JE, England, First Published : 1992, Fourth impression : 1994

Holm John, *Pidgin and Creoles Vol i&ii,* Cambridge University Press, The Pitt Building, Trumpington street, Canbridge CB2 1RP, 32 East 57th Street, New York, NY 10022, USA First Published : 1988 & 1989

Hymes Dell, *FOUNDATIONS IN SOCIOLINGUISTICS An Ethnographic Approach,* University of Pennsylvania Press, Philadelphia, First Edition : 1974, Eighth paperback printing : 1989

Koul Omkar N. (ed.) *sociolinguistics, South Asian Perspectives,* Creative Books, CB-24, Ring Road, Naraina, New Delhi 110028, First Published : 1995

Kuol Maharaj K., *A Sociolinguistic Study Of Kashmiri,* Indian Institute of Language Studies, 101, Passey Road, Civil lines, Patiyala 147001, First Published : 1986

kramsch Claire, *Language and Culture,* Oxford University Press, Great Clarendon Street, Oxford ox2 6DP, First Edition : 1998, Reprint :2013

Mckay Sandra Lee and Hornberger Nancy H. (ed.), *Sociolinguistics and Language teaching,* Cambridge University Press, The Edinburgh Building, , Canbridge CB2 2RU, United Kingdom 40 West 20th Street, New York, NY 10011-4211, USA First Published : 1996, Reprint :1997

Pandey Indu Prakash, *Regionalism In Hindi Novels,* Franz Steiner Verlag, Wiesbaden, First Print : 1974

Simpson Paul and Mayr Andrea, *Language and Power,* Routledge, 2Park Square, Milton Park,Abingdon, Oxon, OX14 4RN, UK, First Edition : 2010

Spolsky Bernard, *Sociolinguistics,* Oxford University Press, Great Clarendon Street, Oxford ox2 6DP, First Edition : 1998, Reprint : 2013

Singh Isgtla and Peccei Jean Stilwell(ed.), *anguage, Society and Power,* Routledge, 2Park Square, Milton Park,Abingdon, Oxon, OX14 4RN, UK, Second Edition : 2004

Singh Rajendra, *Lecture Against Sociolinguistics,* Munshiram Manoharlal Publishers Pvt. Ltd., Post Box 5715, 54 Rani Jhansi Road, New Delhi 110055, Edition :1998

Verma Mahendra K (ed.), *Sociolinguistics, Language and Society,* Sage Publication India Pvt Ltd, M-32, Greater Kailash Part-I, New Delhi 110048, First Published : 1998

पत्र-पत्रिकाओं की सूची

आलोचना, राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002

गवेषणा, हिंदी संस्थान मार्ग, केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा 282004

भाषा, केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिम खंड-7, रामकृष्ण पुरम, नयी दिल्ली 110066

American Speech, Duck University Press, http://www.jstor.org/stable/455688?__redirected

MULTILINGUA, Journal of Cross-Cultural and Interlanguage Communication, www.degruyter.com

Sociolinguistic Studies, Equinox Publishing, University of Vigo, Galicia, Spain, https://www.equinoxpub.com/journals/index.php/SS/index

इंटरनेट से प्राप्त सामग्री के लिंक्स

http://en.wikipedia.org/wiki/Special:Search

http://en.wikipedia.org/wiki/Sociolinguistics

http://en.wikipedia.org/wiki/Register

http://en.wikipedia.org/wiki/Speech_act

http://en.wikipedia.org/wiki/Speech_community

http://en.wikipedia.org/wiki/Pidgin

http://en.wikipedia.org/wiki/Lingua_franca

❖ परिशिष्ट

- प्रो. दिलीप सिंह से साक्षात्कार

1. कृपया आप अपने विद्यार्थी जीवन और अध्यापकीय जीवन के बारे में कुछ बताएँ ।

विद्यार्थी जीवन काशी में बीता । स्कूली शिक्षा डी.ए.वी. इंटर कालेज में हुई । कालेज शिक्षा बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से । एम.फिल और पीएच.डी. का शोधकार्य संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के भाषाविज्ञान तथा विदेशी भाषा विभाग से किया । दोनों ही कार्यों में डॉ. विद्यानिवास मिश्र मेरे शोध निर्देशक रहे । तब बीएचयू में भाषा विज्ञान विभाग नहीं था । विद्यार्थी जीवन कई तरह से प्रेरक रहा । शितिकंठ मिश्र, शिवप्रसाद सिंह, बच्चन सिंह,काशीनाथ सिंह, शुकदेव सिंह,भोलाशंकर व्यास, विजयशंकर मल्ल, करूणापति त्रिपाठी, त्रिभुवन सिंह जैसे गुरू मिले । एक-दो को छोड़कर सभी भाषाचेता और भाषा विज्ञान में रूचि रखने वाले थे । अध्यापकीय जीवन केंद्रीय हिंदी संस्थान, दिल्ली से प्रारंभ हुआ, विदेशी छात्रों को हिंदी पढ़ाने के काम से । वहीं से पेरिस गया,यही काम करने । भाषा के प्रति सचेत करने में,हिंदी भाषा की बारीकियों को समझने में तथा पाठ (टेक्स्ट)और भाषा के गहरे अंतस्संबंधों की परख करने में इस प्रशिक्षण ने बड़ी मदद की । फ्रांस से वापस आ कर दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के पीजी केंद्र में नियुक्त हुआ-हैदराबाद में वर्ष 1979 | यहाँ एम.ए. का पाठ्यक्रम भाषा केंद्रित था, सो कई प्रश्न-पत्र पढ़ाए, संबंधित पुस्तकें पढ़ीं । भाषाविदों से विचार-विमर्श कर-करके खुद को प्रौढ़ बनाया ।

2. आप भाषाविज्ञान और समाजभाषाविज्ञान के अध्ययन अध्यापन से कैसे जुड़े ?

इसलिए जुड़ा कि एम.ए. के बाद मेरा समस्त अध्ययन भाषाविज्ञान केंद्रित हो गया था साहित्य से मैं अछूता नहीं था पर उसे भी देखने की मेरी दृष्टि अब पाठ-विश्लेषण वाली अथवा शैलीवैज्ञानिक हो चली थी । रिसर्च करते समय ही मैंने भाषाविज्ञान के तीन 'समर स्कूल' पूरे किए । एक महीने का यह कार्यक्रम होता था –यूजीसी और एनसीईआरटी द्वारा प्रायोजित इस प्रशिक्षण ने मुझे भाषाविज्ञान और अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की सभी धाराओं और दृष्टियों के प्रति अत्यंत सजग बना दिया । फिर यह भी कि मैंने एम.फिल.,एम.ए.के. हैलिडे के सामयिक भाषा चितंन पर किया था और पीएच.डी समाजभाषाविज्ञान या भाषा का समाजशास्त्र को समेटते विषय पर: सामाजिक स्तर भेद और भाषा स्तर भेद । निश्चित ही समाजभाषाविज्ञान की समझ बिना 'भाषाविज्ञान'(विवरणात्मक , संरचनात्मक, ऐतिहासिक,सैद्धांतिक)की पुष्ट जानकारी के विकसित नहीं हो सकती थी अत: पीएच.डी. करते-करते भाषाविज्ञान की अधुनातन विकास-प्रक्रिया और अध्ययन प्रारूपों को पूर्णता में देखने-समझने का सुअवसर मिला । इस पृष्ठभूमि ने निरंतर मुझे भाषाविज्ञान और उससे संबंधित विचारों,सरणियों,पद्धतियों से टकराते रहने का साहस दिया । यह कार्य मैं आज तक भी उसी 'पैशन'

और लगन से करने की कोशिश करता आ रहा हूँ । अब तो मेरे अध्ययन-अध्यापन और शोध की यही दिशा है । यही राह है । नये से नया साहित्य मैंने पढ़ना नहीं छोड़ा,अत: साहित्यिक कृतियों को उनकी भाषायी अभिरचना के संदर्भ में देखने के मॉडेलों पर भी काम करता आ रहा हूँ । शोधार्थियों से कराता आ रहा हूँ ।

3. आधुनिक भारतीय भाषाविज्ञान की परंपरा में रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के योगदान को आप किस रूप में देखते हैं ?

रवीन्द्र नाथ श्रीवास्तव एक पूर्ण भाषावैज्ञानिक थे । उनकी कई विशेषताएँ हैं । इन खासियतों ने ही उनके योगदान को अतुलनीय बना दिया है । लेनिनग्राद विश्वविद्यालय से उन्होंने ध्वनिविज्ञान पर शोध किया । फिर अमरीका से पोस्ट-डॉक्टरल रिचर्स किया । इस प्रकार भाषाविज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी इन दोनों देशों के भाषावैज्ञानिक चिंतन को वे गहराई से समझते थे । एक बात और कि वे विश्वविख्यात भाषाविद् होते हुए भी हिंदी भाषा के भाषिक वैशिष्ट्य को सदैव अपने अध्ययन के केंद्र में रखे हुए थे । अपने समकालीन अन्य भाषाविदों की तरह उन्होंने सिर्फ अंग्रेजी में ही लेखन नहीं किया-अपनी श्रेष्ठ रचनाएँ उन्होंने हिंदी में दीं-शैलीविज्ञान:आलोचना की नई भूमिका, हिंदी भाषा का सामाजिक संदर्भ, भाषा शिक्षण,भाषाई अस्मिता और हिंदी तथा संरचनात्मक शैलीविज्ञान उनकी हिंदी में लिखी या संपादित कालजयी रचनाएँ हैं । वे आधुनिक भाषाविज्ञान की नई पीठिका को हिंदी में ले आए और इन अध्ययनों में उन्होंने वस्तु रूप में हिंदी भाषा को केंद्रीय स्थान दिया । उनके सैंकड़ों लेख प्रकाशित हैं जिन्हें पाँच पुस्तकों में संकलित कर प्रकाशित किया है-राधाकृष्ण प्रकाशन ने । एक महत्वपूर्ण योगदान उनका यह भी है कि अन्य भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण को उन्होंने भाषा-केंद्रित स्वरूप प्रदान किया । उच्च शिक्षा में भी हिंदी भाषा के सामाजिक,प्रयोजनमूलक तथा शैलीय संदर्भों को उजागर करने वाले पाठ्यक्रमों को उन्होंने जगह दिलवाई। वे जीवन पर्यन्त हिंदी भाषा के साथ रहे । आखिरी बात जो मुझे समझ में आती है ; उनके योगदान के विषय में, वह यह कि देश-विदेश के भाषाविद् उनका और उनके विचारों का सम्मान करते थे । वे भारत के ही नहीं अन्य देशों की 'भाषा परिषदों' से संबद्ध थे । कुछ के तो अध्यक्ष या उपाध्यक्ष भी थे । इसके साथ ही देश के मूर्धन्य हिंदी विद्वान,आलोचक, अध्यापक भी उन्हें आदर की दृष्टि से देखते थे । हिंदी साहित्य पर उनकी गहरी पकड़ थी और हिंदी भाषा के अनेकानेक व्यावहारिक रूपों पर भी । भारत में एक हिंदी भाषाविद् के रूप में भी उन्होंने अपनी जगह बना ली थी । आधुनिक या अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की सैद्धांतिकी को उन्होंने

बहुविध हिंदी भाषा और उसके पाठों पर घटा कर दिखाने की पद्धति और प्रणाली हमें दी है । ऐसे वे अकेले हैं ।

4. वर्तमान भाषाविज्ञान के क्षेत्र में शोध की दिशा और दशा क्या है ?

अत्यंत उत्साहवर्धक तो नहीं कह सकता, पर संतोषजनक तो अवश्य है । इसका एक कारण भाषा विभागों में भाषाविज्ञान के पाठ्यक्रमों को सम्मिलित न किया जाना है । यदि विश्वविद्यालयों की बात करें तो व्यावहारिक भाषाविज्ञान पर अब एकाध शोध किए जाने लगे हैं । प्रयोजनमूलक हिंदी, अनुवाद समीक्षा,हिंदी के साहित्यिक पाठों का शैलीय विश्लेषण-आदि क्षेत्रों को ध्यान में रख कर कुछ शोध-प्रबंध मेरे पास आते हैं । कुछ शोधार्थी भी जो इस तरह के विषयों पर काम कर रहे हैं-मुझसे सीधा संपर्क करने लगे हैं , जैसे आपने किया है । अच्छा लगता है । अन्यथा प्रारंभ में जब मैंने इस तरह के शोध-कार्य कराने शुरू किए थे तब हिंदी का विद्वत् समाज मुझे विद्रूप निगाहों से देखता था । भाषाविज्ञान में प्रच्छन्न रूप से भी शोध को जगह मिली है । इसमें सरकारी संस्थाओं का बड़ा हाथ है । अब आप देखिए वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग विभिन्न विषयों की शब्दावली तैयार करता है, परिभाषा कोश तैयार करता है तो वहाँ (हिंदी) भाषा के आधुनिकीकरण, शब्दार्थ विज्ञान, शब्द - रचना विज्ञान, अनुवाद प्रक्रिया पर विचार-विमर्श, चर्चा होती ही है । इसी तरह केंद्रीय हिंदी संस्थान, केंद्रीय हिंदी निदेशालय और गृह-मंत्रालय का राजभाषा विभाग, हिंदी के पत्राचार पाठ्यक्रम चलाते हैं, उनकी सामग्री निर्माण में भाषाविज्ञान और उसके आनुषांगिक शास्त्र 'भाषा शिक्षण' की प्रविधियों की सहायता लेनी ही पड़ती है । ऐसी अन्य संस्थाएँ भी हैं जिनका कामकाज ठोस भाषावैज्ञानिक पृष्ठभूमि के बिना नहीं चल सकता –केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो, सी-डैक का नाम अभी ध्यान में आ रहा है । अन्य भाषा शिक्षण का जो भी काम भारत में होता है; बहुभाषिक राष्ट्र होने के कारण बहुत अधिक होता है तो इनकी समस्त शिक्षण सामग्री भाषा वैज्ञानिक सिद्धांतों के सहारे ही से अभिक्रमित ढंग से तैयार की जाती है फिर चाहे यह काम केंद्र सरकार करे या राज्य सरकारें । हमारे यहाँ प्राथमिक से लेकर प्रवीण तक की जो हिंदी पाठ्यपुस्तकें तैयार की गई हैं उनके पीछे अनेक भाषाविदों का योगदान रहा है । हिंदी के साहित्य-आलोचक भी भाषा के प्रति बहुत सचेत रहे हैं । सभी ने भाषा और भाषाविज्ञान पर अपने समय में विचार व्यक्त किया है,राय दी है । कई आलोचकों की पूरी प्रणाली में भाषाविज्ञान का महत्व प्रतिपादित दिखाई पड़ता है – नामवर सिंह, रामविलास शर्मा,हजारी प्रसाद द्विवेदी,विद्यानिवास मिश्र ने हिंदी के ही नहीं, भारत के भाषाई यथार्थ पर गहरी बातें कही हैं । हिंदी लेखन को यदि गंभीरता से खंगाला जाय तो हमें भाषा-चितंन की ढेरों शोधपरक उक्तियाँ मिल जाएंगी । संक्षेप में कहूं तो

विश्वविद्यालयों में भाषा वैज्ञानिक शोध किए जा रहे हैं । नये-पुराने लोग भाषाविज्ञान के विविध पक्षों पर पुस्तकें लिख रहे हैं । 'भाषा' (केंद्रीय हिंदी निदेशालय),गवेषणा (केंद्रीय हिंदी संस्थान),अनुवाद(भारतीय अनुवाद परिषद्),हिंदुस्तानी (हिंदुस्तानी अकादमी), नागरी पत्रिका (नागरी लिपि परिषद्) जैसी पत्रिकाएँ भाषा केंद्रित शोध लेख या आलेख प्रकाशित करती हैं । केंद्र सरकार के संगठनों एवं उपक्रमों की राजभाषा पत्रिकाओं में भी इस तरह के लेख छपते हैं- विशेषांक भी निकलते हैं । भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून की पत्रिका 'विकल्प' का विशेष उल्लेख करना चाहूँगा जिसने राजभाषा,प्रयोजनमूलक हिंदी, शब्दावली पर विशेषांक निकाले हैं और जिसका अगला अंक 'हिंदी का मानकीकरण' पर केंद्रित होगा । दिशा और दशा संतोषप्रद है,एक अध्येता के रूप में हमें अपनी आँखे खुली रखने की जरूरत है ।

5. समाजभाषाविज्ञान पर जिस प्रकार के शोध कार्य अमेरिका और यूरोप में हुए हैं उस तरह के शोध कार्य भारत में क्यों नहीं हो रहे हैं?

यह प्रश्न पूर्वाग्रह से ग्रस्त है रामविलास शर्मा का 'भाषा और समाज',श्रीवास्तव का 'हिंदी भाषा का सामाजिक संदर्भ'-क्लासिक कृतियाँ हैं । तेलुगु भाषा के समाजशास्त्र पर प्रो.रामाराव की पुस्तक है । साउथ एशिया के समाजभाषिक परिदृश्य पर बी.एच. कृष्णमूर्ति ने पुस्तक संपादित की थी । भारतीय बहुभाषिकता पर डी.पी.पट्टनायक की पुस्तक है । केंद्रीय हिंदी संस्थान से भी एक पुस्तक प्रकाशित है जिसका संपादन डॉ.गोपाल शर्मा एवं सुरेश कुमार ने किया है । लोगों ने हिंदी की बोलियों पर काम किया है , हिंदी-उर्दू-हिंदुस्तानी पर बात की है , भाषा-अवमिश्रण पर पुस्तकें –लेख आए हैं । भाषाई अस्मिता पर श्रीवास्तव की पुस्तक है । भाषा-अनुरक्षण और भाषा परिवर्तन पर केंद्रीय हिंदी संस्थान ने पुस्तक प्रकाशित की है । कोड भाषा तथा हिंदी भाषा का समाजशास्त्र पर आर.आर.महरोत्रा की दो पुस्तकें हैं । इस तरह के ढेरों काम हुए हैं और किए जा रहे हैं । अमरीका-यूरोप में क्या हो रहा है,हमारे लिए इससे अधिक महत्वपूर्ण यह होना चाहिए कि हमारे यहाँ क्या इस दिशा में हुआ है और क्या हो रहा है-इस पर निगाह रखी जाय ।

6. साहित्य और समाजभाषाविज्ञान के अन्त:संबंधों को आप किस प्रकार देखते हैं ?

बहुत गहरा संबंध है। साहित्य में प्रयुक्त भाषा वास्तव में सामान्य भाषा ही होती है । रचनाकार इसे ही रचनात्मक कलेवर प्रदान करता है । यह तो प्राथमिक बात हुई । अब आप देंखे कि लेखक भी एक सामाजिक प्राणी होता है,उसके आस-पास एक भाषा पलती है जिसमें वह जीता है । यह भाषा एकरूप कतई नहीं होती ,अनेक व्यावाहरिक विभेद होते हैं इसके । जाति, वर्ग,

लिंग,पेशा,परिवेश,शिक्षा कई ऐसे आधारभूत सामाजिक घटक हैं जो एक ही भाषा के एकाधिक भाषा-भेद पैदा करते हैं। अर्थात सामाजिक स्तर भेद के भीतर ही हमें भाषा-भेद की अनेक सरणियाँ दिखाई देती हैं। निश्चित ही लेखक इन भाषा भेदों के प्रति अतिरिक्त सजग होता है। इनका सर्जनात्मक प्रयोग करता है। अब यह देखिए कि वक्ता-श्रोता के आपसी संबंध भी उनके भाषा व्यवहार को भिन्न रूपाकार दे देते हैं। समाज भाषाविज्ञान की अध्ययन प्रणाली का सूत्र है जिसका तात्पर्य है यह देखना कि कौन, कब ,कहाँ, किससे और किस विषय पर बोल रहा है। सामान्यत: प्रयोग,प्रयोक्ता और परिस्थिति, संदर्भ, प्रसंग,भाषा वैविध्य के कारक बनते हैं। ये भाषा-विभेद ही समाज भाषाविज्ञान अथवा भाषा का समाज शास्त्र जैसे शास्त्र (जिन्हें वास्तविक भाषाविज्ञान कहा गया है) की प्रमुख अध्ययन वस्तु हैं। इन्हें कभी सामाजिक शैली,कभी भाषा के व्यावहारिक विकल्प तो कभी भाषा के सामाजिक उपरूप कहा जाता है। ये समस्त भाषा-भेद, भाषा-समुदाय की समाज-सांस्कृतिक तथा मानसिक संरचना का भी द्योतन कराते हैं या कहें इन्हीं का प्रतिबिंब होते हैं। साहित्य वास्तव में भाषा के इन विस्तीर्ण प्रयुक्त रूपों का सर्वाधिक उपयोग करता है,सर्जनात्मक उपयोग। यदि आप हिंदी के कथा या नाटक साहित्य को ध्यान से पढ़ें तो आप पाएंगे कि जिसे हम सामान्यत: प्रभाव,प्रेषणीयता या यर्थाथ कहते हैं इनकी सफल अभिव्यंजना भाषा के इन्हीं 'संप्रेषणपरक' रूपों के कारण बनती है,प्रकट होती है। संवाद देखें, भिन्न सामाजिक स्तर के लोगों (पात्रों) की बातचीत देखें,औपचारिक,अनौपचारिक तथा आत्मीय भाषा प्रयोग को देखें-आपको लगेगा कि हम जीते-जागते लोगों के सामने हैं- **गोदान** पढ़े या **बूंद और समुद्र**,**गली आगे मुड़ती है** पढ़ें या **मैला आँचल**। ये तो कुछ नाम हैं। कहना यह चाहता हूँ कि समाज के यथार्थ चित्रण में ,परिवेश निर्माण में, पात्रों की रचना में,घटनाओं-परिस्थितियों के निर्माण में,कहें,कथा की पूरी संरचना में सामाजिक भाषा अथवा समाज-स्वीकृत भाषा का अवदान सर्वाधिक होता है। मुझे तो लगता है कि हिंदी के कथा-साहित्य ने हिंदी भाषा के सामाजिक भेदों का महत्व गहरे से समझा है-साथ ही हमारा साहित्य क्षेत्रीय शैली,स्थानीय शैली और हिंदी-उर्दू-हिंदुस्तानी वाले भेदोपभेदों को बड़ी खूबी के साथ कृतियों में संजोता-सँवारता रहा है। यदि समाज भाषाविज्ञान की पृष्ठभूमि के साथ हम कृतियों का पाठ-विश्लेषण करें तो समाज भाषाविज्ञान की सैद्धांतिकी को अनेक स्तरों पर उकेर सकते हैं, विश्लेषित कर सकते हैं। इस रास्ते हम समाज संदर्भित भाषा रूपों की विविध छटाओं को भी रेखांकित कर सकते हैं। यह तो समझ ही लें कि साहित्यिक पाठ, सामाजिक भाषा का बहुरूपी जखीरा है।

7. क्या साहित्य के समाजभाषावैज्ञानिक अध्ययन को साहित्यिक आलोचना की एक पद्धति के रूप में देखा जा सकता है ?

बिल्कुल । यह सर्व प्रचलित आलोचना पद्धति है । मैंने जब भी बड़े आलोचकों की आलोचना कृतियाँ देखी हैं,यह पाया है कि वे सब समाज में प्रचलित भाषा के कृति में ढलने को रचना की जीवन रेखा मानते रहे हैं। यही वजह है कि आलोचना में कृति की सशक्त पंक्तियों,संवादों,विवरणों और भाषिक विधान की बात की गई है । हिंदी के आलोचकों ने यदि गद्य-लेखन में प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त,भारतेन्दु की या प्रेमचंद, नागार्जुन, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रेणु की सराहना की है तो इस सराहना का बड़ा हिस्सा इन लेखकों की भाषाई चेतना को समर्पित है । कविता में भी देखें तो रामचंद्र शुक्ल,विश्वनाथ प्रसाद मिश्र आदि ने मध्यकालीन कवियों की बात करते समय उनकी समाज भाषिक चेतनता को बार-बार हमारे सामने रखा है । आप डॉ.उदयभान सिंह की 'तुलसी' या ब्रजेश्वर वर्मा की 'सूरदास', हजारी प्रसाद द्विवेदी की 'कबीर' पुस्तकें पढें तो पाएंगे कि इन आलोचकों की आलोचना का मुख्य सूत्र कवियों के भाषिक विधान पर केंद्रित है । केदारनाथ अग्रवाल, सर्वेश्वर, केदारनाथ सिंह,अष्टभुजा शुक्ल, नागार्जुन, यहाँ तक कि मुक्तिबोध और धूमिल की रचनात्मक उर्जा में सर्वाधिक योगदान समाज व्यवहृत भाषा पर इन कवियों की गहरी पकड़ को माना गया है । यह जरूर कहा जा सकता है कि स्वतंत्र रूप से इस आलोचना पद्धति का विस्तार या विकास नहीं दिखाई पड़ता, पर यह भी खरा सच है कि इनके बगैर आलोचना कभी भी मुकम्मल नहीं होती ।

8. साहित्य के समाजभाषावैज्ञानिक विश्लेषण के किन–किन पहलुओं पर विचार करना आवश्यक है ?

वैसे तो पिछले प्रश्न के उत्तर में ही इस प्रश्न के संकेत मिल जाएँगे । पर यदि बात अब साफ़-साफ़ समाज भाषिक विश्लेषण के पहलुओं पर करनी हो तो कुछ खास पहलुओं का जिक्र करना चाहूँगा । एक तो यह कि **विश्लेषण** को 'प्रोक्ति विश्लेषण' का आधार देना चाहिए । अर्थात संवाद,एकालाप,विवरण,मनोभावों,परिवेश निर्माण,भाषण,चर्चा आदि के उपपाठों में भाषा को परखा जाय-प्रेम,घृणा,उत्साह,निराशा,पस्ती,क्रोध आदि को व्यक्त करने की भाषिक प्रणाली प्रत्येक भाषा समुदाय या कहें एक ही भाषा समुदाय के उपसमुदायों में भी, भिन्न-भिन्न होती है । अत: हिंदी में आप इन भावों के लिए ढेरों उक्तियाँ पाएंगे-इसका कारण समाज भाषावैज्ञानिक है जिसे सामान्यत: क्षेत्रीय या स्थानीय शैली कह दिया जाता है । फिर भावों की साझेदारी भी भाषा-भेद करती है कि घृणा कौन किस पर व्यक्त कर रहा है-इसे प्रकट करने के पहले क्या घटा है,बाद में क्या घटा है । 'साझेदारी' का अर्थ है पार्टिसिपेंट्स के बीच के सामाजिक संबंध और उनके बीच का स्तर भेद । समाज भाषा विज्ञान ने स्तर भेद के भी एकाधिक 'निर्धारक' दिए हैं । विश्लेषण के समय इन सबको समेटना पड़ेगा ।

तीसरी बात महत्वपूर्ण है सामाजिक शैली और सोशल सिमिऑटिक्स की । ये दोनों पहलू पाठ को गहरे तक जा कर खंगालते हैं । समाज भाषाविज्ञान ने इन दोनों के भेदोपभेदों का विवेचन किया है । एक शोधार्थी को इन्हें मुख्यत: अपनाना ही चाहिए । फिर एक पहलू है भाषाई तत्वों के समाजभाषिक उपयोग का जिसे 'संप्रेषणपरक व्याकरण' ने अपना विषय बनाया है । संबोधन, नाते-रिश्ते के शब्द, रंग शब्द, जाति नाम,नामकरण,सर्वनाम प्रयोग आदि इसके घटक हैं । इन सबके प्रयोगों का समाज-सांस्कृतिक संदर्भ होता है, तनिक भी चूक पूरी संप्रेषण-प्रक्रिया को छिन्न-भिन्न कर सकती है अत: रचनाकार इनका प्रयोग अत्यंत सजगता और कौशल के साथ करता है । एक पहलू कोड-मिश्रण और कोड-परिवर्तन वाला है । हिंदी में इसके अनेकानेक रूप हैं-मिश्रण की अनेकानेक पद्धतियाँ हैं और मिश्रण से एकाधिक 'कोड' निर्मित होते हैं । बोली-हिंदी,उर्दू-हिंदी,संस्कृत हिंदी,हिंदुस्तानी-उर्दू,अंग्रेजी-हिंदी तो मूल प्रकार हैं फिर इनकी अवमिश्रण की प्रक्रियाएँ हैं-इनके समाजस्वीकृत नियम हैं । हाँ, एक पहलू सामाजिक भाषा का समुदाय (उप) की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाला भी है । यह अत्यंत विस्तीर्ण क्षेत्र है जिसकी सीमा समुदाय की 'मानसिक संरचना' को भी छूती है । जैसे मिथक,अभिव्यक्तियों,मुहावरों,लोकोक्तियों,गालियों और मौजमस्ती के पदबंधों का निर्माण और भी ढेरों भाषिक उक्तियाँ (अटरेंसेज़) इसके अंतर्गत आते हैं । इन सब पर दृष्टि रखनी होगी क्योंकि ये सब साहित्यिक पाठ की अर्थवत्ता,प्रभावशीलता,संप्रेषणीयता और स्वाभाविकता को स्थापित करने वाले घटक हैं।

9. आंचलिक साहित्य के समाजभाषावैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता को आप किस रूप में देखते हैं?

ऊपर मैंने जिन पहलुओं की चर्चा की, वे सब आंचलिक साहित्य में और भी प्रखर सामाजिक संदर्भ लेकर आते हैं । आपको यहाँ लोकगीतों की पंक्तियाँ भी मिल सकती हैं, लोककथाओं का प्रतीकवत् प्रयोग भी मिल सकता है और लोक संगीत के जीवन में रचे-बसे कथ्य का प्रयोग भी मिल सकता है । इसके साथ-साथ खास अंचल की आस्थाओं, विश्वासों (अंध), जीवन –शैली, खान-पान आदि-आदि के ढेरों संदर्भ मिल जाएंगे जिससे कृति के समाज-सांस्कृतिक अर्थ को अतिरिक्त चमक या अर्थच्छटाएँ प्राप्त होती हैं । **मैला आँचल,आधा गाँव,गंगा मैया,करवट** और कई अन्य उपन्यासों-कहानियों में भाषा के नए टटके प्रयोग मिलते हैं जो परिवेश या अंचल की जीवन शैली, पारिवारिक और सामाजिक संरचना, रीति-रिवाजों,मेले-त्यौहारों की स्वाभाविकता को उजागर करते हैं। यह सब कुछ भाषा के माध्यम से ही व्यक्त होता है-समाज भाषा के द्वारा । **आधा गाँव** की गालियों को पढ़ कर हड़कंप मच गया था । ऐसा ही कुछ हाल में प्रकाशित 'काशी का अस्सी'(काशीनाथ सिंह) को भी लेकर हुआ जबकि जिस समूह की इन लेखकों ने कथा लिखी उनके सामाजिक जीवन में गालियाँ अपने को अभिव्यक्त करने-मनोभावों को प्रकट करने का सशक्त माध्यम हैं । समाज भाषाविज्ञान ने 'टैबू भाषा प्रयोगों' पर अलग से

चर्चा भी की है । उसे देखना चाहिए । आंचलिक साहित्य में भाषा के समाज भाषा वैज्ञानिक अध्ययन- विश्लेषण की अकूत संभावनाएँ छिपी हुई हैं ।

10. रेणु के उपन्यासों के समाजभाषावैज्ञानिक विश्लेषण में किन किन मानकों को विश्लेषण का आधार बनाया जा सकता है ?

उपरोक्त सभी मानक (पहलू) रेणु के उपन्यासों पर भी लागू होंगे । रेणु के कुछ उपन्यासों में बंगला-हिंदी अथवा बंगला-मैथिली (मगही) का मिश्रण भी है। रेणु के पास ध्वनि-चयन अथवा ध्वनि-मिश्रण का भी सार्थक प्रयोग है । मनुष्य की शारीरिक और मानसिक गत्यात्मकता को रेणु की समाज समर्थित भाषा जीवंत बना देती है । हँसी-मज़ाक, दिल्लगी,छींटाकशी,बहसा-बहसी की रंग बिरंगी भाषा रेणु की विशेषता है जो सामाजिक यथार्थ को ही नहीं समुदायों के वास्तविक जीवन का भी खाका खींच देती है । नागार्जुन का कथा-साहित्य कहीं-कहीं रेणु वाली समाज भाषिक चेतना से रचा गया लगता है । रेणु के पास लोक, प्रकृति और पेशों की भाषा का भी बहुरंगी रूप है-कहना न होगा कि ये सभी उनके पात्रों के जीवन से रचे-पचे हैं अत: उनकी भाषा में ये मात्र उद्दीपक की तरह नहीं –बातचीत की स्वाभाविक धारा में लिपटे मिलते हैं । इन्हें खोलने से रेणु की कथाओं के कई अर्थ स्वत: खुल पड़ते हैं । हिस्,दुत्,छि,आह,ओह से भी रेणु मानव की भावनाओं का अलग-अलग रूपाकार पैदा कर देते हैं । निश्चित ही ये और इस तरह के और भाषिक घटक भी, समुदाय की अभिव्यंजना प्रणाली के विकल्प मात्र नहीं,जरूरी सामाजिक अभिव्यंजना की प्राण रेखा हैं । आपने पाया होगा कि रेणु आवाज़ों का भरपूर उपयोग करते हैं-वाद्यों की आवाजें तो हैं ही । पर हमारे लिए महत्वपूर्ण है मनुष्यों की वे आवाज़ें जो कभी दूर से कभी नज़दीक से सुनाई देती हैं-दूर बैठे हुए किसी को पुकारने की आवाज़, फुसफुसाने की आवाज़, धीरे से फिक् से दाँत निपोरते बोलने की आवाज़- ऐसी न जाने कितनी काकु केंद्रित ध्वनियाँ हैं जो कथन,प्रसंग और सामाजिक अर्थ में पर लगा देती हैं । रेणु के यहाँ इस तरह की मानव-आवाजें वातावरण तो रचती ही हैं-खुशी,दर्द,पीड़ा,रहस्य,भय,हँसी जैसी अभिव्यक्तियों के अर्थ में रंजकता भी भर देती हैं । रेणु के कथा –साहित्य में भाषेतर संप्रषेण के अत्यंत 'नार्मल' और अर्थ गर्भ प्रयोग मिलते हैं । बाडी लैंग्वेज,जेस्चर और मुखाकृति के साथ ही इशारों के कितने ही रूप हमें रेणु के कथा-साहित्य में मिलते हैं । समाज भाषाविज्ञान का यह भी मानना है कि प्रत्येक भाषा-समुदाय अथवा समूह की देह-भाषा भी भिन्न होती है और समाज द्वारा इन्हें मान्यता प्राप्त होती है । कथा कहते समय,किस परिस्थिति में किसने किस तरह के भाषेतर साधन का उपयोग किया,रेणु की भाषा से इसे निकालना रोचक होगा । फिर संप्रेषण सरणियों की व्यवस्था के अनेक स्थल हमें रेणु के कथा साहित्य में मिलते है । बिना किसी संकोच के कहूँ तो रेणु का साहित्य समाज भाषा वैज्ञानिक अध्ययन के लिए

उसी तरह की सामग्री अपने भीतर संजोए हुए है,मानो हम क्षेत्र-सर्वेक्षण (फील्ड सर्वे) कर रहे हैं । बस, इस भाषिक, भाषेतर घटकों की प्रश्नावली लेकर क्षेत्र में पाठों के भीतर उतरिए और सामग्री (डॉटा) जुटा लाइए । बेशुमार और बेमिसाल समाज भाषिक सामग्री ।

11. रेणु के उपन्यासों में व्यक्ति–बोली, समाज–बोली, कूट–मिश्रण,कूट–अंतरण,बहुभाषिकता,भाषा–विकल्पन आदि का जैसा प्रयोग किया गया है वह हिंदी साहित्य में अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। इसकी क्या वजह हो सकती है ?

इसकी चर्चा पिछले प्रश्न के उत्तर में खुल कर की गई है- इसके अतिरिक्त भी कुछ प्रयोगों की ओर मैंने संकेत कर दिया है । समाज भाषिक संदर्भों वाली व्यावहारिक हिंदी का ऐसा प्रयोग हिंदी साहित्य में अन्यत्र हुआ ही नहीं है – यह कहना ठीक न होगा । भारतेंदु की 'प्रेम योगिनी' में कई भाषिक प्रयोग सामाजिक भाषा यथार्थ को प्रकट करते हैं । आप यहाँ तक पाएंगे कि बालकृष्ण भट्ट, शिवपूजन सहाय,प्रताप नारायण मिश्र,रामवृक्ष बेनीपुरी के निबंधों में हिंदी का समाज भीना रूप मनभावन रंग में रंगा हुआ मिलता है । रुद्र की **बहती गंगा**,भैरव प्रसाद गुप्त के **गंगा मैया**,राही मासूम रजा के **आधा गाँव** के अतिरिक्त भी आप रामदरश मिश्र,शिव प्रसाद सिंह,नागार्जुन, मार्कन्डेय,अमरकांत,काशीनाथ सिंह का साहित्य पढ़ें । ये तो हुए पुरबिया लेखक । अब अमृतलाल नागर,वृंदावन लाल वर्मा, शानी, कृष्णा सोबती, भीष्म साहनी का कथा साहित्य देखें । इन सब में आपको वे सारे प्रयोग मिलेंगे जिनकी अनुपलब्धता की बात आप हिंदी साहित्य में कर रहे हैं । आप यह जरूर कह सकते हैं कि रेणु ने 'मानक हिंदी' का पूरा ढाँचा ही तोड़ दिया, जबकि बाकी लेखक मानक हिंदी की आड़ में हिंदी के समाज भाषिक यथार्थ को लाते थे । देखिए कथाकार कोई भी हो-मानक हिंदी में अभिजात्य समाज की कथा भले ही वह कह रहा हो लेकिन भाषा के प्रयोग को वह समाज में प्रयुक्त भाषाई नियम से बाहर नहीं ले जा सकता- राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर, अज्ञेय के कथा-साहित्य को पढ़ कर देखिए- सामाजिक संबंधों से बंधी भाषा के प्रारूप वहाँ भी हैं- अंग्रेजी-हिंदी कोड-मिश्रण-परिवर्तन है, समाज बोली तो है ही, सामाजिक शैली भी है- अर्थात भाषा प्रयोग के वे सभी घटक जिन्हें समाज भाषा विज्ञान ने भाषा का समाज-सांस्कृतिक तत्व कहा है । कहना यह है कि भाषा का यदि कोई भी समुदाय प्रयोग करता है तो सामाजिक विकल्पन तो उसमें अनिवार्यत: होगा ही । मानक भाषा के भी सामाजिक प्रयोगों के नियम तो हैं ही। रिश्तों,संबंधों के अनुसार या प्रसंग-संदर्भों के अनुसार तो भाषा बदलेगी ही- कथा साहित्य में तो ऐसा होना अनिवार्य है । हाँ, यह जरूरी है कि सिर्फ खड़ी बोली बोलने वाले,अंग्रेजी का खुल कर प्रयोग करने वाले,आधुनिक जीवन के हामी समुदायों की भाषा में 'विकल्पन' की मात्रा या उसके उप-स्तर उतने नहीं होंगे ।

रेणु ने लोक की भाषा को इतना अभिव्यंजक बना कर रखा कि ठस और ठोस भाषा की कलई खुल गई । लोक भाषा की जीवंतता और ताकत को उन्होंने हमारे आँखों में उंगली डालकर दिखाया और यह जता दिया कि आम जन की हिंदी का व्यावहारिक रूप संप्रेषणीयता के उन सभी स्तरों की हद तक पहुँच सकता है जहाँ तक 'आदर्श' भाषा की पहुँच कठिन ही नहीं असंभव है ।

12. रेणु के उपन्यासों का विश्लेषण करते समय हायर कोड और लोअर–कोड को अध्ययन का आधार बनाया जा सकता है ?

एकदम बनाया जा सकता है । अभी हम उसी की बात कर रहे थे । हाँ, यह जरूर होता है कि रेणु के उच्च-कोड में भी तनिक बोली मिश्रण की छोंक लगी है इसका यह अर्थ है कि रेणु के सामाजिक कोडों में बोली मिश्रण के कई-कई स्तर हैं । विवरण जो सामान्यत: उच्च कोड़ में होता है, वह भी रेणु में अधिकतर अवमिश्रित है । पात्रों द्वारा दिए गए विवरण तो घालमेली हैं ही, लेखक के विवरण तक कभी–कभी हाई–कोड की रेखा लांघ जाते हैं । यह भी देखना होगा कि जिन भाषिक कैरेक्टरिस्टिक्स की वजह से हम किसी भाषा रूप को 'लोअर–कोड' कहते–मानते हैं–रेणु के कथा साहित्य में वही प्रमुख कोड है– उनके पास हमें इस कोड के उप–कोड भी मिलते हैं । 'हायर–कोड' रेणु के कथा–साहित्य में अगर अपने शुद्ध रूप में है भी तो अति सरल और सामान्य शब्दावली से बंधा है । संस्कृत या उर्दू या अंग्रेजी की अधिकांश शब्दावली रेणु के यहाँ तद्भवीकृत हो जाती है–ध्वनि परिवर्तन की कैसी–कैसी श्रेणियाँ उन्होंने दर्शायी हैं। सब बेझर जाता है 'लोअर कोड' के विस्तार में । अपना आपा खोकर सब अंचल की व्यावहारिक हिंदी में अपने को खपा देते हैं । रेणु के कथा–साहित्य से समाज भाषिक प्रयोगों को अलगाने के लिए गहरी भाषा दृष्टि चाहिए । इसे अर्थ सघनता तक ले जाना हमारा अभीष्ट होना चाहिए । रेणु ने 'हायर कोड' का विद्रूप भी किया है तो कभी उच्च भाषा रूप पर व्यंग्य भी ।

13. साहित्य की बहुभाषिकता और समाज की बहुभाषिकता को आप किस तरह रेखांकित करते हैं ?

भारत का प्रत्येक भाषा समाज, यहाँ तक कि इन समुदायों का प्रत्येक सदस्य बहुभाषिक है–कम से कम द्विभाषी अवश्य है । बहुभाषिकता, भारतीय भाषा यथार्थ का अद्भुत सत्य है । इसने बड़े–बड़े विदेशी भाषाविदों को अंचभे में डाल दिया , इतना अचंभे में कि इनमें से कई ने भारत को 'भाषाई पागलखाना' तक कह डाला । भारतीय बहुभाषिकता सामुदायिक बहुभाषिकता है,व्यक्तिगत नहीं । कोई व्यक्ति अपने प्रयत्न से बहुभाषिक बन जाए–पर सामुदायिक बहुभाषिकता–भारत में भाषा–संपर्क, बोली–भाषा–संबंध, बोलियों की परस्पर विनिमयता,बॉर्डर लैंग्वेजेज़ के समन्वयात्मक रवैये से आबद्ध उस भाषिक प्रक्रिया का परिणाम है जिसमें समुदाय (और उसके सदस्य) कोडों के ग्रहण में कोई कठिनाई महसूस नहीं करता । भाषा अधिगम और सामाजिक बनने के दौरान वह स्वत: ही बहुभाषिक बनता चलता है, उसे तो पता भी नहीं चलता । ये बहुभाषिक न सिर्फ एकाधिक कोडों के प्रयोग या बोधन की क्षमता रखते हैं बल्कि दो कोडों को मिलाकर एक

तीसरे कोड की रचना करने और एक कोड का प्रयोग करते–करते दूसरे कोड में चले जाने में इन्हें कोई कठिनाई नहीं होती । आप यह भी कह सकते हैं कि ' भारतीय बहुभाषिकता' सहज–बहुभाषिकता का उत्तम उदाहरण है । साहित्य, समाज की ही बात करता है । किसी समाज की, उसके लोगों की, इनके दुख–दर्द की, आशाओं–आकांक्षाओं की, संघर्षों की । अत: उसे भी भाषा (चाहे जिस भाषा में वह लिख रहा हो) कोडों के यथानुसार प्रयोग की ओर मुड़ना ही पड़ेगा । एक किसी कोड में कोई निर्जीव पाठ चाहे रचा जा सके, पर सर्जनात्मक साहित्य की कल्पना भी कोडों और उपकोडों के प्रयोग के बिना नहीं की जा सकती । साहित्य की बहुभाषिकता या किसी भाषा के साहित्य में प्रयुक्त भाषाई कोडों का सीधा संबंध समाज की बहुभाषिकता से होता है। कोई भी रचनाकार एक भी कोड या उपकोड की रचना नहीं कर सकता । वह तो समाज,समुदाय,समूहों के बीच फैले कोडों में से जरूरत के मुताबिक कोड चुन कर रखता है । बात लंबी खिंच जाएगी । कोड–चयन के अच्छे उदाहरण के रूप में मैं **गोदान** और **रंगभूमि** को देखता रहा हूँ । आप भी इन दोनों उपन्यासों को ध्यान से पढ़ सकते हैं । यदि हम बात हिंदी साहित्य और हिंदी भाषा समुदाय की कर रहे हैं तो यह साफ़ कर दूँ कि हिंदी का साहित्य, हिंदी समाज के भाषा वैविध्य को दर्शाने वाला प्रामाणिक अक्स है । इस पर पीछे भी मैं काफ़ी कुछ कह चुका हूँ ।

14. भाषा की राजनीति और भारतीय भाषायी स्थिति को आप किस तरह देखते हैं ?

भाषा की राजनीति का 'खेल' पुराना है । भाषा–यर्थाथ के तराजू पर तौलें तो इस खेल की असलियत खुल जाती है । बहुत पीछे न जाऊँ तो भी उन्नीसवीं शताब्दी में जिन विदेशियों ने हिंदी का व्याकरण लिखा उसे 'हिंदुस्तानी' का व्याकरण कहा । एक तरह से यह तथाकथित 'उर्दू' का व्याकरण था । हिंदी–उर्दू को एक–दूसरे से भिन्न दिखाने की यह राजनीतिक चाल थी । ग्रियर्सन का भाषा–सर्वेक्षण दो कदम और आगे बढ़ गया, उसने भाषा–बोली द्वंद्व को भी उभारने का यत्न किया । 'बिहारी बोली' का ऐसा एक वर्ग भी उसने बना डाला जिसका भाषाई यथार्थ में कहीं अता–पता ही नहीं है । गिलक्राइस्ट ने भी फोर्ट विलियम कॉलेज की आड़ में हिंदू–उर्दू को भिन्न सिद्ध करने के लिए लल्लूजी लाल–सदल मिश्र तथा इंशाअल्ला खां से ऐसी रचनाएँ लिखवाईं जिनसे यह भ्रम फैलता था कि हिंदी–उर्दू दो सर्वथा भिन्न भाषाएँ हैं । इस तरह के औपनिवेशिक भाषिक षणयंत्र की गाँधी जी , प्रेमचंद और डॉ.राजेन्द्र प्रसाद आदि ने घोर निंदा की और भारतीय भाषा यथार्थ का पक्ष लेते हुए इसे गलत ठहराया । बाद में भी, कहें आज भी हिंदी–उर्दू के बीच की यह दरार पट नहीं पाई है जबकि प्रो. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव जैसे भाषाविद (भाषाई अस्मिता और हिंदी), रामविलास शर्मा जैसे समग्र चिंतक (भाषा और समाज) और विद्यानिवास मिश्र, अज्ञेय जैसे भाषा चेता साहित्यकारों ने इस तरह की 'भाषा राजनीति' की ठोस भाषा वैज्ञानिक तथ्यों के साथ घोर निंदा की है । हिंदी–उर्दू की अपनी राजनीति में ब्रिटिश साम्राज्य सफल हुआ और भाषा के नाम पर देश बंट गया । भाषा की राजनीति स्वतंत्रता के बाद भी खेली जाती रही है । हिंदी–अंग्रेजी की राजनीति ने 'राजभाषा' के संवैधानिक सत्य तक को झुठला दिया है । हिंदी और भारतीय भाषाओं की राजनीति समय–समय पर दक्षिण भारत, विशेषकर तमिलनाडु में हिंदी विरोध के स्वर को मुखरित करती रही है । स्वतंत्रता के पहले 'राष्ट्रभाषा हिंदी' के माध्यम से भाषाई,सांस्कृतिक एवं सामाजिक एकता की लहर उठी थी, उसका असर तो है पर राजनीतिक

स्वार्थों के चलते 'हिंदी के वर्चस्व' के नाम पर अकारण चुनौतियाँ खड़ी की जा रहीं हैं । अफसोस इस बात का है कि इस राजनीति का फायदा किसी भारतीय भाषा को नहीं बल्कि अंग्रेजी भाषा के विस्तार को मिल रहा है । इस राजनीति का एकमात्र उद्देश्य यही है कि भारतीय भाषाएँ अपने व्यावहारिक संदर्भों में पिछड़ी ही बनी रह जाँय और इनकी जगह अंग्रेजी रानी बन कर राज करती रहे । भारतीय भाषाओं के बीच की प्रतिद्वंद्विता भी कम खतरनाक नहीं है – तमिल–तेलुगु, मराठी–कोंकड़ी,सिंधी–उर्दू,पंजाबी–उर्दू के संघर्ष के पीछे भाषाई अस्मिता का उतना रोल नहीं है जितना समुदायों के बीच वैमनस्य फैलाने का । भारतीय भाषा परिदृश्य अपनी वास्तविकता में सहयोग, सामंजस्य और सह–अस्तित्व की भावना से परिचालित है । इसका एकतान 'भारतीय साहित्य' भी इस बात का गवाह है और साहित्यिक धाराओं की एकरूपता भी इसे सिद्ध करती है । आदान–प्रदान और अनुवाद की परंपरा ने भारतीय भाषाओं को एक–दूसरे का पोषक ठहराया है न कि स्थायी शत्रु । एक रूसी विद्वान की पुस्तक है 'जातीय अस्मिता और भारतीय भाषाएँ' जिसमें भाषा की राजनीति का बहुकोणीय विवेचन है और भारत के भाषा यथार्थ का भी । यह पुस्तक भाषा की राजनीति का बड़े ही तार्किक ढंग से पर्दाफाश करती है–ढेरों संदर्भों,लिखित प्रमाणों और तथ्यों के साथ । इस पुस्तक के साथ 'भाषा और समाज'को रख कर पढ़ें तो इस प्रश्न का उत्तर आपको मिल जाएगा और आप संतुष्ट होंगे । यह एक बड़ा प्रश्न है अत: आपको दोनों संदर्भ दे दिए हैं ।

15. समाज में भाषा प्रयोग के जो रूप हैं और विभिन्न संस्थाओं में इन भाषाओं पर जो शोध कार्य किये जा रहे हैं,इन दोनों के बीच क्या आप कोई अंतर पाते हैं?

नहीं, कोई ख़ास अंतर नहीं पाता पर कुछ भाषाई स्थितियों पर काम नहीं मिलता,कुछ छूटता सा दिखता है । यह भी दिखाई देता है कि भाषा पर शोध अधिकांशत:भाषा के 'मानक रूप' पर केंद्रित किए जाते हैं । समाज में प्रयुक्त भाषा रूपों पर शोध कम हैं । हैदराबाद में एक खत्री समुदाय है,उसकी अपनी तरह की हिंदी है । यह विस्थापित समुदाय है । इसकी भाषा पर मैंने काम कराया है । और संभावनाएँ भी हैं । हैदराबाद में ही 'दक्खिनी' का प्रयोग है,इसकी सूक्ष्म विवेचना होनी चाहिए – फील्ड वर्क के माध्यम से । हम लोग साहित्य में इसके प्रयोग को पाठाधारित विवेचन द्वारा सामने ले आते हैं । पर विभिन्न वर्गों,समुदायों,विस्थापित समुदायों में तथा बाजार में,घर में, काम की जगह पर इसके प्रयोग की क्या स्थितियाँ हैं । आयु,शिक्षा,लिंग के धरातल पर भिन्न प्रयोक्ता इसका कब, क्यों, और कितना प्रयोग करते हैं–इन सबका आकलन अब जरूरी है । मैं आपको बताऊँ कि धारवाड़ में सब्जी–तरकारी–फल बेचने वाला एक समुदाय है जो कन्नड–कोंकडी–दक्खिनी मिश्रित हिंदी के एक 'कोड' का इस्तेमाल करता है–मैंने इस पर काम कराया था । अद्भुत भाषा रूप है यह । कहना यह है कि भाषा प्रयोग के रूपों पर सर्वेक्षण आधारित शोधों का अभी तक अभाव बना हुआ है जबकि भारतीय बहुभाषिकता की समन्वयकारी प्रवृति के कारण इस तरह के अनेक 'कोड' समाज में प्रचलित हैं । भाषा अवमिश्रण, भाषा विस्थापन, भाषा अनुरक्षण,भाषा स्तर,सामाजिक स्तर की दृष्टि से शोध की आवश्यकता मैं बराबर महसूस करता हूँ । फिर हिंदी की बोलियों का एक बड़ा क्षेत्र है जिसमें समाज में हिंदी के प्रयोग की भिन्न प्रवृतियाँ खोजी जा सकती हैं । ऐसा ही भारतीय भाषाओं में भी तो है । सबसे प्रखर 'बार्डर लैंग्वेज' और दो भाषाओं के अवमिश्रण से तीसरे कोड के बनने की प्रक्रिया है ।